एस धम्मो सनंतनो, भाग 6

प्रवचन-क्रम

52...सूरज ढलने से पहले दीए को सम्हाल लेना! 2

53..साक्षीभावः परम सूत्र
.... 24

54..समष्टि से आलिंगन है धर्म
.... 44

55..मुझे शास्त्र नहीं, अनुभव बनाओ
.... 69

56..अत्ताहि अत्तनो नाथो
.... 91

57..‘न-होना’ है जीवन
.... 113

58...स्व से होकर राह सर्व को
.... 135

59..गुरु को द्वार बनाना दीवार नहीं
.... 156

60..जीवित धर्म का उद्गम केंद्रः सदगुरु
.... 177

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
बावनवां प्रवचन

सूरज ढलने से पहले दीए को सम्हाल लेना!

कोनु हासो किमानंदो निच्चं पज्जलिते सति।
अंधकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ।। 125।।

पस्स चित्त कतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसंकप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति।। 126।।

परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्डं पभंगुरं।
भिज्जति पूतिसंदेहो मरणन्तं हि जीवितं।। 127।।

यानि मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे।
कपोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति।। 128।।

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहित लेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो।। 129।।

जीरंति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति।। 130।।

सूत्र के पहले--
जीवन-सत्य को पाने के दो मार्ग हैं। दो ही हो सकते हैं। या तो जीवन-सत्य को पकड़ा जा सकता है जीवन में डूबकर, या जीवन-सत्य को पकड़ा जा सकता है मृत्यु में डूबकर। दो ही द्वार हैं। जीवन और मृत्यु। या तो होने से पकड़ा जा सकता है, या न होने से। या तो प्रकाश से, या अंधकार से। या तो खुली आंख से, या आंख बंद करके। या तो इतने डूब जाओ जीवन में कि तुम न बचो, या इतने डूब जाओ मृत्यु में कि तुम न बचो। असली बात है कि तुम न बचो। किस बहाने तुम मिटते हो, यह गौण है।
जहां तुम नहीं हो, वहीं सत्य है। जीवन के उत्सव में, जीवन के नृत्य में
भी तुम खो जाओ, तो भी सत्य मिल जाता है। मीरा ने नाचकर पाया, उत्सव से पाया। चैतन्य ने गीत गाकर पाया। कृष्ण के ओंठों पर रखी बांसुरी जीवन का द्वार है।
बुद्ध ने मृत्यु में डुबकी लगायी। महावीर ने भी वहीं पाया। इसलिए बुद्ध के पास बांसुरी न जंचेगी। नृत्य-ज्ञान का कोई संबंध न जोड़ सकोगे।
बुद्ध के पास कैसा गीत, कैसा नृत्य! नृत्य और गीत बुद्ध को तो अपावन मालूम होंगे। गीत और नृत्य की बात ही बुद्ध की जीवन-दृष्टि से मेल न खाएगी।
क्योंकि उन्होंने पाया है मृत्यु में डुबकी लगाकर।
यूनानी पुराण-कथाओं में विभाजन बहुत साफ है। दो देवताओं की चर्चा है। अपोलो और डायोनीसियस। अपोलो तपश्चर्या का देवता है। डायोनीसियस नृत्य का, गान का, उत्सव का। एपीकुरस डायोनीसियस का अनुयायी है। एपीकुरस ने अपने आश्रम का नाम रखा था, उपवन। वृक्षों के तले, फूलों के पास, पक्षियों के गीतों में रमे, सरोवर के तटों पर, चांदनी रातों में नृत्य का महोत्सव चलता। वहीं एपीकुरस ने उसकी झलक पायी। कोई तपश्चर्या नहीं। उत्सव! सताना नहीं, तोड़ना-फोड़ना नहीं, मिटाना नहीं, जैसे मृत्यु है ही नहीं। एपीकुरस का अर्थ है, जैसे मृत्यु है ही नहीं। कभी हुई ही नहीं। मृत्यु असत्य है। ऐसे जीना जैसे मृत्यु असत्य है, तो भी सत्य मिल जाता है।
बुद्ध ने ठीक उलटी तरफ से पाया। ऐसे जीए जैसे जीवन है ही नहीं, मृत्यु
ही सत्य है। दुख ही सत्य है। बुद्ध ने चार आर्य-सत्यों की बात कही। वे चारों ही दुख से जुड़े हैं। दुख है, यह पहला आर्य-सत्य। दुख से छूटने का 2

उपाय है, यह दूसरा आर्य-सत्य। दुख से छूटने की संभावना है, यह तीसरा आर्य-सत्य। दुख से छूटी गयी अवस्था है, यह चौथा आर्य-सत्य। बस। लेकिन चारों आर्य-सत्य दुख से जुड़े हैं। बुद्ध को जो पहला महाबोध हुआ, जो पहली किरण उतरी, वह अंधेरे की है।
जाते थे राह से, महोत्सव में भाग लेने--समझने जैसा है--जाते थे कहीं, जहां एपीकुरस को जाना चाहिए। युवक महोत्सव, यूथ फेस्टिवल था। सारे देश के युवक और युवतियां इकट्ठे हुए थे। राजकुमार को उदघाटन करना था उस महोत्सव का। बुद्ध जाते थे अपने रथ में सवार, वहां जहां एपीकुरस को जाना चाहिए। फूलों से सजा था रथ। लेकिन राह पर एक बीमार आदमी दिखायी पड़ गया। स्वर भंग हुआ। बुद्ध ने चौंककर सारथी को पूछा, इस आदमी को क्या हो गया? कहते हैं, तब तक बुद्ध ने बीमार आदमी न देखा था।
ऐसा हुआ, जब बुद्ध पैदा हुए तो ज्योतिषियों ने कहा, अगर यह युवा होकर दुख को जानेगा तो संन्यस्त हो जाएगा। जैसे ज्योतिषियों को यह बात पहले ही झलक गयी कि दुख से ही यह व्यक्ति मुक्त होने को है। द्वार बनने को है। तो ज्योतिषियों ने कहा पिता को कि अगर चाहते हो कि बच जाए यह, संन्यस्त न हो, तो इसे दुख का दर्शन मत होने देना। बीमारी इसके पास न फटके। कुरूप व्यक्ति इसके पास न आएं। बुद्ध के बगीचे से भी फूल तब हटा दिए जाएं जब कि वे कुम्हलाने के पहले की अवस्था में हों, कुम्हलाने न पाएं। सूखा पत्ता बगीचे में न बचे, रात में हटा दिया जाए। बुद्ध ताजे फूल को ही जानें। जवानी ही जानें, बुढ़ापे की खबर न मिले। मुरझाता भी है कुछ, इसका कांटा अगर जरा भी चुभा, तो इस चेतना को राजमहलों में न रोका जा सकेगा।
तो बुद्ध के पिता ने बड़ा इंतजाम किया था। कहते हैं, तब तक बुद्ध ने बीमार आदमी न देखा था। कुम्हलाया फूल न देखा था। सूखे पत्ते न देखे थे। मृत्यु की तो बात दूर, मृत्यु की आहट भी न सुनी थी। बुढ़ापा यानी मृत्यु की आहट। पड़ने लगे पैर सुनायी। पदचाप कानों में आने लगा। वह भी न सुना था।
कहीं से भी कोई खबर ही न मिली थी। बुद्ध ऐसे जीए थे जैसा एपीकुरस जीता है।
लेकिन एपीकुरस वे थे नहीं। वह उनकी जीवनधारा न थी। वह उनके व्यक्तित्व का ढंग न था। वह सब बेमेल था। वह कहीं उनसे जुड़ता न था।
अगर बुद्ध की जगह एपीकुरस को ऐसी सुविधा मिली होती, तो वहीं नाचते और नृत्य करते, संगीत में डूबे, सौंदर्य में लीन, वह सत्य को उपलब्ध होता। सुंदरतम स्त्रियां जुटा दी थीं। राज्य में जितनी सुंदर स्त्रियां थीं, जितनी सुंदर युवतियां थीं, इकट्ठी कर दी थीं।
एरनाल्ड ने अपनी प्रसिद्ध कविता लाइट आफ एशिया में उनका बड़ा मनमोहक वर्णन किया है। लेकिन उनमें से भी बुद्ध ने दुख खोज लिया। एक रात युवतियां नाचकर सो गयी हैं। थककर गिर गयी हैं, बुद्ध को झपकी लग गयी है। आधी रात उनकी नींद खुली, उन्होंने आंख उठाकर देखा। संगमरमर जैसी देहें, स्वर्ण जैसे शरीर, मूर्च्छित पड़े थे। किसी का मुंह खुल गया था--सुंदर चेहरा कुरूप हो गया था। किसी की आंख में कीचड़ आ गया था--सोना गंदा हो गया था। किसी की लार बहती थी। कोई नींद में बड़बड़ाता था। साज-शृंगार, रख-रखाव अस्तव्यस्त हो गया था। चारों तरफ पड़ी सुंदरियां अचानक बुद्ध को कुरूप लगीं। सौंदर्य में से कुरूप का दर्शन हो गया। एपीकुरस कुरूप में भी सौंदर्य को खोज लेता है। दृष्टि की बात है। और ये दो ही दृष्टियां हैं।
उस सुबह जब बुद्ध उस महोत्सव में भाग लेने रथ पर जाते थे, सारथी से पूछा, इस आदमी को क्या हुआ? लकड़ी टेककर चलता है। बीमार है, बूढ़ा है, हुआ क्या? कहानी बड़ी मधुर है। कहते हैं, सारथी झूठ बोलना चाहता था, लेकिन देवताओं ने उसकी जबान पकड़ ली। सारथी कहना चाहता था, कुछ भी नहीं हुआ, एक दुर्घटना है। कभी-कभी अपवाद-स्वरूप ऐसा हो जाता है। लेकिन कहानी कहती है, देवताओं ने जबान पकड़ ली। और देवता सारथी के मुंह से बोले कि यही सबको होता है, तुम्हें भी होगा। सारथी चौंका कि यह मैं क्या कह रहा हूं? पिता ने सख्त मनाही की है। मगर बात निकल गयी थी, अवश। सारथी के मुंह का उपयोग देवताओं ने कर लिया।
और उसके पीछे ही आती थी एक अर्थी, लोग मरघट जाते थे। बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ? सारथी फिर झूठ बोलना चाहता था, लेकिन न बोल पाया। और जो नहीं

कहना था, वह उसने कह दियाः सभी को ऐसा होता है, आपको भी होगा। मरना तो पड़ेगा। बुद्ध ने कहा, रथ लौटा लो। अब महोत्सव में जाने की कोई जरूरत न रही। जब मृत्यु है, तो मैं मर ही गया। अब मैं उस जीवन को खोजूंगा, जिसकी कोई मृत्यु न हो।
बुद्ध लौट पड़े। उसी रात घर छोड़कर भाग गए। बारह वर्षों बाद जब घर लौटे तो... रवींद्रनाथ ने एक कविता लिखी है। रवींद्रनाथ एपीकुरियन थे। यह थोड़ा समझने जैसा है। यह विभाजन बड़ा गहरा है। और सारे आदमी इन दो में बंटे हैं। रवींद्रनाथ को बुद्ध कभी जंचे नहीं, जंच नहीं सकते। उनकी भाषा जीवन
की है। घूंघर, नूपुर की है। चांद-तारों की है। कवि की भाषा है। कवि मौत के थोड़े ही गीत गाता है, जीवन के गीत गाता है। उसकी निष्ठा जीवन में है। रवींद्रनाथ को कभी यह बात जंची नहीं--बुद्ध के प्रति सम्मान था, होगा ही। बुद्ध जैसे व्यक्ति के प्रति सम्मान न हो, यह कैसे हो? लेकिन तालमेल नहीं है।
तो उन्होंने एक कविता लिखी, जिसमें जब बारह साल बाद बुद्ध घर लौटे, तो यशोधरा ने उनसे पूछा कि मैं तुमसे पूछती हूं, कि तुम्हें जो घर छोड़कर मिला, क्या वह यहां नहीं मिल सकता था? बुद्ध मौन खड़े रह गए हैं। बुद्ध, जो किसी प्रश्न पर कभी चुप न रहे, उत्तर दिया, यशोधरा के सामने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रह गए हैं। रवींद्रनाथ ने कविता को वहीं छोड़ दिया है। इशारा काफी है।
रवींद्रनाथ यह कहते हैं कि बुद्ध को भी समझ में तो आ गया कि जो पाया है जंगल में जाकर, वह घर भी मिल सकता था। जो पाया है मृत्यु में उतरकर, वह जीवन में भी मिल सकता था। लेकिन यह उनसे कहते न बन पड़ा। यह कहना तो अपनी सारी जीवन-व्यवस्था को, शास्त्र को झुठलाना होगा। बुद्ध चुप रह गए। झूठ बोल न सकते थे, सच बोलना संभव न था, मौन ही रह जाना उचित था।
यशोधरा ने जो प्रश्न पूछा है, वह एपीकुरियन है। एपीकुरस यही पूछता है
कि यह जीवन को छोड़कर कहां जाते हो? भागते कहां हो? यहीं मिल जाएगा।
लेकिन बुद्ध कहते हैं, अगर यहीं मिलता होता, तो इतने लोग जीवन में हैं, इन्हें मिलता क्यों नहीं? अगर यहीं मिलता होता, तो राग-रंग की कुछ कमी है! उत्सव तो लोग जन्मों से मना रहे हैं, मिलता नहीं।
उनका कहना भी ठीक है। उत्सव से नहीं मिलता। ऐसा उत्सव चाहिए कि तुम खो जाओ, तब मिलता है।
अगर तुम एपीकुरस से पूछो कि बुद्ध कहते हैं, मृत्यु से मिलता है, तो एपीकुरस कहेगा, इतने लोग सदा मरते रहे हैं, किसने पाया? मरने से कहीं मिलता है! तो सभी को मिल गया होता, क्योंकि सभी मरते हैं। और अगर मरने से ही मिलता है, तो सभी मरेंगे, चिंता क्या करनी है, पा लेंगे। दुख से मिलता है, तो दुख की कुछ कमी है! दुख ही दुख है सब तरफ।
वह भी ठीक कहता है। दुख से नहीं मिलता, मृत्यु से नहीं मिलता, डूबकर मिलता है।
तो मैं तुम्हें यह कहना चाह रहा हूं कि अपोलो हो कि डायोनीसियस हो, एपीकुरस हो कि बुद्ध हों, जीवन से पाया जाए कि मृत्यु से पाया जाए, गहराई से पाया जाता है। कहीं भी डूबो। मृत्यु में भी डूबो, तो मिल जाता है, तो जीवन में डूबने से तो मिल ही जाएगा। और जब जीवन में ही डूबने से मिल जाता है, तो मृत्यु में डूबने से क्यों न मिलेगा?
यह बात पहले ख्याल में ले लेना, फिर ये बुद्ध के सूत्र बड़े साफ हो जाएंगे। तब बुद्ध के संबंध में जो एक भ्रांति होती है वह तुम्हारे मन में न होगी। बुद्ध दुखवादी नहीं हैं। दुख का उन्होंने साधन की तरह उपयोग किया है। पाया तो उसी सच्चिदानंद को है। लेकिन दुख का माध्यम की तरह, साधन की तरह उपयोग किया है। दुख बुद्ध का मार्ग है, अंत नहीं, गंतव्य नहीं। दुख में बुद्ध को रस नहीं है। दुख से पार होना है। इसीलिए तो चौथा आर्य-सत्य, कि दुख के पार अवस्था है।
मगर उनकी भाषा दुख की है। वह उस अवस्था को भी आनंद की अवस्था नहीं कह पाते, वे कहते हैं, दुख के पार। आनंद शब्द में ही उन्हें बू आती है जीवन की, आनंद शब्द में ही खबर आती है उत्सव की। आनंद में ही नाच आ जाता है, गीत आ

जाता है, गान आ जाता है; जीवन के सारे वाद्य ध्वनित होने लगते हैं। आनंद शब्द का बुद्ध उपयोग नहीं करते। वे कहते हैं, दुख-निरोध की अवस्था है। इसलिए ईश्वर शब्द का उपयोग नहीं करते। ईश्वर में ही ले जाते हैं, लेकिन उस शब्द का उपयोग नहीं करते, वह शब्द उन्हें मौजूं नहीं आता। वह जीवनवादियों का सत्य है।
ईश्वर शब्द का अर्थ तुमने कभी सोचा? वह बनता है उसी धातु से जिससे ऐश्वर्य बनता है। ऐश्वर्य? महाऐश्वर्य ही ईश्वर है।
इसीलिए तो ईश्वर का मंदिर हो और राग-रंग न हो, फूल न हों, धूप-दीप न हो, नाच न हो, घूंघर न बजते हों, भजन-कीर्तन का स्वर न उठता हो, घंटनाद न होता हो अहोभाव का--मंदिर नहीं।
इसीलिए तो मस्जिद बड़ी उदास है। बाजा तक नहीं बज सकता। इसीलिए तो चर्च गंभीर है। वे मंदिर होने के रास्ते पर हैं, हो नहीं पाए। मंदिर तो तभी है जब उत्सव हो, हंसी के फव्वारे छूटते हों, लोग उमंग में हों, मस्ती में हों। मंदिर तो तभी है जब वह परमात्मा की मधुशाला हो। वह एक मार्ग है।
बुद्ध दुखवादी नहीं हैं। चाहते तो वे भी उसी आनंद की तरफ जाना हैं और
ले जाना, लेकिन उनकी भाषा बड़ी संयत है। वे ऐसे किसी शब्द का उपयोग न करेंगे जिससे तुम्हारे जीवन की भ्रांति को भूलकर भी सहारा मिल जाए। इस बात को ख्याल में रखना, तब ये सूत्र साफ हो जाएंगे।
पहला सूत्र हैः "कोनु हासो--कैसी हंसी? किमानन्दो--कैसा आनंद? निच्चं पज्जलिते सति--जब सब कुछ निरंतर जल रहा है, तब हंसी कैसी, आनंद कैसा? अंधकार में डूबे हो और दीपक की खोज नहीं करते!"
जिसे तुम जीवन कहते हो, वह अंधकार है। जिसे तुम मृत्यु कहते हो, वह दीपक है। बुद्ध के लिए। और जिसको जम जाए, मार्ग बिल्कुल सौ प्रतिशत सही है।
"जब सब कुछ निरंतर जल रहा है... ।"
बुद्ध ने जिस रात घर छोड़ा, एरनाल्ड ने अपने गीत में उस घटना का उल्लेख किया है। एरनाल्ड का गीत बुद्ध पर लिखा गया श्रेष्ठतम गीत है। बौद्ध भी नहीं लिख सके हैं, जो एरनाल्ड ने लिखा। बड़े-बड़े बौद्ध आचार्यों ने बुद्ध पर बड़े-बड़े शास्त्र लिखे हैं, लेकिन एरनाल्ड का लाइट आफ एशिया अनूठा है। रात जा रहे हैं घर छोड़कर। उनका सारथी उन्हें राज्य की सीमा के बाहर ले आता है। तब वे रथ से उतर जाते हैं, और सारथी के--दीन-हीन सारथी के--वस्त्र मांगते हैं। अपने वस्त्र उसे दे देते हैं। हीरक-मणियों के हार उसे दे देते हैं। बहुमूल्य सजावट उसे दे देते हैं। कहते हैं, यह मेरी भेंट, तेरे वस्त्र मुझे दे दे।
सारथी रोने लगता है। वह कहता है, यह आप क्या कर रहे हैं? आप कहां जा रहे हैं? वह रो रहा है, वे अपने बाल काटकर भी उसे दे देते हैं। उनके बड़े प्यारे बाल थे। वह सारथी कहता है, आप यह क्या कर रहे हैं? सुंदर भवन है, साम्राज्य है, पत्नी है, नया-नया पैदा हुआ नवजात शिशु है। इस सब सुख को छोड़कर कहां जा रहे हैं? लोग इसी सुख की तलाश करते हैं। जीवनभर इसी की कामना करते हैं, स्वप्न देखते हैं और नहीं उपलब्ध कर पाते हैं, रोते हैं। तुम्हें सब मिला है, तुम छोड़कर कहां जाते हो? मुझ बूढ़े की बात सुनो। मैंने जीवन देखा है, तुम अभी नए हो, अभी तुम अनुभवहीन हो, लौट चलो।
बुद्ध कहते हैं, लौट चलूं वहां, जहां सिर्फ लपटें ही लपटें हैं! तुम्हें महल दिखायी पड़ता है, मुझे सिर्फ लपटें ही लपटें दिखायी पड़ती हैं। तुम्हें साम्राज्य दिखायी पड़ता है, मुझे चिताएं धू-धूकर जलती दिखायी पड़ती हैं। मेरी तुम्हारी दृष्टि अलग। मुझे तुम जाने दो।
समझाता है सारथी कि यह पलायन है, यह भगोड़ापन है। बुद्ध कहते हैं जब घर में आग लगी हो, तो आदमी भागता ही है। क्या घर में आग लगी हो, भागते को तुम कहोगे, भगोड़े हो, भीतर बैठे रहो? नहीं, वहां कोई महल नहीं है।
कल मैं एक गीत पढ़ता था--
कोई नहीं, कोई नहीं
यह भूमि है हाला-भरी
मधुपात्र मधुबाला-भरी

ऐसा--बुझा जो पा सके मेरे हृदय की प्यास को कोई नहीं, कोई नहीं
सुनता, समझता है गगन
वन के विहंगों के वचन
ऐसा--समझ जो पा सके मेरे हृदय-उच्छवास को
कोई नहीं, कोई नहीं
मधुऋतु समीरण चल पड़ा
वन ले नए पल्लव खड़ा
ऐसा--फिरा जो ला सके मेरे गए विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं
बुद्ध वैसी दशा में हैं, जहां जीवन का सारा विश्वास हाथ से छिटक गया। जहां जीवन में दबी मौत देखी। नृत्य में छिपे हुए अस्थिपंजर दिखायी पड़े। जहां महलों को धू-धूकर जलता हुआ देखा। जहां सब ऊपर-ऊपर टीम-टाम है, भीतर-भीतर मौत की तैयारी है। जहां ऊपर-ऊपर हंसी-खुशी है, फूल हैं, भीतर-भीतर गहन अंधकार है। जहां सजावट है,शृंगार है, लेकिन सत्य नहीं। अब उनके विश्वास को कोई लौटा नहीं सकता।
जब जीवन पर विश्वास उठ जाए, तो फिर कोई उपाय नहीं है उस विश्वास को लौटा लेने का। फिर तो एक ही उपाय है कि मृत्यु में ही झांका जाए। जीवन से जो हट गया, उसके पास फिर एक ही द्वार है कि मृत्यु से प्रवेश करे।
तो बुद्ध कहते हैं, "जब सब कुछ निरंतर जल रहा है, तब हंसी कैसी?"
तुमने बुद्ध की कोई हंसती प्रतिमा देखी? न ही कोई प्रतिमा है, न ही कोई चित्र है, न ही कोई उल्लेख है कि बुद्ध को किसी ने हंसते देखा हो। किसी ने उनके दांत भी देखे हों, इसका भी कोई उल्लेख नहीं।
"जब जीवन जल रहा हो तो हंसी कैसी? आनंद कैसा? अंधकार में डूबे हो और दीपक की खोज नहीं करते!"
बुद्ध के लेखे तुम जिसे जीवन कहते हो, वह सिर्फ धोखा है। सपनों का धोखा है। जो है, वह तुम नहीं देखते; जो तुम देखना चाहते हो, देखते चले जाते हो। जो है, उससे आंख नहीं मिलाते, बीच में सपने रचाते हो। सपनों के माध्यम से देखते हो। सपनों को ही अपने आसपास बसाकर देखते हो। सौंदर्य की आकांक्षा है तुम्हारे जीवन में, सौंदर्य कहीं है नहीं। तुम्हारी आकांक्षा ही धोखा दे जाती है।
धन तुम चाहते हो, धन जीवन में कहीं है नहीं। तुम्हारी चाह के कारण ही तुम भरोसा कर लेते हो कि होगा। यश तुम चाहते हो, पद तुम चाहते हो। जहां सभी चीजें कब्र पर समाप्त होती हों, वहां कैसा यश? जहां यशस्वी भी आज नहीं कल औंधे मुंह धूल में पड़ा होता है, वहां कैसा यश?
कहते हैं, सिकंदर मरता था, तो उसने चिकित्सकों से कहा कि मुझे मेरी मां से मिलना है। कुछ देर मुझे रोक लो; मां थोड़ी दूरी पर है। या तो वह आ जाए, या मैं घर तक पहुंच जाऊं। जिसने मुझे जन्म दिया है, उससे मिलकर ही विदा होना चाहता हूं। लेकिन चिकित्सकों ने कहा, यह असंभव है। क्षणभर भी देर नहीं की जा सकती है। कहते हैं, सिकंदर ने कहा, मैं अपना आधा साम्राज्य दे दूंगा। उन्होंने कहा, आप चाहे पूरा भी दे दें, लेकिन मौत एक क्षण भी रुकेगी नहीं।
सिकंदर आंसू-भरी आंखों से मरा, और कहकर मरा कि जब मेरी अर्थी निकले तो मेरे दोनों हाथों को अर्थी के बाहर लटके रहने देना। पूछा उसके वजीरों ने, यह कभी सुना नहीं। हाथ बाहर अर्थी के लटकाने का कोई रिवाज नहीं। उसने कहा, तुम लटके रहने देना, ताकि लोग पूछेंगे क्यों? तो बता देना कि सिकंदर भी खाली हाथ मर रहा है। इसके हाथ भी भरे नहीं हैं। दौड़े बहुत, पाया कुछ भी नहीं। अगर पूरा राज्य देकर भी मैं क्षणभर नहीं जी सकता हूं ज्यादा, काश यह पहले ही पता होता तो मैं इस दौड़ में अपना समय क्यों खराब करता! अगर एक श्वास नहीं मिल सकती है पूरे राज्य को देकर, तो मैंने सारी श्वासें व्यर्थ कीं इसी राज्य को पाने के लिए? तो अपनी श्वासों को बचा लेता, किसी और काम में लगा देता।

यही बुद्ध कह रहे हैं, "जब सब निरंतर जल रहा हो, तब हंसी कैसी? आनंद कैसा? अंधकार में डूबे हो, दीपक की खोज नहीं करते!"
अब चाहूं भी तो मैं रुक सकता नहीं दोस्त!
कारण, खुद मंजिल ही ढिंग बढ़ती आती है
मैं जितना पैर टिकाने की कोशिश करता
उतनी ही मिट्टी और धसकती जाती है
मेरे अधरों में घुला हलाहल है काला
नैनों में नंगी मौत खड़ी मुस्काती है
है राम-नाम ही सत्य, असत्य और सब कुछ
बस एक यही ध्वनि कानों से टकराती है
मरने पर, इस देश में, जब हम अर्थी ले जाते हैं तो कहते हैं, राम-नाम सत्य है। सारी जिंदगी के बाद, जब मरे, तब तुम्हें पता चला राम-नाम सत्य है? जिंदगीभर तो किन्हीं और चीजों को सत्य माना--धन को सत्य माना, पद को सत्य माना, यश को सत्य माना--जिंदगीभर तो कभी न दोहराया, राम-नाम सत्य है, मरकर दोहराते हैं!
बुद्ध कहते हैं, गौर से देखो, जिसे तुम जीवन कहते हो वह क्षणभंगुर है।
वह गया, गया। उस पर मुट्ठी बंध ही नहीं पाती। वह पारे जैसा है। जितना मुट्ठी बांधते हो उतना छिटकता, बिखरता है। जिसे तुम जीवन कहते हो, वह ठहरने वाला नहीं। जो ठहरने वाला नहीं, उस पर क्यों समय व्यतीत करते हो? बुद्ध कहते हैं, तुम हंसते हो, जाहिर है कि तुमने अभी जीवन की सचाई नहीं पहचानी। आनंदित मालूम पड़ते हो, धोखा दे रहे हो, भ्रम में हो, अबोध हो, भोले- भाले हो, अज्ञानी हो, म.ूढ हो।
"अंधकार में डूबे हो और दीपक की खोज नहीं करते!"
ऐसे ही समय बिता रहे हो व्यर्थ राग-रंग में? यह सब चला जाएगा। फिर तुम चिल्लाओगे, फिर तुम रोओगे।
इसके पहले कि अंधेरा तुम्हें सचमुच पूरा-पूरा घेर ले, दीए को जला लो। इसके पहले कि रात उतर आए, इसके पहले कि सूरज ढल जाए, तुम दीए को सम्हाल लो। "इस चित्रित शरीर को तो जरा देखो!"
चित्रित शरीर कहते हैं बुद्ध, पेंटेड। प्रकृति ने खूब रंगा है!
"इस चित्रित शरीर को तो जरा देखो! यह व्रणों से युक्त तथा अंगोपांगों
से जोड़कर बनाया हुआ है। यह अनेक संकल्प-विकल्पों से भरा है, और इसकी स्थिति बड़ी अनित्य है।"
"इस चित्रित शरीर को तो देखो!"
प्रकृति ने खूब तूलिका चलायी है। धोखा खा जाओ, ऐसा इंतजाम किया है। हड्डी-मांस-मज्जा के बड़े वीभत्स ढेर पर बड़ी सुंदर चमड़ी ओढ़ा दी है। भीतर सिर्फ गंदगी है। कभी आदमी के भीतर देखा? कभी जाना चाहिए मुर्दाघर, पोस्टमार्टम देखने।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे। वहां जाओ। वहीं से ध्यान का स्मरण आएगा। बैठे रहो वहां, देखो जलती चिताओं को। तब तक देखते रहो जब तक कि तुम्हें यह न दिखायी पड़ने लगे कि तुम जल रहे हो चिता पर। तब तक मत आना मरघट से। महीनों मरघट पर भेज देते थे, बैठे रहो। लोग आते रोते-धोते, रखते लाश, आग लगा जाते, शरीर जल जाता धू-धू करके घास-फूस जैसा, राख पड़ी रह जाती, हड्डियां पड़ी रह जातीं, जंगली जानवर घसीट ले जाते, कुत्ते-भेड़िए आते--देखते रहना, देखते रहना।
पहले तो दिखेगा, कोई और मरा, फिर कोई और मरा, पर कब तक तुम यह झुठलाओगे
कि यह मौत तुम्हारी भी मौत है? यही तुम्हारे साथ भी हो जाने वाला है। और जो होने ही वाला है, जो सुनिश्चित ही होने वाला है, वह हुआ ही है। दिन, दो दिन की देर है। पंक्ति में खड़े हो। आज किसी का नंबर आ गया, कल तुम्हारा आ जाएगा। कितनी देर लगेगी मौत के आने में!
अब चाहूं भी तो मैं रुक सकता नहीं दोस्त!
कारण, खुद मंजिल ही ढिंग बढ़ती आती है
मैं जितना पैर टिकाने की कोशिश करता
उतनी ही मिट्टी और धसकती जाती है

कौन बचने की चेष्टा नहीं करता? पर कौन बच पाता है? कौन नहीं लड़ता? आखिरी दम तक लोग लड़ते ही रहते हैं। मौत से लड़ते रहते हैं। मगर कभी कोई जीता? और जब मौत हर हालत में जीत जाती है, तो जीवन धोखा होगा। यह बुद्ध का तर्क है।
एक बड़ी प्रसिद्ध सूफी कथा है। सम्राट सोलोमन सुबह-सुबह सोकर उठा ही
था कि उसके एक वजीर ने घबड़ाए हुए भीतर प्रवेश किया। वह इतना घबड़ाया था, सुबह-सुबह की ठंडी हवा थी, शीतल मौसम था चारों तरफ, लेकिन वजीर पसीने से लथपथ था। सोलोमन ने पूछा, क्या हुआ? बिना पूछे एकदम भीतर चले आए और इतने घबड़ाए हो, बात क्या है? उसने कहा, बस, ज्यादा समय खोने को मेरे पास नहीं है। आपका तेज से तेज घोड़ा दे दें। रात सपने में मौत मुझे दिखायी पड़ी है। और मौत ने कहा, तैयार रहना, कल शाम मैं आती हूं। सोलोमन ने पूछा, तेज घोड़े का क्या करोगे? उसने कहा कि मैं भागूं, यहां से तो भागूं। इस जगह रुकना अब खतरे से खाली नहीं है। तो मैं दमिश्क चला जाना चाहता हूं। सैकड़ों मील दूर। तेज से तेज घोड़ा दे दें, बातों में समय खराब न करें, मेरे पास समय नहीं है। बच गया, लौट आऊंगा।
सोलोमन के पास जो तेज से तेज घोड़ा था, दे दिया गया। सोलोमन बड़ा हैरान हुआ। सोलोमन बड़े बुद्धिमान लोगों में एक था। उसने आंख बंद की, उसने मृत्यु का स्मरण किया। मौत प्रगट हुई। उसने पूछा, ये भी क्या तरीके हैं? उस गरीब वजीर को क्यों घबड़ा दिया? मारना हो मारो, बाकी पहले से आने का यह कौन सा नया हिसाब निकाला? मरते सभी हैं। मौत किसी को खबर तो नहीं देती। इसीलिए तो लोग मजे से जीते हैं और मजे से मर जाते हैं। मौत खबर दे, तो जीना मुश्किल हो जाए। यह कौन सी बात निकाली! यह कौन सा ढंग निकाला!
मौत ने कहा, मैं खुद मुसीबत में थी। इस आदमी को दमिश्क में होना चाहिए शाम तक, और यह यहीं है। सैकड़ों मील का फासला है। मैं खुद बेचैनी में थी कि यह होगा कैसे? दमिश्क में इसे मुझे लेना है आज शाम। इसीलिए चौंकाया उसे। कहां है वह आदमी? सोलोमन ने कहा कि वह गया दमिश्क की तरफ।
कहते हैं, सांझ जब वजीर पहुंचा दमिश्क, बड़ा निश्चिंत था। सूरज ढलता था, उसने एक बगीचे में घोड़ा बांधा, घोड़े की पीठ थपथपायी कि शाबाश, सच में ही तू सोलोमन का घोड़ा है, ले आया सैकड़ों मील दूर!
तभी उसके कंधे पर कोई हाथ पड़ा, उसने कहा, तुम्हीं धन्यवाद मत दो, धन्यवाद मुझे देना चाहिए। पीछे लौटा तो देखा मौत खड़ी थी। घबड़ा गया। उसने कहा, घबड़ाओ मत, घोड़ा निश्चित ही तेज है। मैं खुद ही परेशान थी कि इंतजाम यही है, खबर मेरे पास यही आयी है कि दमिश्क में सांझ तुम्हें सूरज ढलने तक लेना है। मैं खुद डरी थी कि अगर तुम भागे न उस गांव से, तो तुम दमिश्क पहुंचोगे कैसे? मगर घोड़ा ठीक समय पर ठीक जगह ले आया। यहीं तुम्हें मरना है।
तुम कहीं से भी जाओ, कैसे भी जाओ; गरीब की तरह जाओ, अमीर की तरह जाओ; फकीर की तरह जाओ, बादशाह की तरह जाओ; सब मरघट पर पहुंच जाते हैं। सभी रास्ते वहां ले जाते हैं। लोग कहते हैं, सभी रास्ते रोम ले जाते हैं, पता नहीं। सभी रास्ते मरघट जरूर ले जाते हैं। रोम भी एक तरह का मरघट है, बड़ा पुराना, प्राचीन खंडहरों के सिवाय कुछ भी नहीं, वहीं ले जाते हैं।
बुद्ध कहते हैं, "अंधकार में डूबे हो और दीपक की खोज नहीं करते!"
किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो, मौत के अतिरिक्त कोई भी नहीं आएगा। किन सपनों में खोए हो!
इसे हम समझें। जीवन को हमने देखा नहीं, हमने बड़े सपनों की बारात सजायी है। हम किसी दुल्हन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विवाह रचाने की बड़ी योजना बना रखी है। हम खूब-खूब कल्पना किए बैठे हैं--ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा हो। इसकी वजह से हम देख नहीं पाते कि कैसा है! तुम्हारा रोमांस, तुम्हारी कल्पनाओं का जाल सत्य को प्रगट नहीं होने देता।
आंख खाली करो, जरा सतेज होकर देखो, जरा सपनों को किनारे हटाकर देखो। वही देखो, जो है। तो तुम्हें पैदा होते बच्चे में मरता हुआ आदमी दिखायी पड़ेगा। तो तुम्हें सुंदरतम देह के भीतर अत्यंत कुरूप छिपा हुआ दिखायी

पड़ेगा। तो तुम्हें जवान और युवा के भीतर बुढ़ापा कदम बढ़ाता हुआ मालूम होगा। जो गहरे देखेगा, वह जीवन में मौत को देख लेगा।
यही बुद्ध कहते हैं कि जरा गहरे देखो, चमड़ी के धोखे में मत आ जाओ। जरा
और गहरे उतरो, जरा भीतर का दर्शन करो।
"जब सब निरंतर जल रहा है तब हंसी कैसी?"
कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अंधकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ।।

अब खोजो, गवेषणा करो दीए की! अंधेरा बढ़ता चला जाता है। अंधेरा रोज बढ़ता चला जाता है। किस भरोसे बैठे हो? तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी दीए को न जला सकेगा। फिर अंधेरी रात घेर लेगी और फिर बहुत तड़फोगे और पछताओगे कि क्यों दिन का उपयोग न कर लिया? क्योंकि दिन के उजाले में चाहते तो दीया जल जाता। बुद्ध कहते हैं, जीवन का बस इतना ही उपयोग हो सकता है कि जीते जी तुम दीया जला लो। ध्यान का दीया जला लो, बस इतना ही जीवन का उपयोग है।
तुमने पद, धन, यश, कीर्ति, प्रेम, इन सबकी तो चेष्टाएं कीं, बस एक ध्यान
के दीए को जलाने की चेष्टा नहीं की, वही काम आएगा। मौत केवल उसी दीए को नहीं बुझा पाती। बुद्ध कहते हैं, ध्यान भर अमृत का सूत्र है।
लेकिन मौत की तो किसी से बात ही करो तो लोग नाराज हो जाते हैं। बुद्ध
से भी लोग बहुत नाराज हुए, क्योंकि बुद्ध मौत की ही बात करते हैं। अब कोई शादी को जा रहा हो और तुम उससे मौत की बात करो! कोई दिल्ली की तरफ जा रहा हो, तुम उससे मौत की बात करो! वह कहेगा, ठहरो, अभी ये बातें न करो। पैर डगमगाए देते हो।
बुद्ध ने जहां भी मौत की बात की, लोग नाराज हुए। मौत की बात शिष्टाचार नहीं मानी जाती। कहीं भी तुम मौत की बात छेड़ो, लोग तुम्हें शांत कर देंगे कि चुप भी रहो, यह भी कोई बात है। मौत से हम बचते हैं--शब्द से बचते हैं। मौत को हम दूर रखते हैं। इसलिए मरघट, कब्रिस्तान गांव के बाहर बनाते हैं। जहां जाना न पड़े, बस। जब जाना ही पड़ेगा तब जाएंगे। ऐसे न जाना पड़े। तो मरघट को बिल्कुल दूर बना देते हैं, जहां कोई कारोबार नहीं, जहां अकारण जाने की कोई जरूरत नहीं। या तो कभी कोई मित्र मर जाए, प्रियजन मर जाए, तो पहुंचा आते हैं। लेकिन तुमने वहां भी देखा?
मैं बहुत बार... मुझे बचपन से शौक था। कोई मरा, मैं गया। गांव में कोई मरे, परिचित हो, अपरिचित हो, संबंधी हो, असंबंधी हो, इससे कुछ लेना-देना नहीं था। मेरे घर में लोग जानने लगे थे कि अगर मैं घर में देर तक नहीं आया, तो वे समझते कि कोई मर गया होगा। गया! पर वहां मैं चकित हुआ कि वहां भी लोग चिता की तरफ पीठ करके दूसरी ही बातें करते हैं। वहां भी मौत को झुठलाते हैं। वहां भी संसार की ही बात चलती है। वहां भी गांव के ही गप-सड़ाके! किसकी पत्नी भाग गयी, कौन जुआ खेलता पकड़ा गया, कौन ने चोरी की, कहां हत्या हो गयी, वही सब बातें चलती हैं। मैं सोचता था, कम से कम मरघट पर तो मौत को लोग याद करते होंगे। नहीं। वहां भी छोटे-छोटे झुंड बना लेते हैं। और सब बातें करते हैं, मौत को छोड़ देते हैं। मौत कुछ स्मरण मात्र से कंपा जाती है।
बुद्ध ने जब मौत और दुख की बातें शुरू कीं, तो लोग नाराज ही हुए। लोग घबड़ाए कि यह आदमी पैर के नीचे की जमीन खींचे लेता है। और इसने खींची, बहुत लोगों के पैर के नीचे की जमीन खींच ली। जवान आदमियों को बुढ़ापे का दर्शन दे दिया। अभी जिंदगी की रौ में थे, उनके पैर से जमीन खींच ली और मौत के गड्ढे में ढकेल दिया।
मगर जो इसके साथ चलने को राजी हो गए, जिन्होंने दुख की हिम्मत की कि करेंगे साक्षात्कार, जिन्होंने पीड़ा से मुंह न मोड़ा--सन्मुख होने की चेष्टा की, उन्होंने खूब पाया, उन्होंने खूब ज्योति जलायी। दीए ही नहीं, मशालें जला लीं। और कुछ ऐसी रोशनी जलायी जो फिर कभी नहीं बुझती। उन्होंने वास्तविक जीवन को पा लिया।
अब यह बड़ा उलटा दिखता है, मौत के माध्यम से वास्तविक जीवन को पा लिया। कैसे यह घटता है? ऐसे ही घटता है कि जैसे ही मौत साफ होने लगती है, तुम्हारे सपने टूटने लगते हैं। मौत को अगर तुम देखते रहो, जानते रहो,

सोचते रहो, विचारते रहो, ध्यान में गुनगुनाते रहो--बूझते रहो, बुद्ध कहते हैं--तो तुम सपने न बना सकोगे। अचानक उमंग उठी सपने की कि लाख इकट्ठा करें, और तभी ख्याल आ गया मौत का, ढीले पड़ जाओगे। क्या फायदा?
"कैसी हंसी? कैसा आनंद?"
चले थे बारात लेकर दुल्हन को लेने, रास्ते में मौत का ख्याल आ गया। डोला क्या उठा, अर्थी उठ गयी! अगर तुम स्मरण रखो मौत को, तो तुम पाओगे, जगह-जगह से सपने टूटने लगे। और सपने कुछ ऐसे हैं, सपनों का स्वभाव कुछ ऐसा है, कि टूटने लगें एक बार तो तुम उन्हें फिर न सम्हाल सकोगे। बड़े नाजुक हैं! अगर फूलों से बने ये स्वप्न होते
और मुरझाकर धरा पर बिखर जाते
कवि-सहज भोलेपन पर मुस्कुराता,
किंतु चित्त को शांत रखता
हर सुमन में बीज है
हर बीज में है वन सुमन का
क्या हुआ जो आज सूखा,
फिर उगेगा
फिर खिलेगा
अगर फूलों से बने ये स्वप्न होते। अगर कंचन के बने ये स्वप्न होते टूटते या विकृत होते
किसलिए पछताव होता?
स्वर्ण अपने तत्व का इतना धनी है वक्त के धक्के, समय की छेड़खानी से नहीं कुछ भी कभी उसका बिगड़ता स्वयं उसको आग में मैं झोंक देता फिर तपाता, फिर गलाता, ढालता फिर। अगर मिट्टी के बने ये स्वप्न होते टूट मिट्टी में मिले होते
हृदय मैं शांत रखता
मृत्तिका की सर्जना-संजीवनी में है बहुत विश्वास मुझको
वह नहीं बेकार होकर बैठती है
एक पल को!
फिर उठेगी, फिर उठेगी, फिर उठेगी। किंतु इनको क्या करूं मैं
स्वप्न मेरे कांच के थे।
किंतु इनको क्या करूं मैं
स्वप्न मेरे कांच के थे
एक स्वर्गिक आंच ने उनको ढला था
एक जादू ने संवारा था, रंगा था कल्पना-किरणावली में वे जगर-मगर हुए थे टूटने के वास्ते थे ही नहीं वे
किंतु टूटे तो निगलना ही पड़ेगा
आंख को यह क्षुर सुतीक्ष्ण यथार्थ दारुणः
कुछ नहीं इनका बनेगा
कुछ नहीं इनका बनेगा
कुछ नहीं इनका बनेगा
एक बार टूटने लगें स्वप्न, तो फिर तुम उन्हें जोड़ न पाओगे। एक बार जागने लगो, तो फिर तुम सो न पाओगे। एक बार सत्य का थोड़ा सा भी अनुभव होने लगे, तो असत्य को फिर तुम बसा न पाओगे। सुबह जब सूरज निकलता है, अंधेरा खो जाता है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर जब जीवन के प्रति होश की किरण आनी शुरू होती है, तो सपने छितर-बितर हो जाते हैं। टूटने को वे बने ही न थे। अगर टूट

गए, फिर जुड़ न सकेंगे। कांच के हैं। कांच से भी नाजुक हैं, कांच भी जुड़ जाता है।
इसीलिए हम डरते हैं कि कहीं मौत का दारुण सत्य हमारे सपनों की जगमगाहट को तोड़ न दे। इसीलिए हम डरते हैं, मौत को हम देखते ही नहीं, टालते हैं, स्थगित करते हैं। हमने कुछ ऐसा मान रखा है कि मौत कहीं जीवन में थोड़े ही घटती है--जीवन के बाद। हम मरते थोड़े ही हैं, जीवन के बाद मौत घटती है, जब जीवन जा चुकता है तब घटती है। हमने मौत को जीवन के बाहर ढकेल रखा है। जीवन को हमने अलग छांट लिया है, मौत को अलग छांट लिया है।
जानना ठीक से, मौत जीवन में घटती है। रोज घटती है, घट ही रही है। घटती
ही रही है। ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन सत्तर साल के होकर तुम अचानक मर जाते हो। सत्तर साल मरते हो, तब मर पाते हो। यह लंबा सिलसिला है। रोज-रोज मरते हो, पल-पल मरते हो, तब मर पाते हो। मरना कोई घटना थोड़े ही है, प्रक्रिया है। ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन अचानक जीवित थे और फिर मर गए। ऐसा हो भी कैसे सकता है! जीवित होते, तो मर कैसे जाते? मर ही रहे थे, इसीलिए मर गए।
बुद्ध से पूछो, तो वे कहेंगे, जन्म के साथ ही मौत शुरू हो जाती है। जन्म का दिन ही मौत का दिवस है। इधर जन्मा नहीं बच्चा, मरने लगा। दो-चार सांस लीं, उसका अर्थ है दो-चार सांस मर गया। दो-चार दिन जीया, उसका मतलब दो- चार दिन मर गया। मौत आगे बढ़ गयी। जन्म में ही छुपी आ जाती है। जन्म का रूप लेकर आ जाती है। जन्म आवरण है मृत्यु का।
निश्चित ही लोग नाराज हुए। वे बुद्ध को क्षमा न कर सके। इस जमीन से ही बुद्ध को उखाड़ फेंका। यह आदमी कुछ घबड़ाने वाला साबित हुआ। जीवन की बात करता, प्रभु के गीत गाता, हम स्वीकार कर लेते। क्योंकि जीवन के गीत और प्रभु के गीत कहीं न कहीं हमारे सपनों के साथ मेल भी खा जाते। मेल ही नहीं खा जाते, शायद हमारे सपनों को बड़ा बल दे जाते। हमने इसका बड़ा सम्मान किया होता। लेकिन इस आदमी ने धक्के दे-देकर हमें जगाने की कोशिश की। इसने हमारा स्वर भंग किया। हम गीत में लीन थे, इसने हमें चौंकाया और कहा, कहां के गीत, कैसी हंसी, कैसा आनंद?
बावले थे जब तलक, बकते थे, सब करते थे प्यार
अक्ल की बातें कहीं, क्या हमसे नादानी हुई
तुम भी अगर व्यर्थ की बकवास जारी रखो, लोग प्रसन्न होंगे। सपनों की बात करो, सपनों के सौदागर बनो, लोग प्रसन्न होंगे।
बावले थे जब तलक, बकते थे, सब करते थे प्यार
अक्ल की बातें कहीं, क्या हमसे नादानी हुई
मगर अक्ल की बात मत कहना, लोग अक्ल के दुश्मन हैं। लोग वही सुनना चाहते हैं, जो उन्हें अभी प्रीतिकर लगता है। सत्य नहीं सुनना चाहते, प्रीतिकर सुनना चाहते हैं। श्रेयस से उन्हें कोई मतलब नहीं, प्रेयस से मतलब है। जो उन्हें प्रीतिकर लगता है वही सुनना चाहते हैं।
तुम उनके सपनों को सजाओ। तुम उन्हें सपनों के सजाने की सामग्री दो। तुम उनसे कहो, यह कारागृह नहीं है, तुम्हारा निवास है। तुम उन्हें मौत को छिपाने के लिए उपाय दो। तुम उनको कहो कि जीए चले जाओ; आज नहीं घटा सुंदर, कल घटेगा; आज नहीं आशा भरी, कल भरेगी; आज नहीं बरसे बादल यश के, धन के, वैभव के, कल बरसेंगे। नहीं इस पृथ्वी पर, तो परलोक में बरसेंगे। नहीं इस लोक में तो स्वर्ग में। उनके सपनों को गति दो। उनसे कहो, चढ़े रहो स्वप्नों के अश्वों पर, चलते रहो, कभी न कभी पहुंच ही जाओगे। तो वे तुमसे प्रसन्न होंगे। इसीलिए संसार कवियों से बड़ा प्रसन्न रहा है। संतों की पूजा करता रहा है, लेकिन प्रसन्न नहीं रहा। क्योंकि संत तुम्हें कहीं न कहीं तो खींचेगा, जगाएगा। तुम सोना चाहते हो, संत कहीं न कहीं अलार्म बजाएगा। तोड़ देगा नींद। और अभी-अभी तुम सोए थे, और खूब मधुर सपनों में दबे थे।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन सुबह उसे उठाया। वह बड़ी चौंकी। जैसे ही उसने आंख खोली, जल्दी से आंख बंद कर ली और बोला, अच्छा कोई हर्जा नहीं, निन्यानबे ही ले लेंगे। उसकी पत्नी ने कहा, मामला क्या है? किससे बातें कर रहे हो? बड़े क्रोध से उसने आंखें खोलीं और कहा नासमझ, एक बड़ा मधुर सपना देख रहा था। एक देवदूत खड़ा था और वह कहता था,

मांग ले क्या मांगना है। मैं उससे सौ रुपए की जिद्द कर रहा था, वह कहता था, निन्यानबे देंगे। और बेवक्त तूने उठा दिया, जगा दिया, सब गड़बड़ कर दिया। अब मैं आंख भी बंद करता हूं, वह नदारद है। दिखायी नहीं पड़ता। अब मैं निन्यानबे भी लेने को राजी हूं, अट्ठानबे से भी चलेगा, अभी तेरी जो मर्जी हो दे दे--मगर अब यहां कोई है ही नहीं।
संतों के पास होने का अर्थ है, सपनों को तोड़ने का साहस। तुम संतों के पास भी जाते हो तो इसीलिए जाते हो कि सपने जो तुम पूरे नहीं कर पा रहे हो, वे उनके आशीष से पूरे हो जाएं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं--बड़ी गलत जगह आ जाते हैं--वे मुझसे कहते हैं,
बस आप तो आशीर्वाद दे दें। मैं उनसे पूछता हूं, काहे के लिए? वे कहते हैं, आप तो सब जानते ही हैं। बस आप तो दे दें। मुझे पक्का तो पता चले, कि तुम करना क्या चाहते हो? कहते हैं, जरा चुनाव में खड़े हो रहे हैं। चुनाव में वे खड़े हो रहे हैं, मुझे भी फंसाने का इरादा है। मैं उनसे कहता हूं, अगर मेरा आशीर्वाद चाहते हो तो हारोगे। अगर उतनी हिम्मत हो तो दूं। चुनाव में जीतने का आशीर्वाद! तो मैं कोई तुम्हारा दुश्मन हूं? यह तो ऐसा ही हुआ कि जैसे कोई आए और कहे कि पागल हो रहा हूं, आशीर्वाद दें।
लेकिन लोग पागल होने के लिए आशीर्वाद मांग रहे हैं। जहां उन्हें वैसे आशीर्वाद मिल जाते हैं, वहां वे बड़े प्रसन्न हैं। वहां उनके सिर झुकते हैं श्रद्धा से।
बुद्ध ने चौंकाया, घबड़ाया। जिस गहनता से बुद्ध ने मृत्यु को खींचकर जीवन के बीच बाजार में खड़ा किया, कभी किसी और ने न किया था। इसलिए बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को पीत-वस्त्र दिए। पीत-वस्त्र मृत्यु के प्रतीक हैं। जैसे गैरिक-वस्त्र जीवन के प्रतीक हैं, वैसे पीत-वस्त्र मृत्यु के प्रतीक हैं।
पीलापन। पत्ता जब मरने लगता है तो पीला हो जाता है। सूख जाता है। मौत आ गयी।
बुद्ध ने पीले वस्त्र दिए अपने भिक्षुओं को, मृत्यु का आवरण दिया। इसी की बना लो ओढ़नी, इसी की बना लो बिछौनी--मौत की--ताकि जीवन का धोखा टूटे। बुद्ध ने अपने संन्यासी को भिक्षु कहा। इस देश में संन्यासी सदा से स्वामी कहा गया है। बुद्ध ने कहा, यहां मालकियत कैसी? इस जीवन में और मालकियत! यहां तो सब भिखारी हैं। यहां तो भिक्षु होना ही सत्य है, यह तुम्हें याद रहे। यहां तो सभी भिक्षापात्र लिए हैं, यह तुम्हें भूले न, यह तुम्हें स्मरण रहे। बुद्ध ने सब भांति जीवन का निषेध किया है, क्योंकि मृत्यु उनका द्वार है।
"इस चित्रित शरीर को तो देखो! यह व्रणों से युक्त, अंगोपांगों से जोड़कर बनाया गया है।"
बुद्ध ने कहा कि जो चीज भी जोड़कर बनायी जाती है, वह टूटेगी। अजोड़ को खोजो। जुड़े से मत जुड़े रहना। जो चीज भी जोड़कर बनायी जाती है, वह टूटेगी। क्योंकि जोड़ कब तक बने रहेंगे। मकान बनाया, तो जोड़ से बनाया है, ईंटें जोड़ी हैं, टूटेगा। रथ बनाया, जोड़कर बनाया, टूटेगा। बुद्ध कहते हैं, उसकी तलाश करो, जो दो चीजों से जुड़कर नहीं बना है। जो अखंड है, वही कभी नहीं टूटेगा। अखंड कैसे टूटेगा? जिसमें खंड ही नहीं हैं, उसका विसर्जन न हो सकेगा।
तो बुद्ध कहते हैं, यह शरीर तो व्रणों से युक्त है। इसमें तो घाव ही घाव हैं। चमत्कार है कि कैसे यह चलता है! इसमें तो बीमारियां ही बीमारियां हैं।
जरा सोचो तो, एक शरीर में और कितनी बीमारियों की संभावना है! तुम यह मत सोचना कि कोई बीमार होता है, तो उसको बीमारी होती है। तो फिर तुम्हें चिकित्साशास्त्र का कुछ पता नहीं। बीमारियां तो सभी के भीतर हैं। किसी की प्रगट हो जाती है, किसी की प्रगट नहीं होती। समय मिल जाता है, प्रगट हो जाती है। अवसर मिल जाता है अनुकूल, तो प्रगट हो जाती है।
तुम सुनते हो फलां आदमी को कैंसर हो गया, तो तुम सोचते हो कि बड़े सौभाग्यशाली हम, कि हमको नहीं हुआ। कैंसर का रोगाणु तुम्हारे भीतर भी है। संभावना तुम्हारी भी है। सभी बीमारियां तुम्हारी भी हैं। हां, अनुकूल अवसर पाकर कोई बीमारी सक्रिय हो जाएगी, कोई सोयी रहेगी।

बुद्ध ने कहा है, शरीर तो घर है रोगों का। प्रतीक्षा में हैं बैठे रोग, जैसे बीज दबे हैं पृथ्वी में, मौका देखते हैं अनुकूल ऋतु, अनुकूल समय का, अंकुरित हो उठेंगे।
निश्चित ही। आधुनिक चिकित्साशास्त्र भी कहता है कि मनुष्य है, यह एक चमत्कार है। इतने रोगाणु हैं कि मनुष्य का होना कल्पना के बाहर है--कि हो कैसे सकता है मनुष्य! अगर किसी से पूछा जाता यह प्रश्न कि इतनी बीमारियां हों, तो क्या आदमी सत्तर साल जी सकेगा, इतनी बीमारियां जिसके भीतर हों? अगर यह सैद्धांतिक सवाल हो, तो कोई भी चिकित्साशास्त्री राजी नहीं हो सकता कि जी सकेगा। आदमी चमत्कार है! इतने रोगों के रहते जी लेता है, घसिट लेता है। चल लेता है किसी तरह, गुजार लेता है। जीवेषणा इतनी प्रबल है आदमी की, इसीलिए जी लेता है।
तुमसे मैं एक बात कहूं। आधुनिक, नवीनतम खोजें चिकित्सा की कहती हैं
कि जिस आदमी के भीतर से जीवेषणा चली जाती है, उसके भीतर रोगों के हमले बढ़ जाते हैं। जो लोग रिटायर्ड हो जाते हैं काम-धंधे से, जीवन से, वे दस साल पहले मर जाते हैं। जीवेषणा चली जाती है।
पहले डिप्टी-कलेक्टर थे, या कलेक्टर थे, या पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे,
या किसी और तरह की नासमझी थी, लोग नमस्कार करते थे। फिर रिटायर्ड हो गए, अब कोई देखता ही नहीं। कल जो लोग नमस्कार करते थे, वे पहचानते ही नहीं। अब वे दूसरे को नमस्कार करेंगे, क्योंकि दूसरे डिप्टी-कलेक्टर हो गए। अब तुम्हीं को करते रहें, तो हाथों की भी सीमा है, नमस्कार की भी सीमा है। अब हाथ कहीं और झुकने लगे, क्योंकि कहीं और ताकत चली गयी। भूतपूर्वों को कहां तक नमस्कार करो!
मैं देश में घूमता था, तो मैं कम से कम तीन सौ ऐसे लोगों से परिचित हूं
जो भूतपूर्व मंत्री हैं। भूत-प्रेत की भांति। अब इनको कौन नमस्कार करे? कौन इनकी फिकर करे? जिंदा भूत दूसरे बैठे हैं, उनकी तरफ नमस्कार जाती है। रिटायर्ड हुआ आदमी जिंदगी से ऐसे हट जाता है जैसे तुम सुबह कूड़ा-करकट बाहर के ढेर पर फेंक आते हो। एकदम व्यर्थ हो जाता है। बच्चे बड़े हो गए, उनकी अपनी दुनिया हो गयी, वे चले गए। हाथ से काम चला गया, काम गया तो काम के साथ जुड़ी प्रतिष्ठा चली गयी। घर में भी जो हैं बच्चे अगर, तो वे भी सोचते हैं कि बूढ़ा है, सठिया गया; कोई सुनता नहीं। अचानक जीने की आकांक्षा शिथिल हो जाती है। अब जीकर भी क्या करेंगे? जीवेषणा शिथिल हुई, बीमारियों का हमला हुआ।
उस व्यक्ति को कोई चिकित्साशास्त्र नहीं बचा सकता, जिसके भीतर से जीने की आकांक्षा चली गयी। इसीलिए चिकित्सक कहते हैं कि एक ही बीमारी हो, एक से शरीर हों, एक सी स्थिति हो, तो भी एक बच जाता है, दूसरा नहीं बच पाता। बच जाता है वह जिसकी जीने की आकांक्षा प्रबल है। जिसके जीने की आकांक्षा प्रबल नहीं है, वह खुद ही शिथिल होकर डूब जाता है।
जीवेषणा जिला रही है। इसीलिए तुम सत्तर साल खींच लेते हो। यह बड़ा पतला धागा है, लेकिन इससे तुम लटके रहते हो। किसी तरह गुजार लेते हो। बुद्ध का सारा शास्त्र यही है कि जीवेषणा ही तुम्हारे दुखों का आधार है। जीवेषणा जाने दो। क्योंकि मौत तो आएगी ही, इसलिए तुम मौत को स्वीकार ही कर लो। तुम्हारी मृत्यु की स्वीकृति में ही तुम्हें पहली दफे अपने स्वभाव का दर्शन होगा। तुम्हें अनुभव होगा कि मैं कौन हूं। जब तक तुम जीवन की महत्वाकांक्षा से भरे हो, तब तक तुम जीवन की गहनतम स्वभाव की, स्वरूप की स्थिति को न जान पाओगे।
"इस चित्रित शरीर को तो देखो!"
यह कठिन होगा, लेकिन इसे स्वीकार करना होगा।
और छाती वज्र करके
सत्य तीखा आज यह
स्वीकार मैंने कर लिया है
स्वप्न मेरे ध्वस्त सारे हो गए हैं

जिसने ऐसा जाना--छाती वज्र करके--कठिन है। लेकिन जिसने अपने सपनों को गिरा हुआ, इंद्रधनुष को जैसे पैरों तले रौंद दिया गया, धूल में गिर गया, बिखर गया, ऐसा जिसने जान लिया--छाती कठोर करनी होगी। छाती चाहिए, तो ही कोई सपनों को गिरा हुआ देख सकता है।
हम तो यह करते हैं, एक सपना टूटा नहीं कि दूसरा बना लेते हैं। हम दूसरा पहले से तैयार ही रखते हैं--स्पेयर तैयार रखते हैं। इधर एक सपना पंचर हुआ, हमने दूसरा स्पेयर जल्दी से निकाला डिग्गी से और लगा दिया। गाड़ी फिर चल पड़ी।
जब सपने पंचर हों, उनको हो ही जाने देना। गाड़ी को रुक ही जाने देना। सपनों से छूटोगे तो सत्य से संबंध जुड़ेगा।
"यह देहाकार जराजीर्ण, रोगों का घर और अत्यंत भंगुर है। यह सड़न का भंडार विनाश को प्राप्त होता है। और निश्चय ही जीवन का अंत मृत्यु में होता है।"
एक ही बात निश्चित है। जीवन में एक ही बात निश्चित है। बड़ा आश्चर्य है। जीवन निश्चित नहीं है जीवन में, मृत्यु निश्चित है। और सब चीजें अनिश्चित हैं! हो भी सकती हैं, न भी हों। हो जाएं तो संयोग, न हों तो संयोग। पद मिल जाए, न मिले; धन मिल जाए, न मिले; यश मिल जाए, न मिले; मौत मिलेगी ही। और सब अनिश्चित है। इसलिए अनिश्चित पर दांव मत लगाना। और अनिश्चित को पा भी लोगे, तो क्या करोगे? वह जो मौत है, वह जो निश्चित है, वह आकर तुम्हारा-- किसी तरह तुमने जो इंतजाम भी जमा लिया होगा--उसे भी बिखरा देगी।
"यह देहाकार जराजीर्ण, रोगों का घर और अत्यंत भंगुर है।"
पानी के बबूले जैसा भंगुर है। जब तक नहीं टूटा, नहीं टूटा। पानी का बबूला देखा? जब तक नहीं टूटा नहीं टूटा। तब तक तो सूरज की किरण पड़ जाए तो कैसी चमक आ जाती है बबूले में। कैसे रंग बिखर जाते हैं। कैसा सुंदर हो उठता है। क्षणभर को तो ऐसा भ्रम देता है, हीरों का। लेकिन कोई भी सम्हाल न सकेगा इस हीरे को। छुआ नहीं कि टूटा। न भी छुओ तो भी टूटेगा। बचाने का कोई उपाय नहीं है।
"... रोगों का घर, अत्यंत जराजीर्ण भंगुर है। यह सड़न का भंडार विनाश को प्राप्त होता है। और निश्चय ही जीवन का अंत मृत्यु में होता है।"
मैं एक सूफी कहानी पढ़ता था। एक युवक ने आकर अपने गुरु को कहा, अब बहुत
हो गया, मैं जीवन छोड़ देना चाहता हूं। लेकिन पत्नी है, बच्चा है, घर-द्वार है। गुरु ने कहा, तेरे बिना वे न हो सकेंगे? उसने कहा कि ऐसा तो कुछ नहीं है, सब सुविधा है, मेरे बिना हो सकेंगे। लेकिन मुझे लगता है ऐसा कि मैं मर जाऊंगा तो मेरी पत्नी जी न सकेगी, मेरे बच्चे मर जाएंगे। इतना उनका प्रेम है मेरे प्रति।
उस फकीर ने कहा, फिर ऐसा कर, कुछ दिन यह श्वास की विधि है, इसका अभ्यास कर, फिर आगे देखेंगे। श्वास की विधि उसने अभ्यास की। विधि ऐसी थी कि अगर तुम थोड़ी देर के लिए श्वास साधकर पड़ जाओ, तो मरे हुए मालूम पड़ो।
फिर उस फकीर ने उसे भेजा घर कि आज सुबह तू जाकर लेट जा और मर जा; फिर आगे सोचेंगे। मैं आता हूं पीछे। वह आदमी गया। लेट गया सांस साधकर, मर गया। मर गया मालूम हुआ। छाती पिटाई मच गयी, रोना-धोना हुआ, बच्चे चिल्लाने लगे, पत्नी चिल्लाने लगी कि मैं मर जाऊंगी।
तभी वह फकीर आया। द्वार पर आकर उसने अपनी घंटी बजायी। भीतर आया, उसने कहा, अरे! यह युवक मर गया? यह बच सकता है अभी, लेकिन कोई इसके बदले में मरने को राजी हो तो।
सन्नाटा हो गया। न बेटा मरने को राजी, न बेटी मरने को राजी, न मां मरने
को राजी, न बाप मरने को राजी। पत्नी, जो अभी तक चिल्ला रही थी मर जाऊंगी, वह भी चुप हो गयी। अब वह भी नहीं चिल्लाती कि मर जाऊंगी।
फकीर ने पूछा, कोई भी तुममें से राजी हो इसकी जगह मरने को तो यह बच सकता है। अभी यह गया नहीं है, लौटाया जा सकता है। अभी बहुत दूर नहीं निकला है, बुलाया जा सकता है। मगर किसी को तो जाना ही पड़ेगा। पत्नी ने कहा, अब यह तो मर ही गया, अब हमको और क्यों मारते हो! अब जो हो गया सो हो गया।

गुरु ने उस युवक से कहा, अब तू अपना सांस-साधना छोड़ और उठ। उसने सांस-साधना छोड़ी, उठा। अब तेरा क्या ख्याल है? उसने कहा, जब ये लोग कहते हैं कि मर ही गए और इनमें से कोई मेरे बदले मरने को राजी नहीं, तो मैं मर ही गया। मैं आपके पीछे आता हूं।
स्वभावतः उसे रोकना भी मुश्किल हुआ। पत्नी के पास कहने को कोई कारण
भी न बचा।
बुद्ध ने लोगों को समझाया कि तुम जिसे जीवन कह रहे हो, तुम जिसे जीवन
का लगाव कहते हो, तुमने जीवन में जो आसक्ति के बहुत से घर बनाए हैं, मोह के बहुत ताने-बाने बुने हैं, तंबू लगाए हैं, उनको जरा गौर से तो देखो, पानी के बबूले हैं। क्षणभंगुर हैं। कोई यहां किसी का साथी नहीं, कोई यहां किसी का संगी नहीं। तुम ही अपनी देह का भरोसा नहीं कर सकते और किसका भरोसा करोगे! भोर बेला
सिंची छत से ओस की तिप्-तिप्
पहाड़ी काक
की विजन को पकड़ती सी क्लांत बेसुर डाक--
हाक! हाक! हाक!
मत संजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोता--
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक!
थाक! थाक! थाक!
बुद्ध ने बहुतों को बोध दिया--मिट्टी हो, मिट्टी में मिल जाओगे। मिट्टी के उठने और मिट्टी से गिरने के बीच में जो थोड़ा अंतराल है, उसका उपयोग कर लो, एक सेतु बना लो। ध्यान साध लो, समाधि का दीया जला लो। ताकि तुम उसे जान लो, जो देह नहीं है; ताकि तुम उसे जान लो, जो संयोग नहीं है। ताकि तुम उसे जान लो, जो जोड़ नहीं है। ताकि तुम उसे जान लो, जिसका न कोई जन्म है और न मृत्यु है। उसे बुद्ध निर्वाण कहते हैं।
"शरद ऋतु की फेंकी हुई लौकी की भांति या कबूतर की सी भूरी हो गयी उन हड्डियों को देखकर रति कैसी?"
बुद्ध कहते हैं, प्रेम, काम, संभोग, रति; थोड़ा सोचो तो, किससे रति कर रहे हो!
"शरद ऋतु की फेंकी गयी लौकी की भांति... ।"
असमय में लौकी पैदा हो जाती है तो खाने योग्य नहीं होती, सड़ी होती है। फेंक दी जाती है।
"... या कबूतर की सी भूरी हो गयी उन हड्डियों को तो देखो। इन्हें देखकर रति कैसी!"
शरीर का भोग चलता है, क्योंकि शरीर क्या है इसका स्मरण नहीं। जब दो व्यक्ति शरीर के भोग में रत हैं, रति में डूबे हैं, तब दो अस्थिपंजर, दो हड्डी-मांस- मज्जा से बने हुए संघट, दो मृत्युओं का मिलन हो रहा है। हड्डियां हड्डियों से टकराती हैं। पर हमने बड़े प्यारे शब्द बनाए हैं। हम कहते हैं, आलिंगन। आदमी ने शब्दों के बड़े धोखे खड़े किए हैं। और उन शब्दों की आड़ में हम पीछे देख ही नहीं पाते कि क्या हो रहा है? काश, तुम जरा आंख खोलकर गौर से देखो, तो तुम्हें अपनी प्रेयसी में भी अस्थिपंजर ही दिखायी पड़ेगा। ढंका है चाम से, खूब सुंदरता से ढंका है, पर है तो हड्डी-मांस-मज्जा ही।
"यह शरीर मानो हड्डियों का बना नगर है। मांस और रक्त से लिपा-पुता है; जिसके अंदर जरा, मृत्यु, अभिमान और दाह छिपे हुए हैं।"
"राजा के सुचित्रित रथ जैसे पुराने हो जाते हैं, वैसे ही यह शरीर भी जराजीर्ण हो जाता है। लेकिन संतों का धर्म कभी जीर्ण नहीं होता। संत लोग संतों से ऐसा ही कहते रहे हैं।"
उसे खोजो जो कभी जीर्ण नहीं होता। एस धम्मो सनंतनो। उस धर्म को खोजो
जो सनातन है। उस स्वभाव को खोजो जो शाश्वत है। जो क्षीण हो जाता है, उसमें समय मत गंवाओ, उसमें मत उलझे रहो, उसमें मत रमो।
"राजा के सुचित्रित रथ जैसे पुराने हो जाते हैं।"

जीरंति वे राजरथा सुचित्ता

सम्राटों के रथ हैं। कितनी चेष्टा, प्रयास, कला का आयोजन किया जाता है उन्हें रंगने के लिए। पर वे भी जराजीर्ण हो जाते हैं।

जीरंति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।

ऐसा ही यह शरीर भी कितना ही सजाओ, कितना ही संवारो, कितना ही रंगो, आज नहीं कल जराजीर्ण हो जाता है। सिर्फ एक वस्तु इस जगत में है, संतों ने जो जाना और संतों ने जो दूसरों से कहा, संतों ने जो संतों से कहा।
यह बड़ा महत्वपूर्ण वचन है।

सतं च धम्मो न जरं उपेति।

"संतों का धर्म कभी जीर्ण नहीं होता।"
क्यों बुद्ध ने संतों का धर्म कहा? धर्म ही कह देने से काम न चल जाता? धर्म कहने से भ्रांति का डर था। क्योंकि तुमने भी न मालूम कितने धर्म खड़े कर लिए हैं--हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है, बौद्ध है--ये तुमने ही खड़े कर लिए हैं। अगर बुद्ध लौटकर आएं, तो बुद्ध धर्म को देखकर हंसेंगे। यह तो मैंने कभी भी न कहा था, वे कहेंगे।
वस्तुतः जो उन्होंने कहा था, ठीक उससे उलटा हुआ है। बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्ति मत बनाना। जितनी मूर्तियां बुद्ध की हैं उतनी किसी की भी नहीं। इतनी मूर्तियां बनीं बुद्ध की कि सारी पृथ्वी मूर्तियों से बुद्ध की ढंक गयी। उर्दू, अरबी और फारसी में तो मूर्ति के लिए जो शब्द है, वह ही बुद्ध का अपभ्रंश है--बुत। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध शब्द ही मूर्ति का पर्यायवाची हो गया--बुत। बुत यानी मूर्ति हो गया।
चीन में ऐसे मंदिर हैं जहां दस-दस हजार बुद्ध की मूर्तियां--एक-एक मंदिर में। बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्ति मत बनाना। क्योंकि मूर्ति तुम जिसकी बनाओगे, वह तो यही जरा-मरण वाली देह है। मूर्ति तुम जिसकी बनाओगे, वह तो यही हड्डी-मांस-मज्जा का रूप है। मूर्ति तुम जिसकी बनाओगे, वह मैं नहीं हूं--मेरी तो तुम मूर्ति कैसे बनाओगे? अमूर्त है चैतन्य तो। अरूप है, निराकार है। मत बनाना मेरी मूर्तियां। पर नहीं, बौद्धों ने बनायीं।
जो बुद्ध ने कहा है, करीब-करीब उससे उलटा हुआ है। होगा। क्योंकि ज्ञानी जब कुछ कहता है, और अज्ञानी जब सुनता है, तो वही नहीं सुनता जो ज्ञानी कहता है। अज्ञानी अपने मतलब की सुनता है।
अज्ञानी बड़े होशियार हैं। अज्ञानी हैं, मगर होशियार बहुत हैं। बड़े कुशल हैं, बड़े चालाक हैं। ज्ञानी भी उन्हें डिगा नहीं पाते। आते हैं, चले जाते हैं, अज्ञानी अपनी जगह जड़ जमाए बैठे रहते हैं। वे ज्ञानियों से भी अपने मतलब की बातें निकाल लेते हैं। वे वही करते हैं, जो उन्हें करना है। क्या कहते हैं ज्ञानी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे उसमें से भी निकाल ही लेते हैं अपना हिसाब। अपना शास्त्र रच लेते हैं, अपना मंदिर बना लेते हैं, अपनी मूर्ति गढ़ लेते हैं।
जीसस ने जो कहा था, ईसाइयत का उससे कोई भी संबंध नहीं है। अगर जीसस ने
जो कहा था वही ईसाइयत करती, तो जैसी ईसाइयत दिखायी पड़ती है ऐसी हो ही नहीं सकती थी। जीसस ने कहा था, जो एक गाल पर तुम्हारे चांटा मारे, दूसरा सामने कर देना। और ईसाई तलवारें लेकर लड़े। लेकिन उन्होंने कहा, यह जिहाद है, धर्मयुद्ध है। जीसस ने कहा था, जो तलवार उठाएगा, वह तलवार से ही नष्ट हो जाएगा। और ईसाइयों के हाथ में जैसी तलवार रही, वैसी किसी के हाथ में नहीं है।
अब जीसस को अगर कहीं खबर मिली होगी कि दुनिया में जो पहला अणुबम गिरा,
वह एक ईसाई देश ने गिराया, तो छाती पीट ली होगी। तलवार वगैरह की तो बात ही छोड़ो। जिस राष्ट्रपति की आज्ञा से अणुबम गिरा, उसने जीसस के नाम पर कसम

खायी थी राष्ट्रपति का पद स्वीकार करते वक्त, कि खाता हूं कसम जीसस की कि धर्म के अनुसार चलूंगा। उसने आज्ञा दी कि हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराओ। एक बम ने एक लाख बीस हजार लोगों को क्षण में राख कर दिया। कहां जीसस का वक्तव्य कि जो तलवार उठाएगा वह तलवार से नष्ट होगा। कहां जीसस का वक्तव्य कि जो एक गाल में मारे चोट, दूसरा सामने कर देना। और कहां हिरोशिमा पर गिरा एटम बम! जलती हुई लपटें! इनसे कैसे संबंध जोड़ोगे?
जीसस ने कहा था, जो तुम्हें एक मील चलने को मजबूर करे, दो मील चले जाना। और जो तुमसे कोट छीने, कमीज भी दे देना। ईसाइयत ने जितने युद्ध किए, किसने किए?
मोहम्मद ने इस्लाम नाम रखा था अपने धर्म का। इस्लाम का अर्थ होता है, शांति। और तुम मुसलमानों से ज्यादा अशांति पैदा करने वाले लोग कहीं भी खोज सकते हो? सारी मनुष्यता के इतिहास को उन्होंने अशांत किया।
इसलिए बुद्ध कहते हैं--

सतं च धम्मो न जरं उपेति।

"संतों का जो धर्म है, वह कभी जीर्ण नहीं होता।"
वे तुम्हारे धर्मों को अलग कर रहे हैं। क्योंकि तुम्हारा धर्म तो तुम्हारा अधर्म ही है। तुम्हारे मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे तुम्हारे धर्म से बचने के उपाय हैं, धर्म करने के नहीं। तुमने वहां शरण ली है। तुमने परमात्मा की प्रतिमाएं बनायी हैं और वहां शैतान को छिपाया है। तुमने शास्त्रों का बड़ा-बड़ा सुंदर रूप खड़ा किया है और उन शास्त्रों में अपने अज्ञान को शरण दी है।
इसलिए बुद्ध को विशेष रूप से कहना पड़ता है, "संतों का धर्म कभी जीर्ण नहीं होता।" और फिर एक और बड़े मजे की बात कही है, "संत लोग संतों से ऐसा ही कहते हैं।"
यह इसलिए कहा कि संत जब तुमसे कुछ कहते हैं तो तुम तो कुछ और समझ लेते हो। बुद्ध ने कहा है कि मैं जो कहता हूं, तुम किसी से यह मत कहना कि तुमने वही सुना। तुम इतना ही कहना, ऐसा मैंने सुना है, बुद्ध ने क्या कहा यह बुद्ध जानें। किसी भक्त ने कहा कि यह बात तो जंचती नहीं। आप जो कहते हैं वही हम सुनते हैं। तो उन्होंने कहा, आज रात देखेंगे।
उस रात दस हजार भिक्षुओं के बीच में एक चोर भी आया था, एक वेश्या भी आयी थी सुनने। तो बुद्ध रोज रात को जब बोलते, तो अंतिम वचन हमेशा वे यही कहते थे, भिक्षुओ! अब जाओ, रात्रि का काम पूरा करने का समय आ गया। अब उस कार्य को पूरा करो।
रात्रि का काम था ध्यान। सारा जगत सो गया, अब तुम जागो। सारा कोलाहल शांत हुआ, अब तुम शांति में डूबो। अब उपद्रव बंद हुआ, बाजार बंद हुए, दुकानें खो गयीं, लोग जा चुके, अब तुम इस अमूल्य अवसर का उपयोग कर लो। आधी रात से ज्यादा सुंदर समय ध्यान के लिए कोई भी नहीं है। तो रोज-रोज क्या कहना कि ध्यान करो, वे यह कहते थे, अब रात हो गयी, अब जाओ रात्रि का अंतिम काम पूरा करो।
जब बुद्ध ने यह कहा, चोर चौंका। उसने कहा कि ठीक ही कहते हैं। अब जाऊं। रात आधी होने के करीब हो गयी, अपना काम करूं। वेश्या ने सोचा कि धन्य! कैसे पहचाना? इतने लोगों में भी पकड़ लिया मुझे। जाऊं, ठीक कहते हैं, अपना काम पूरा करूं।
दूसरे दिन सुबह बुद्ध ने कहा कि रात एक चोर भी था यहां, एक वेश्या भी थी। तुम जब भिक्षुओ ध्यान करने चले गए, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपना काम करने चली गयी। और सभी यह मानकर गए कि मैंने ऐसा कहा था।
तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुन सकते हो। तुम सुनोगे, तो तुम्हारा ही
तो सुनोगे। शब्द मैं बोलूं, अर्थ तो तुम दोगे। शब्द मेरा होगा, अर्थ तो मेरा नहीं हो सकता। शब्द मुझसे जाता है तुम्हारे पास, तुम्हारे कानों पर ध्वनि पैदा करता है, अर्थ तो मेरे प्राणों का मेरे प्राणों में ही छूट

जाता है। फिर वह शब्द गूंजता है तुम्हारे भीतर, और जो अर्थ संगृहीत होता है, वह तुम्हारा है।
इसलिए वे कहते हैं, "संत लोग संतों से ऐसा ही कहते हैं।"
संतों ने संतों से जो कहा है वही धर्म है। अब यह बड़ी मुश्किल बात है, क्योंकि संतों ने संतों से कुछ भी नहीं कहा। बुद्ध को सुनने महावीर थोड़े ही जाते हैं। महावीर को सुनने बुद्ध थोड़े ही जाते हैं। और कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि दो संत मिले भी, तो बोले नहीं।
फरीद और कबीर का मिलना हुआ था। दोनों बुद्धपुरुष। मगर कहते हैं, दो दिन साथ रहे, एक शब्द बोले नहीं। फरीद के शिष्य बड़ी आशा लगाए बैठे थे कि कुछ होगी गुफ्तगू दोनों के बीच, हम भी कुछ ले उड़ेंगे। कबीर के भक्त भी बड़ी आशा लगाए बैठे थे, सोए नहीं, भोजन करने न गए, बैठे ही रहे कि कभी हम यहां से खिसके और कुछ बोल दें एक-दूसरे से। मगर वे भी खूब मजबूत थे, वे चुपचाप ही बैठे ही रहे, बैठे ही रहे। दो दिन ऐसे लगे जैसे दो जन्म बीते। बड़ा लंबा मालूम पड़ा। दो आदमी चुपचाप बैठे, प्रतीक्षातुर उनके भक्तों की भीड़ लगी है, सुई गिर जाए तो सुनायी पड़ जाए, ऐसा सन्नाटा रहा। दो दिन बाद विदा हो गए। कबीर जाकर गांव के बाहर फरीद को विदा कर आए। मुस्कुराए, गले मिले, एक-दूसरे की आंख में झांका, बोले कुछ भी नहीं। दोनों के विदा होते ही दोनों के भक्तों ने पकड़ा।
कबीर के भक्तों ने कहा, हद्द हो गयी, कितने दिन से आशा लगाए थे कि फरीद गुजरते हैं यहां से। इसीलिए प्रार्थना की थी कि फरीद को निमंत्रण दो। निमंत्रण आपने दिया, बड़ी आपकी कृपा, मगर यह क्या हुआ? आप चुपचाप ही बैठे रहे। कबीर ने कहा, जो कहना था, उसके लिए शब्द की कोई जरूरत न थी। आंखों के इशारे में हो गयी बात। एक-दूसरे को देख लिया, हो गयी बात। एक-दूसरे के पास बैठ गए, हो गयी बात। कहने को कुछ था नहीं, मौन में हो गयी बात। अगर तुम मौन सुन सकते, तो तुम सुन लेते कि क्या कहा, क्या सुना। अब तुम मौन सुनना सीखो। कहीं ऐसा न हो कि दुबारा कोई फरीद आए, और फिर तुम इसी तरह मुश्किल में पड़ो। दो जानने वालों के बीच जो आदान-प्रदान होता है, वह चुप्पी में है।
फरीद के भक्तों ने पूछा कि क्या हुआ? हमने इसीलिए तो कहा था कि चलो स्वीकार कर लो निमंत्रण, रुको। दो परम ज्ञानी मिलेंगे, दो सूरज का मिलना होगा, हमारा अंधेरा भी थोड़ा घटेगा। दो दिन में थक गए। बड़ी अपेक्षा लेकर बैठे रहे। बड़े निराश हुए। बोले क्यों नहीं?
फरीद ने कहा, जो बोलता वह अज्ञानी सिद्ध होता। वहां बिना बोले बात हो रही थी। अगर मैं बोलता तो मैं खबर देता कि मौन की भाषा मुझे नहीं आती। तुम क्या मेरी फजीहत कराने पर उतारू हो? तुमसे मुझे बोलना पड़ता है, क्योंकि तुम अबोल न समझोगे। तुम निर्बोल न समझोगे। तुमसे बोल-बोलकर भी बोलता हूं तो भी तुम कहां समझते हो। न बोलूंगा तब तो तुम समझोगे ही नहीं। वहां कुछ मामला ऐसा था कि न बोलकर ही समझा जा सकता था। बोलते कि नीचे गिरे, पतन हो जाता। बोले हम खूब, मगर कोई और ही भाषा थी। परमात्मा की भाषा थी। परमात्मा मौन है, चुप है। उसका संगीत शून्य का है। उसकी वीणा में तार
भी नहीं हैं। इसीलिए तो हम उसे अनाहत नाद कहते हैं। आहत नाद नहीं है। बोलो तो आहत होता है। कंठ में टकराहट होती है, तो नाद पैदा होता है। वीणा को छेड़ो उंगलियों से, तो आहत नाद होता है। संघर्षण होता है। दो पत्थर टकरा दो, नाद होता है। प्रपात गिरता है, नदी गिरती है पहाड़ से, नाद होता है। लेकिन यह सब आहत नाद है। परमात्मा अनाहत नाद है। बिना बोले बोल रहा है। बिना गाए गा रहा है, बिना नाचे नाच रहा है।
तो फरीद ने कहा, हम बोले खूब। अब तुम एक बात करो, बहुत हो गया भाषा समझना, अब तुम शून्य की, मौन की भाषा समझो।
शून्य की भाषा सार्वभौम है। बोलो तो हिंदी होगी, बोलो तो अंग्रेजी होगी, जापानी होगी, जर्मन होगी। देशीय होगी। जातीय होगी। सीमा होगी।
स्थानिक होगी। न बोलो तो न जर्मन, न जापानी, न हिंदी, न गुजराती, न मराठी।
सार्वभौम। न बोलो, तो वृक्ष भी समझें, पत्थर भी समझें, पशु भी समझें, आकाश भी समझे, आदमी भी समझे। न बोलना सबसे बड़ी भाषा है। बोलने की सीमा है, मौन असीम है।

तो जब बुद्ध कहते हैं, संत लोग संतों से ऐसा ही कहते हैं, वे यह कह रहे हैं कि जब संतों ने शून्य में संवाद किया है, तो यही कहा है। क्या कहा है? कि संतों का धर्म कभी जीर्ण नहीं होता। यही कहा है कि तुम्हारा तो जीवन भी जीर्ण हो जाता है, संतों की मृत्यु भी जीर्ण नहीं होती। तुम तो जी-जीकर भी मरते हो, संत मर-मरकर भी जीते हैं। तुम तो जीने को भी पकड़-पकड़कर खो देते हो, संत मौत में उतर जाते हैं और परम जीवन को उपलब्ध हो जाते हैं।
लेकिन एक बात फिर अंत में दोहरा दूं कि बुद्ध दुखवादी नहीं हैं। यह उनकी विधि है, यह उनका ढंग है, तुम्हें सरकाने का मौत की तरफ। इसलिए वे शरीर की पीड़ाओं की बात करते हैं, रोगों की बात करते हैं, व्रणों की बात करते हैं, और क्षणभंगुरता की बात करते हैं। वे तुम्हें सरकाते हैं, ताकि तुम मौत के द्वार की तरफ सरको, ताकि तुम जागो, मौत में उतरो। मौत की सीढ़ियों से उतरकर ही कोई निर्वाण को उपलब्ध होता है। यह एक मार्ग।
अभी कुछ दिन पहले हम नारद की बात करते थे, वह जीवन का मार्ग। भक्ति, जीवन का मार्ग। तब सारा दृष्टिकोण बदल जाता है। तब प्रत्येक चीज के सौंदर्य की चर्चा होती है। क्योंकि तुम्हें जीवन की तरफ धकाना है। तुम्हें उत्सव की तरफ ले जाना है। तब गीत-नृत्य की बात होती है। तब नर्तन-वादन--उसकी बात होती है। तब रस की बात होती है। क्योंकि तुम्हें जीवन की तरफ ले जाना है।
ये दोनों विपरीत दिखायी पड़ने वाले मार्ग भी एक ही जगह पहुंचा देते हैं। गंगा बहती है पूरब की तरफ, नर्मदा बहती है पश्चिम की तरफ, पर दोनों एक ही सागर में गिर जाती हैं। सागर एक है। कोई भी मार्ग चुन लो, सागर में ही पहुंच जाओगे। मार्गों की बहुत जिद्द मत करना। मार्गों के नाम पर बहुत सिर मत तोड़ना। जो तुम्हें रुच जाए, सो भला। जो तुम्हें रुच जाए, उसी पर चल पड़ो। अगर तुम्हें यह अनुकूल पड़ता हो--दुख, दुख का बोध; मृत्यु, मृत्यु की प्रतीति और साक्षात्कार--बड़ा शुभ है, इससे ही खोज लो। अगर तुम्हें यह ठीक न लगता हो, इससे तुम्हारा तार न बैठता हो, इससे तुम्हारे सुर मेल न खाते हों, छोड़ो। मार्गों से कुछ लेना-देना नहीं है। मार्ग तो उपयोग कर लेने के हैं। बैलगाड़ी से चलो कि हवाई जहाज से चलो, क्या फर्क पड़ता है? पहुंचो। पहुंचकर न बैलगाड़ी हाथ में रह जाती है, न हवाई जहाज हाथ में रह जाता है। बैलगाड़ी भी छोड़ देनी पड़ती है, हवाई जहाज भी छोड़ देना पड़ता है।
मंजिल पर पहुंचकर रास्ते तो छूट जाते हैं। मंजिल पर बुद्ध और नारद मिल जाते हैं। मंजिल पर डायोनीसियस और अपोलो आलिंगन कर लेते हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
तिरपनवां प्रवचन

साक्षीभावः परम सूत्र

पहला प्रश्नः ओशो, आखिर आप कहते वही हैं जो आपको कहना है। फिर इतर बुद्धों की खूंटी का सहारा क्यों लेते हैं? अपनी बात सीधी ही हमसे क्यों नहीं कहते? हमें उलझाते क्यों हैं?

पूछा है स्वभाव ने।
बहुत सी बातें समझनी होंगी। पहली बात तो यह है--हजरत प्यार है, प्यार
को प्रश्न मत बनाओ!
बुद्धों से लगाव है। लगाव के लिए कोई उत्तर नहीं। जैसे तुम्हें कोई स्त्री पसंद आ जाए, मन भा जाए, कहो कि सुंदर है, बहुत सुंदर है, सिद्ध न कर सकोगे।
प्रेम तर्क से गहरा है। कोई पूछेगा, क्यों प्रेम करते हो, उत्तर न दे सकोगे। जहां तक प्रश्न और उत्तर जाते हैं, उससे आगे की बात है।
बुद्धों से मुझे लगाव है। जब संसार से लगाव हट जाता है, तो लगाव मिट थोड़े ही जाता है। लगाव मिटेगा कैसे? लगाव तो जीवन की ऊर्जा है। संसार से हटता है तो बुद्धों पर लग जाता है। बाजार से हटता है तो मंदिर में खिल जाता है। कामवासना से मुक्त होता है, करुणा बन जाता है। लगाव जाने वाला नहीं है। तुम्हारे जीवन का स्वभाव है। ऐसा ही समझो कि नीचे की मंजिल पर नल लगा हो, टोंटी बंद कर दो, तो ऊपर की मंजिल पर पानी चढ़ जाता है। नीचे की मंजिल की टोंटी खोल दो, ऊपर की मंजिल का पानी बंद हो जाता है।
वस्तुओं से लगाव है, अभी तुम्हें चैतन्य का दर्शन नहीं हुआ। अभी बाहर-बाहर भटकता है तुम्हारा लगाव, अभी अंतर्यात्रा शुरू नहीं हुई। जब होगी तब तुम समझोगे। फिर तुम बुद्धों के प्रेम में जीते हो। उन बुद्धों के जो हुए, उन बुद्धों के जो हैं, उन बुद्धों के जो होंगे।
कठिन है उनको समझाना, जिनकी नजर अभी धन, पद, यश में लगी है। कठिन है उनको समझाना, जिनकी नजरें अभी बाहर भटक रही हैं, वस्तुओं से उलझी हैं। लेकिन एक बार तुम्हें कहीं से भी बुद्धों की झलक मिल जाए, किसी के द्वारा भी मिल जाए--उसी को तो हम गुरु कहते हैं, जिसके माध्यम से बुद्धों कीशृंखला तुम्हारे लिए खुल जाए। गुरु तुम्हें अपने से थोड़े ही जोड़ता है, बुद्धों से जोड़ देता है। गुरु तुम्हें उस महाशृंखला से जोड़ देता है, जो जाग्रतपुरुषों की है। उस दीपमालिका से, जहां बुद्ध का दीया जलता है-- महावीर का, कृष्ण का, क्राइस्ट का, जरथुस्त्र का, लाओत्सू का। यह पंक्ति दीयों की बड़ी प्यारी है।
इन सभी दीयों में ज्योति एक है, पर सभी दीयों के ढंग अलग हैं। हर दीए
का रंग अलग है, शैली अलग है, अंदाज अलग है। अंदाज भी बड़े प्यारे हैं। लाओत्सू को समझो, बड़ा प्यारा अंदाज है। फिर कोई दूसरा उस अंदाज को न पा सका। अगर मैं तुम्हें अपने पर सीमित रखूं तो तुम्हें दीन बनाऊंगा। मेरा अपना अंदाज है। रोशनी वही है, मेरा अपना दीया है। पर और भी दीए हुए हैं। और भी हैं सुखनवर बहुत अच्छे
मैं तुम्हें अपने पर नहीं रोकना चाहता। मैं तुम्हारे लिए द्वार बनूं, दीवार न बनूं। तुम मुझसे प्रवेश करो, मुझ पर रुको मत। तुम मुझसे छलांग लो, तुम उड़ो आकाश में। मैं तुम्हें पंख देना चाहता हूं, तुम्हें बांध नहीं लेना चाहता। इसीलिए तुम्हें सारे बुद्धों का आकाश देता हूं।
तुम कहते हो, उलझन होती है, जानता हूं। जिनको पिंजड़ों में रहने की आदत
हो गयी है, खुले आकाश को देखकर बड़ी घबड़ाहट होगी। कहां जाएं? अब तक घर था, ठिकाना था, बंधी सींकचे की सीमा थी। खुला आकाश भयाक्रांत कर देगा। इतनी दिशाएं हैं, कैसे चुनें? कहां जाएं? और कहीं उत्तर गए, तो पछतावा रहेगा कि दक्षिण क्यों न गए। पता नहीं दक्षिण में ही सोने की खदानें हों। दक्षिण गए, तो मन पछताता रहेगा, पूरब क्यों न गए, जहां से ऊगता था सूरज, शायद वहीं

सब छिपा हो। पूरब गए तो मन कहता रहेगा, पश्चिम क्यों न गए, जहां सूरज जा रहा है रोज। तो अकारण तो न जाता होगा।
पिंजड़े में बंद पक्षी को ये सब अड़चनें नहीं हैं। कारागृह में पड़े आदमी को ये सब उलझनें नहीं हैं। न निर्णय लेना है, न किसी तरफ जाने की हिम्मत जुटानी है। न कोई कदम उठाना है। घूम लेता है अपने पिंजड़े में, सभी दिशाओं में हाथ-पैर मार लेता है। दिशाएं हैं ही नहीं वहां।
तुम चाहोगे कि मैं तुम्हें अपने पर सीमित रखूं, मगर मैं न चाहूंगा। मैं चाहूंगा कि तुम मेरे कारण मुक्त बनो। पहले भी लोग और बुद्धपुरुषों पर बोले हैं, लेकिन जैसा मैं बोल रहा हूं वैसा कभी नहीं कोई बोला।
महावीर अगर बोले हैं, तो कृष्ण पर नहीं बोले हैं; पार्श्व पर बोले हैं, नेमि पर बोले हैं, ऋषभ पर बोले हैं। जैनों के तीर्थंकरों पर बोले हैं। उत्तर पर ही बोले हैं, फिर दक्षिण पर नहीं बोले। माना कि अपने पर नहीं रोका, लेकिन अपनी दिशा पर रोका है। कारागृह तोड़ा, लेकिन पूरा आकाश तुम्हें नहीं दे दिया है। जैन-धारा के बाहर न गए।
बुद्ध भी बोले हैं, अपने से पहले बुद्धपुरुषों पर बोले हैं, लेकिन बौद्ध-धारा से इंचभर हटे नहीं। तो अड़चन नहीं है। बातें सीधी-साफ हैं, उलझन खड़ी नहीं होती। कृष्ण भी बोले हैं, मगर हिंदू-धारा के बाहर नहीं गए।
जीसस ने भी कहा है कि मैं पुराने पैगंबरों को पूरा करने आया हूं। मैं पिछले समय में दी गयी व्यवस्थाओं को तोड़ने नहीं आया हूं, उन्हें भरने आया हूं। लेकिन वे व्यवस्थाएं मूसा की हैं, इजेकील की हैं। यहूदी परंपरा की हैं। जीसस इंचभर उस परंपरा से यहां-वहां न गए। दिशाएं दीं उन्होंने। मैं तुम्हें आकाश दे रहा हूं।
इसलिए तुम्हारी उलझन मैं समझ सकता हूं। तुम्हारी अड़चन मैं नहीं समझता, ऐसा नहीं। खूब समझता हूं। सोच-समझकर ही पूरा आकाश दे रहा हूं।
क्योंकि मुझे लगता है, पिंजड़ों ने तो बांधा ही, दिशाओं ने भी बांध लिया।
जैन फिर जैन से आबद्ध हो गए। मेरे देखे, मनुष्य इस भांति दरिद्र हुआ, उसकी महिमा घटी, क्योंकि वह औरों को आत्मसात न कर सका।
कृष्ण को चूका, जो जैन हुआ। जो हिंदू हुआ, वह महावीर से वंचित हुआ। संकरी गली हो गयी। पहुंचाती है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, राह को भी विराट क्यों न बनाओ! और कभी-कभी मुझे लगता है, गली अगर इतनी संकरी है, तो तुम जहां पहुंचोगे, वह कोई बहुत बड़ा विराट नहीं हो सकता। क्योंकि साधन साध्य को निर्णीत करते हैं। मार्ग मंजिल को बनाता है। अगर तुम संकरे में जीने के आदी हो गए--और जीओगे तो मार्ग पर न-मालूम कितने जन्मों तक--तो तुम्हारी आंखें ही संकीर्ण न हो जाएं! तुम्हारी आत्मा ही कहीं दिशा न ले ले! ले लेती है।
जैन यहीं रहे, कृष्ण का मंदिर पड़ोस में, लेकिन उनके कानों में कृष्ण-मंदिर की घंटियां नहीं गूंजीं। नहीं गूंज सकतीं। उस तरफ कान बंद हैं। कृष्ण की बांसुरी बजती रही है, लेकिन उन्हें ऐसा ही लगा कि यह नींद में खलल है, कोलाहल है। वे कभी उस बांसुरी के स्वर को सुनने न गए। डरे रहे, कहीं यह बांसुरी का स्वर उन्हें भटका न दे। यह कहीं महावीर के मार्ग से च्युत न कर दे।
मैं तुम्हारे सारे बंधन तोड़ रहा हूं। इसलिए मेरे साथ तो अगर बहुत हिम्मत हो तो ही चल पाओगे। अगर कमजोर हो, तो किसी कारागृह को पकड़ो, मेरे पास मत आओ। लेकिन तुम्हारे कारण मैं संकीर्ण न दूंगा, मैं विराट ही दूंगा। जो ले सकेंगे उन्हीं को दूंगा। मैं तुम्हें इस योग्य बनाऊंगा--तुम्हें तोडूंगा, तुम्हें तरल करूंगा--इस योग्य बनाऊंगा कि तुम फैल सको सभी दिशाओं में, तुम उड़ सको खुले आकाश में।
वस्तुतः मैं तुम्हें कहीं ले जाना नहीं चाहता, उड़ना सिखाना चाहता हूं। ले जाने की बात ही ओछी है। मैं तुमसे कहता हूं, तुम पहुंचे हुए हो।
जरा परों को तौलो, जरा तूफानों में उठो, जरा आंधियों के साथ खेलो, जरा खुले आकाश का आनंद लो। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि सिद्धि कहीं भविष्य में है।
अगर तुम उड़ सको तो अभी है, यहीं है।

मैं चाहता हूं कि मंदिर से उठती घंटियों की आवाज में तुम्हें मस्जिद
की अजान भी सुनायी पड़े। कैसा दरिद्र हो गया आदमी! मस्जिद-मंदिर को बांट लिया। कैसा दरिद्र हो गया आदमी! अपनी धरोहर को बांट लिया। कोई जरूरत न थी। सब तुम्हारे हैं, तुम सबके हो।
तमीजे-कुफ्रो-ईमां मिट चुकी है अर्श अब दिल से
सदा नाकूस की कानों में आती है अजां होकर
अब कौन है काफिर और कौन है मुसलमां, यह भेद गिर गया।
सदा नाकूस की कानों में आती है अजां होकर
मंदिर से शंख की आवाज उठती है, अजान सुनायी पड़ती है।
तुम्हें पिघलाना चाहता हूं। तुम्हें धनी बनाना चाहता हूं। निश्चित
ही गरीब आदमी उतनी उलझन में नहीं होता, यह मुझे पता है। उलझन होने योग्य ही कुछ नहीं है। बैठे हैं अपनी झोपड़ी में। एक दिन का खाना मांग लाए हैं, भिक्षापात्र है। वही है रात का कंबल, वही है दिन का वस्त्र; वही है बिस्तर, वही है ओढ़नी, उलझन क्या है? जैसे-जैसे तुम धनी होते हो, उलझन बढ़ती है। कहां सोएं? क्या ओढ़ें? इतना कुछ है! चुनाव का सवाल उठता है।
और यही बात अंतर्जीवन के संबंध में भी सही है। आदमी दीन रहने में सुविधा पाता है। मैं तुमसे कहता हूं, तुम दरिद्र रहना चाहते हो, क्योंकि दरिद्र रहने में उलझन खड़ी नहीं होती। एक तरह की शांति होती है। चुनाव का उपाय ही नहीं है, उलझन ही नहीं है। जो है, वह है। उतना ही है। लेकिन जैसे- जैसे तुम धनी होते हो, वैसे-वैसे बड़ी कठिनाई आती है।
मगर मैं तुमसे कहता हूं, कठिनाई का मुकाबला करने से ही मनुष्य निर्मित होता है। जितनी चोट पड़ती है, उतनी जाग आती है। जितने तार तुम्हारे छेड़े जाएंगे, उतना संगीत निखरेगा। जितनी छेनी तुम पर पड़ेगी, उतना ही रूप प्रगट होगा।
गरीब रहना चाहते हो, सुलझाव के हिसाब से। कहते हो, एक बात बता दो, वही पकड़ लें, उलझाओ मत। एक बात पकड़ लेना सदा आसान है। चुनाव ही नहीं हो, तो चैतन्य की जरूरत ही नहीं होती। मूर्च्छित भी पकड़ लेता है एक बात। इसीलिए तो जो एक-एक बात पकड़े हैं, मूर्च्छित रह गए हैं।
हिंदू बेहोश है, मुसलमान बेहोश है, जैन बेहोश है। चले जाते हैं, रौ में बहे जाते हैं, भीड़ के धक्के कहें, वहां चले जाते हैं। जहां भीड़ जा रही है, वे भी चले जा रहे हैं। एकांत में, अकेले चलने में घबड़ाहट होती है। क्योंकि फिर कदम-कदम पर चुनाव है, और कदम-कदम पर निर्णय लेना है, और कदम-कदम पर होश रखना है।
इसीलिए तो लोग दूसरों का अनुसरण करते हैं, अपनी झंझट टली। किसी का भी पकड़ लिया पीछा। एक दफा मान लिया कि ठीक जा रहा होगा, चल पड़े। हम तो निश्चिंत हुए।
ध्यान रखना, तुम जिन्हें नेता कहते हो, वे निश्चिंत हैं, क्योंकि पीछे बहुत लोग उनका दामन पकड़े हुए हैं। वे निश्चिंत हैं कि जब इतने लोग मेरे पीछे चल रहे हैं, तो जरूर मैं ठीक ही चल रहा होऊंगा। अन्यथा कौन किसके पीछे चलता है! पीछे चलने वाले सोच रहे हैं कि जब नेता इतना निश्चिंत चल रहा है, तो निश्चित जानता होगा कहां जा रहा है। ऐसा लेन-देन है। अकेले चलने में तुम भी डरते हो, तुम्हारा नेता भी डरता है। इसीलिए तो व्यक्तित्व को पाना बड़ा दूभर मालूम होता है।
व्यक्तित्व पाने का अर्थ है, पगडंडी, राजपथ नहीं। और मैं तो तुम्हें पगडंडी भी नहीं दे रहा हूं, क्योंकि आकाश में पगडंडियां भी नहीं होतीं। पक्षी उड़ जाते हैं, पैरों के चिह्न भी नहीं छूटते। किसी को पीछे अनुसरण करने का उपाय भी नहीं बचता। आकाश कोरा का कोरा रह जाता है। यहां पथ बनते ही नहीं।
पूछा है, "आखिर आप वही कहते हैं जो आपको कहना है।"
अन्यथा तो कह भी कैसे सकता हूं! वही कहता हूं, जो मुझे कहना है। ठीक होगा इस तरह सोचना कि वही कहता हूं, जो मुझसे कहा जाता है। कहता, कुछ ठीक नहीं। क्योंकि कहने में तो ऐसा लगता है जैसे मैं कुछ तय किए बैठा हूं--वही

कहना है जो मुझे कहना है। नहीं, वही कहता हूं जो कहा जाता है। वही कहता हूं जो परमात्मा कहला रहा है।
काम जो तुमने कराया, कर गया
जो कुछ कहाया, कह गया
यह कथानक था तुम्हारा
और तुमने पात्र भी सब चुन लिए थे
किंतु उनमें थे बहुत से
जो अलग ही टेक अपनी धुन लिए थे
और अपने आपको अर्पण
किया मैंने कि जो चाहो बना दो
काम जो तुमने कराया, कर गया
जो कुछ कहाया, कह गया
मैं कुछ कहना चाहता हूं, ऐसा भी नहीं है। जो परमात्मा कहला रहा है वह
कह रहा हूं। अपने को मैंने हटा लिया है, यही मेरा होना है। और इसको इस तरह से हटा लिया है कि अब यह बांसुरी किसी के भी ओंठों पर रखी जा सकती है। यह कृष्ण के ओंठों पर रख दो, तो गीता के स्वर उठने लगेंगे। इसे तुम बुद्ध के ओंठों पर रख दो, तो एस धम्मो सनंतनो। इस बांसुरी का अपना कोई आग्रह नहीं है। यह बस, बांस की पोंगरी है। यह बस, खाली है। इसलिए कोई भी स्वर इससे उतरना चाहे तो मुक्त है। और मैं चाहता हूं कि जब तक यह बांसुरी है, तुम जितने ज्यादा स्वर सुन लो उतना अच्छा। तुम उतने धनी हो जाओगे।
तुम कहते हो, "आपको जो कहना हो वही कह दें।"
वही होगा। स्वर बांसुरी के ही रहेंगे। स्वर में बांसुरीपन रहेगा। बांसुरी से वीणा के स्वर न उठेंगे। लेकिन बांसुरी जब कृष्ण के ओंठों पर होगी, तो कुछ... बांसुरीपन में भी कुछ और जुड़ जाएगा। बुद्ध के ओंठों पर होगी, तो कुछ और जुड़ जाएगा। मैं तुम्हें धनी बनाना चाहता हूं। मैं निर्धनता का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तो निर्धनता का पक्षपाती तभी हूं, जब निर्धनता भी तुम्हारा धन हो।
मैंने सुना है, सूफी फकीर हुआ इब्राहिम। वह बल्ख का बादशाह था कभी। फिर उसने छोड़ दिया राज-पाट। फिर वह फकीर हो गया। पहली ही रात एक दरगाह में रुका, वहां एक दूसरा फकीर भी था। सांझ दोनों प्रार्थना करने बैठे हैं। वह दूसरा फकीर जोर-जोर से कहने लगा, परमात्मा! तेरी प्रार्थना करते-करते कितने दिन हो गए, कब तक गरीब रखेगा? कब तक और यह दीनता-दरिद्रता? कब तक यह और गरीबी? इब्राहिम हंसने लगा।
उस फकीर ने पूछा, हंसते हो, बात क्या है? इब्राहिम ने कहा, मालूम होता
है गरीबी तूने सस्ती पा ली। मुफ्त मिल गयी मालूम होता है। कुछ चुकाया नहीं मालूम होता। अरे पागल, हम पूरा साम्राज्य देकर गरीबी लिए हैं, बड़ी महंगी पायी है। हम यही प्रार्थना करते हैं, ऐसा ही बनाए रखना।
अब तुम समझो। मैं गरीबी का पक्षपाती हूं तब, जब तुमने उसे कमाया हो।
तब गरीबी बड़ी अमीरी है। मैं तुम्हारी शून्यता का पक्षपाती हूं, लेकिन तभी जब पूर्णता के मार्ग पर शून्यता उतरी हो। मैं तुम्हारे जीवन को निर्धन नहीं देखना चाहता। निर्धनता भी धन होती है, तभी; निर्धनता भी जब परम सौभाग्य होती है, तभी। मैं तुम्हें भरे हुए देखना चाहता हूं। अगर मैं शून्यता की बात भी कहता हूं तो सिर्फ इसलिए कि शून्यता जितना भरती है, उतना कुछ और नहीं भरता। वह बड़ा भराव है। वह आखिरी भराव है। उसके ऊपर फिर कुछ और भरने को बचता नहीं।
सूनी प्याली को गौर से देखना, भरी प्याली से ज्यादा भरी होती है। पानी
भर दो, कितना ही भर दो फिर भी कुछ खाली होती है। पानी और प्याली के बीच में थोड़ी जगह तो होगी। नहीं तो पानी प्याली हो जाएगा, प्याली पानी हो जाएगी। थोड़ा अवकाश तो होगा, फासला तो होगा। और कितना ही पानी भरा हो, एक बूंद और भी भरा जा सकता है।
सुना है मैंने, नानक एक गांव के बाहर मेहमान हुए। गांव फकीरों का था, सूफियों का था। वे बड़े चिंतित हो गए। फकीर न रहे होंगे, अन्यथा आनंदित होते, चिंता की क्या बात थी! जो फकीरों में प्रमुख था, उसने सांकेतिक-रूप

से संदेश भेजा। उसने अपने शिष्य के हाथ में पानी से भरी हुई एक प्याली भेजी। लबालब भरी थी। एक बूंद भी रखने को जगह न थी।
नानक बैठे थे सुबह-सुबह गांव के बाहर, कुएं के पाट पर। मरदाना धुन छेड़ रहा था। नानक ने कहा, मरदाना! जाकर एक फूल तोड़ ला। वह फूल तोड़ लाया, उसकी कुछ समझ में न आया। वह जो सेवक आया था फकीर का, प्याली लिए खड़ा था। नानक ने वह फूल उसमें तैरा दिया, कहा, वापस ले जा। मरदाना कहने लगा, बात क्या हुई? कुछ समझे नहीं, बड़ा लेन-देन हो गया। यह क्या चल रहा है? यह फकीर का आना, यह भरी हुई प्याली लाना, मतलब क्या है? फिर तुम्हारा यह फूल का तैरा देना! नानक ने कहा, गांव में जो फकीरों का प्रमुख है, चिंतित हो गया है। सोचता है, कोई प्रतियोगी आ गया। यह फकीर नहीं है, दुकानदार है। तो उसने प्याली भरकर भेजी, उसने कहा, यहां फकीर बहुत हैं, जगह बिल्कुल नहीं है। आप कहीं और जाएं, डेरा उठाएं। एक मैंने इसमें यह जंगली फूल डाल दिया। यह कहा है कि हम तो यहां फूल की तरह तैर रहेंगे, तुम घबड़ाओ मत। और प्याली में इतनी जगह तो है ही कि एक फूल तैर जाए।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि प्याली भरी हो तो कितनी ही भरी हो, एक फूल
को तैरने की जगह तो बाकी है ही। भरी चीजें खाली रहती ही हैं। फिर प्याली बिल्कुल खाली है। तब शून्य पूरा भरा होता है। चूंकि तुम शून्य को पहचानते नहीं, चूंकि तुम्हें शून्य दिखायी ही नहीं पड़ता, तुम कहते हो, प्याली खाली है। अगर तुम जानते, तो तुम कहते, अब प्याली आकाश से भरी है। शून्य से भरी है।
इस दशा को ही बुद्ध ने अनत्ता कहा है। बुद्ध ने कहा है, आत्मा, आत्मा, आत्मा, मैं, मैं, मैं--तुम ज्यादा न भर सकोगे। तुम खाली रहोगे। छोड़ो जी, मैं जाने दो। तुम खाली हो रहो--अनत्ता, अनात्मा। तुम शून्य से भरो। फिर भराव ऐसा है, फूल भी न तैराया जा सकेगा। फिर भराव पूरा है। फिर उसमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। परिपूर्ण है।
तो मैं तो एक खाली बांस की पोंगरी हूं। इसे मैं बहुत ओंठों पर रखता हूं। तुम सुन लो। सारा अतीत, उसकी सारी संपदा तुम्हें लुटा देना चाहता हूं। और सारा भविष्य भी तुम्हारी झोली में डाल देना चाहता हूं।
लेकिन तुम ऐसे कंगाल हो कि तुम कहते हो, क्या उलझन बढ़ा रहे हैं! आप तो सीधी-सीधी बात कह दें। तुम बड़ी जल्दी में मालूम पड़ते हो। तुम्हें तो मिले कुछ, झपट्टा मारो और घर जाओ। ऐसी कुछ हालत है कि जल्दी से कब्जा कर लो, तिजोड़ी में बंद करो।
मैं तुम्हें ऐसा सौभाग्य देना चाहता हूं जो किन्हीं तिजोड़ियों में बंद न किया जा सके। तुम छोटी-मोटी कुछ जीवनधारा बनाने आए हो। मैं तुम्हें सागर बनाना चाहता हूं। तुम सीमा के बिना जीने के आदी नहीं हो, मैं तुम्हें असीम में ले चलना चाहता हूं। मैं जानता हूं, तुम कुछ और कारण से आए हो, मैं कहीं और तुम्हें ले चला। यही गुरु और शिष्य के बीच का द्वंद्व है, संघर्ष है, युद्ध है। शिष्य आया था कुछ और ख्याल से, गुरु कहीं और ले चला। तुम आए थे कुछ पाने, यहां मैं तुमसे छीनने लगा। तुम आए थे कुछ और पाने, यहां मैं कुछ और तुम्हें देने लगा।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है, "विश्रांति चाहिए। आप तो कुछ ऐसी बात बता दें कि शांति हो जाए।"
तुम किनारा मांगते हो, हम तुम्हें तूफान सिखाने लगे। तुम किनारे के लोलुप हो--जल्दी किनारा मिल जाए--और हम तुमसे कहने लगे किनारा यहां है ही नहीं। मझधार को किनारा समझो। है ही नहीं, करें भी क्या?
यह किनारा पाने की आकांक्षा ही तुम्हारा जीवन अशांत बनाए है। जिस कारण से तुम अशांत हो उसको समझो। किनारा पाने की आकांक्षा अशांत बनाए है। क्योंकि किनारा है नहीं, अशांत तुम रहोगे। अब तुम कहते हो, हमें जल्दी से शांत कर दें। तुम मूल कारण को मिटाना नहीं चाहते, हटाना नहीं चाहते, तुम कुछ सस्ते उपाय कर लेना चाहते हो। उसी दिन शांत हो पाओगे जिस दिन अशांति का कारण हट जाएगा। तुम शांत होना चाहते हो, अशांति के कारण को नहीं हटाना चाहते। वस्तुतः तुम्हारी शांति की आकांक्षा अशांति के कारण से ही

आविर्भूत हो रही है। यह धुआं जो अशांति का उठ रहा है और यह आकांक्षा जो शांति की उठ रही है, ये एक ही ईंधन से उठ रहे हैं, इनमें भेद नहीं है। कन्फ्यूसियस से किसी ने पूछा, एक शिष्य ने, कि मुझे शांत होना है, मुझे शांत होने का मार्ग बता दें। कन्फ्यूसियस ने कहा, बकवास बंद, मरकर तू शांत हो ही जाएगा, अभी इतनी जल्दी क्या है? अभी तू जी ले, फिर कब्र में तो शांत हो ही जाएगा। इतनी जल्दी क्या है? अभी ठीक से जी ले, नहीं तो कब्र में भी शांत न हो पाएगा। क्योंकि वहां यह अशांति रहेगी कि न जी पाए, न जी पाए। ऐसे ही गंवा दिया, जिंदगी हाथ से चली गयी। अभी तू जिंदगी है तो शांत होना चाहता है, फिर शांति होगी तो जीना चाहेगा। उलझाव खड़े मत कर, जी ले अभी। अभी तूफानों से जूझ ले। अभी आंधियों से लड़ ले।
एक तो शांति है जो आंधियों से बचकर मिलती है कि छुप रहे कहीं, और एक शांति है जो आंधियों से जूझकर उपलब्ध होती है। एक शांति है जो तूफानों के बाद आती है, तूफानों के द्वारा आती है। और एक शांति है जो शुतुर्मुर्ग जैसी है--सिर को छिपा लिया रेत में--भगोड़े की है, पलायनवादी की है।
शिष्य पता नहीं किन कारणों से आ जाता है। लेकिन शिष्य के कारण पूरे करने को गुरु नहीं है। गुरु वहां देख रहा है जहां की तुम्हें खबर नहीं है। गुरु की आंखों में रोशनी है किसी सूरज की, जिस सूरज की सुबह अभी तुम्हारी जिंदगी में नहीं हुई है। वह तुम्हें अपने प्रकाश में ले चलता है। वह तुमसे कहता रहता है, ठीक आ गए, जल्दी ही शांत हो जाओगे, जल्दी ही आनंद मिलेगा, जल्दी ही सब ठीक हो जाएगा। और सारे समय तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींचे ले रहा है।
लेकिन जिस दिन तुम गुरु की दृष्टि को समझ पाओगे, उस दिन तुम अनुगृहीत होओगे। उस दिन तुम कहोगे, अच्छा किया; हम जो प्रार्थना लेकर आए थे, वह तुमने पूरी न की, अच्छा किया। अच्छा हुआ कि तुमने हमारी प्रार्थना ही बदल दी।
इधर मैं तुम्हारी प्रार्थनाएं पूरी करने को नहीं, तुम्हारी प्रार्थनाएं बदलने को हूं। इसलिए स्वभावतः तुम्हें बहुत बार अड़चन होगी कि यह तो मैं उलझाव बढ़ाने लगा।
लेकिन अगर तुम मुझे समझोगे, तो मैं एक ही बात रोज कह रहा हूं। अगर तुम मुझे समझोगे, तो मेरा स्वर एकतारे का है। एक ही तार है उसमें। चाहे मैं बुद्ध को गुनगुनाऊं, चाहे कृष्ण को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, ये बहाने हैं। और बड़े प्यारे बहाने हैं।
"फिर इतर बुद्धों की खूंटी का सहारा क्यों लेते हैं?"
ये बड़ी प्यारी खूंटियां हैं। ये ऐसी खूंटियां हैं जो मुक्त करती हैं।
ये ऐसी खूंटियां हैं जो तुम्हें खुला करती हैं। फिर जिनके संबंध में भी मैं बोल रहा हूं, मेरे लिए वे पराए नहीं हैं। उनके साथ मेरा एक तादात्म्य है। जिस दिन अपने से संबंध छूटा, उसी दिन उनसे संबंध बन गया। इधर नाव किनारे से छूटी, उधर सागर की हो गयी।
तो मैं बुद्धों पर बोल रहा हूं, ऐसा नहीं, अपने पर ही बोल रहा हूं। मेरे भीतर कोई अंतर नहीं है। इसलिए तुम बहुत अड़चन में और भी पड़ोगे।
अगर यहां कोई बौद्ध सुन रहा होगा, तो बड़ी मुश्किल में पड़ेगा कि बुद्ध,
तो ऐसी बातें तो कभी सुनी नहीं। जैन अड़चन में हैं कि मैं महावीर पर क्या कहता हूं? ईसाई उलझते हैं कि मैं ईसा पर क्या कह रहा हूं? ऐसा तो कभी किसी ने कहा नहीं। क्योंकि जिन्होंने कहा है, लिखा है, उनके पास अपनी कोई दृष्टि नहीं थी। पंडित लिखते हैं, पंडित बोलते हैं। मैं एक नया सिलसिला शुरू कर रहा हूं। यही एक उपाय है तुम्हें पंडितों से मुक्त करने का।
फिर मैं कहता हूं, अगर तुम्हारा बुद्ध से लगाव है, चलो यही सही, इसी घाट से तुम्हें उतारेंगे। तुम अगर कहते हो कि हम तो बुद्ध के घाट से ही जाएंगे--बुद्धं शरणं गच्छामि--तो मैं कहता हूं, चलो ठीक, क्या हर्जा है, नाव इसी घाट से छूटने दो। मैं हर घाट से नाव छोड़ने को राजी हूं। क्योंकि मैं जानता हूं, नाव जब छूटती है, घाट तो पीछे छूट जाता है।

ये खूंटियां प्यारी हैं। अगर इन्हीं खूंटियों पर पंडित बोलें, तो तुम बंध जाओगे। अगर इन्हीं खूंटियों पर बुद्धपुरुष बोलें, तो तुम मुक्त हो जाओगे। निर्भर करता है कौन बोल रहा है। कहां से बोली जा रही है बात। इसलिए बुद्ध के वचन में क्या है इसकी मुझे बहुत फिकर नहीं है। बहुत बार ऐसा होता है कि मुझे वचन के विपरीत भी बुद्ध के पक्ष में निर्णय लेना होता है। देखता हूं कि वचन तो यह है, लेकिन बुद्ध यह बोल सकते नहीं, फिर मैं वचन की फिकर नहीं करता। फिर मैं बुद्ध की फिकर करता हूं। क्योंकि वचन जिन ने संगृहीत किए हैं, अनिवार्य रूप से वे उसमें सम्मिलित हो गए होंगे। फिर हजारों साल बीत गए, बहुत जुड़ता चला गया है, घटता चला गया है। एक-एक शब्द आमूल रूप बदल देता है। एक-एक मात्रा, एक-एक विराम बड़े फर्क ले आता है। जरा यहां का वहां कि सब बदल जाता है। मैं फिकर नहीं करता। जब धम्मपद और बुद्ध के बीच मुझे चुनना हो, तो मैं बुद्ध को चुनता हूं।
एक बहुत बड़े बौद्ध पंडित और भिक्षु हैं, भदंत आनंद कौशल्यायन। वे मुझे मिलने--नागपुर में मैं था--आए। वे कहने लगे, आपकी बातें तो बड़ी अच्छी लगती हैं, मगर कई बातें ऐसी हैं कि शास्त्र में नहीं हैं। और आप इतने बलपूर्वक कहते हैं। कहां से आपको मिलीं? मैंने उनसे कहा, वहीं से जहां से बुद्ध को मिलीं। वे थोड़े बेचैन हुए, कि फिर भी कोई शास्त्र।
मैं कोई शास्त्री नहीं हूं। अगर तुम्हें मेरी कोई बात जंचती हो, शास्त्र में जोड़ देना। अगर मेरी बात शास्त्र के विपरीत पड़ती हो और जंचती हो, तो शास्त्र को बदल लेना। मैं शास्त्र की मानकर चलने को नहीं हूं। मैं कोई शब्दों की लकीर से बंधा नहीं हूं। ऐसी सुविधा जो मुझे है, बहुत मुश्किल से होती है।
इसलिए मैं छोड़ देता हूं बहुत से वचन। पूरे धम्मपद पर नहीं बोल रहा हूं, इसमें बहुत से सूत्र मैंने छोड़ दिए हैं, कचरा मान कर। किसी और ने डाले होंगे, बुद्ध के नहीं हो सकते। और अगर इसका किसी दिन निपटारा होगा, तो मेरे और बुद्ध के बीच, इसमें भदंत आनंद कौशल्यायन को क्या लेना-देना? सुलझ लेंगे।
पंडितों को तो मुश्किल होगी। क्योंकि पंडित के पास अपना तो दीया नहीं है। वह यह तो जांच ही नहीं सकता कि बुद्ध ने क्या कहा होगा। उसके लिए तो बुद्ध होना जरूरी है। वह तो शास्त्र में खोज सकता है। शास्त्र में कहा है, बस। शास्त्र में कैसे आया? बुद्ध के द्वारा आया या किसी और ने डाल दिया, कोई और जोड़ गया!
वचन संगृहीत किए गए, वर्षों बाद लिखे गए। बुद्ध के मर जाने के कोई पांच सौ वर्ष बाद। थोड़ा सोचो। लोगों की स्मृति में रहे। इसलिए बहुत से पाठ हैं, पाठ-भेद हैं। क्योंकि एक स्मृति में रखने वाले ने कुछ जोड़ लिया, कुछ छूट गया। ऐसा भी नहीं है कि जानकर किया हो। लोगों ने बड़ी निष्ठा और प्रेम से सम्हाला होगा। लेकिन मनुष्य-स्वभाव; मनुष्य की सीमाएं हैं, स्मृति की सीमाएं हैं, स्मृति की भूल-चूकें हैं।
तो वेद के बहुत पाठ हैं। एक पाठ एक बात कहता है, दूसरा पाठ दूसरी बात कहता है। अब सवाल यह है कि कैसे निर्णय करो कि कौन सही है? एक ही उपाय है, वहां पहुंच जाओ जहां से वेद पैदा होते हैं; जहां से वेद जन्मता है, उस गंगोत्री में तलाशो।
इसलिए मैंने सोचा कि ऐसा मौका फिर मिले, न मिले। बुद्ध को फिर ताजा कर जाऊं, महावीर को फिर से ताजगी दे दूं। ये फूल खूब कुम्हला गए। बड़े प्यारे हैं, लेकिन सूखने लगे। इनकी जड़ों को पानी नहीं मिला। इनका उपयोग हो सकता था, इनकी सिर्फ पूजा हुई। इनसे महाक्रांति पैदा हो सकती थी, कुछ भी न हुआ। इनको फिर ज्योति दे देनी जरूरी है। इन दीयों की ज्योति बुझने लगी है, जरा बाती को सम्हाल देना जरूरी है। इसके पहले कि बाती डूब ही जाए, बुझ ही जाए, कोई सम्हाल दे, ये फिर प्रज्वलित हो जाएंगे, फिर इनसे प्रकाश मिलने लगेगा। और सभी दीयों से एक ही प्रकाश है। इसलिए मुझे अड़चन नहीं होती।
मुझसे कई लोग पूछते हैं कि यह कैसे संभव होता है आपको कि आप बाइबिल पर
भी बोल लेते हैं, धम्मपद पर भी बोल लेते हैं, गीता पर भी बोल लेते हैं? इसमें कुछ अड़चन नहीं है, उलझन नहीं है। मेरे पास अपनी कसौटी है। इसलिए

जहां मेरी कसौटी से मेल खा जाता है, वहां मैं जानता हूं, जीसस ने कहा है। जहां मेरी कसौटी से मेल नहीं खाता, वहां मैं जानता हूं, जीसस ने नहीं कहा है।
जीसस से कोई पूछता है, किस अधिकार के बल बोल रहे हैं? बाइ व्हाट अथारिटी? तो जीसस ने मालूम है क्या कहा? जीसस ने कहा, अब्राहम भी जब पैदा नहीं हुआ था, तब भी मैं था।
अब्राहम! वह यहूदियों का सबसे पुराना पैगंबर है। जैसे राम हिंदुओं के हैं, ऐसे अब्राहम यहूदियों का है। और इस बात की बहुत संभावना है कि ये दो व्यक्ति न हों, क्योंकि अब्राहम अबराम का रूपांतर है। हो सकता है ये एक ही व्यक्ति हों। इस बात की बहुत संभावना है। मूल हिब्रू तो अबराम है। अबराम का मतलब होता है--श्रीराम। सम्मान के लिए है अब। राम को कैसे राम कहें-- श्रीराम। तो अबराम। फिर अब्राहम हुआ उससे। चलते-चलते बिगड़ गया।
और ये दो ही धर्म हैं संसार में जो बड़े मूल हैं--हिंदू और यहूदी। फिर शेष तो इनकी शाखाएं हैं। हिंदुओं की शाखाएं हैं--जैन, बौद्ध, सिक्ख। यहूदियों की शाखाएं हैं--मुसलमान, ईसाई। ये दो मूल हैं। और हो सकता है, दोनों के पीछे एक ही स्रोत हो--राम का। होना भी चाहिए यही। धर्म का एक ही स्रोत होना चाहिए। फिर उसकी शाखाएं फैलती चली गयीं।
तो जीसस ने कहा, अब्राहम भी नहीं था, तब भी मैं था। जीसस यह कह रहे हैं
कि मैं उसी मूल स्रोत से आता हूं, जहां से सब आए। उनके भी पहले मैं था। समय का कोई सवाल नहीं है।
मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध भी नहीं थे तब मैं था। अड़चन होगी। या जहां
से बुद्ध आए वहीं से मैं आता हूं। उसी एक घर से, उसी एक गंगोत्री से। मुझे पता है बुद्ध ने क्या कहा होगा। जो मैं नहीं कह सकता, वह बुद्ध नहीं कह सकते। और अगर तुम पूछो, किस अधिकार से? मेरे अधिकार से कहता हूं। और तो कोई अधिकार है नहीं। और कोई अधिकार हो भी नहीं सकता।
"अपनी ही बात सीधी हमसे क्यों नहीं कहते हैं, हमें उलझाते क्यों हैं?"
तुम उलझे ही हो। तुम्हें उलझाता नहीं हूं, सिर्फ तुम्हारी उलझन को ऊपर लाता हूं। तुम्हारी उलझन को सतह पर तैराता हूं, उलझे तो तुम हो ही।
उलझे न होते तो जरूरत ही न थी। जो नहीं उलझा है, उसे कोई उलझा नहीं सकता।
तुम तो मुझे उलझाओ। तुम तो इतने पारंगत हो उलझन में, चलो कोशिश करो। तुम मुझे उलझाओ। तुम मुझे नहीं उलझा सकते।
जो सुलझ गया सुलझ गया। जो जाग गया, उसे सोए लोग सुला नहीं सकते। कैसे सुलाएंगे? थोड़ा सोचो, करोड़ लोग सोते हों और एक आदमी जागा हो, तो करोड़ आदमियों की ताकत भी तो उसे सुला नहीं सकती। लेकिन एक आदमी जागा हो, तो करोड़ को जगा सकता है।
तुम इतने हो, मैं अकेला हूं। तुम सब उलझे हो, तुम मुझे उलझाओ। कोई उपाय नहीं। मैं तुम्हें सुलझाने की कोशिश कर रहा हूं। हालांकि मैं समझ गया तुम्हारे प्रश्न का मतलब।
तुम मेरे पास आए थे, तब तुम्हें ख्याल था कि तुम सुलझे हुए हो। जब से
आए हो, तब से उलझनें दिखायी देने लगीं। दर्पण के सामने आ गए हो, तो अपना चेहरा दिखायी पड़ने लगा। पहले तुमने सोचा था बड़े सुंदर हो। अब दर्पण के सामने पड़ गए, तो अड़चन आने लगी। कभी-कभी दर्पण पर भी नाराज हो जाते हो। यह मामला क्या है? हम तो बड़े सुंदर थे!
एक स्त्री पागल हो गयी थी। वह जहां भी जाती, दर्पण होता तो तोड़ देती। लोग पूछते, मामला क्या है? तो वह कहती, ये दर्पण मुझे कुरूप बना देते हैं। वह स्त्री कुरूप थी। लेकिन दर्पणों पर नाराज होती थी। दर्पण किसी को क्या कुरूप बनाएंगे!
इधर तुम मेरे पास आओगे, तो तुम्हें उलझनें दिखायी पड़नी शुरू होंगी। मेरी चेष्टा है कि उलझनें दबी न रहें, उनका रेचन हो। वे तिरें, ऊपर आएं। क्योंकि ऊपर आएं तो ही उनसे छुटकारा हो सकता है। दबी न रह जाएं, तुम्हारे मन के कोने-कांतरों में पड़ी न रह जाएं। अंधेरे में न पड़ी रहें। तुम्हारी चेतना के तलघरों में न रहें, रोशनी में आएं। रोशनी में मरेंगी। रोशनी में आते से तुम उन्हें छोड़ने लगोगे, क्योंकि तुम्हें यह दिखायी पड़ेगा कि

तुम्हीं उन्हें पालो-पोसो तो वे बचती हैं। उन्होंने तुम्हें नहीं पकड़ा है, तुमने ही उन्हें पकड़ा है। पर जागने के पहले झूठे सुलझाव से मुक्ति मिलती है और सच्चा उलझाव प्रगट होता है।
साधारणतः आदमी सोचता है, सुलझा ही हुआ है। इतना बेहोश है कि इतना भी समझ में नहीं आता कि मैं उलझा हूं। तुम दूसरों को भी सलाह दिए चले जाते हो। तुम्हें यह भी पता नहीं कि ये सलाहें अपने काम भी नहीं आयीं। ये सलाहों का तुम खुद भी जीवन में आचरण नहीं कर पाते और दूसरों को दिए चले जाते हो। तुम्हारी सलाहों के कारण संसार में एक बड़ी भारी दुर्घटना घटती है।
कभी तुमने ख्याल किया, जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उम्र बढ़ती है, अनुभव आता है, वैसे-वैसे उसकी श्रद्धा क्षीण होने लगती है। बड़े आश्चर्य की बात है। पहले वह अपने मां-बाप पर भरोसा करता था। लगते थे वे, जो कुछ कहते हैं, वेद-वाक्य हैं, देव-वाणी है।
फिर धीरे-धीरे संदेह पैदा होता है। क्योंकि मां-बाप ने जो बातें कही थीं, बच्चा जब देखने में समर्थ हो जाता है, पाता है ये तो उनका आचरण खुद भी नहीं करते। जब तक बोध नहीं था तब तक भरोसा करता था कि ठीक कहते हैं। पर अब पकड़ने लगता है विरोधाभास। कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। करते कुछ हैं, बताते कुछ हैं। हैं कुछ, दिखावा बड़ा और है। पाखंड दिखायी पड़ने लगता है। और जिस बच्चे के मन से मां-बाप का भरोसा उठ गया--क्योंकि वह उसकी पहली श्रद्धा थी, वह उसका पहला प्रेम था--उसका श्रद्धा का भवन गिरने लगा। अब यह किसी पर भरोसा न कर सकेगा। जब अपने मां-बाप तक दगा दे गए, जब ये भी भरोसे के साबित न हुए, अब कौन साबित होगा! फिर भी चेष्टा करता है। क्योंकि श्रद्धा बड़ी प्रीतिकर है, और अश्रद्धा बड़ी कष्टपूर्ण है। बड़ी मुश्किल से छोड़ता है बच्चा श्रद्धा को। स्कूल के शिक्षकों पर भरोसा कर लेता है। लेकिन वह भी टूट जाता है। उनके जीवन में भी वह नहीं दिखायी पड़ता जो वे कहते हैं। दिखायी उलटा ही पड़ता है।
जैसे-जैसे वह बड़ा होता है और जैसे-जैसे जीवन का अनुभव होता है, सब तरफ
से श्रद्धा पर चोट पड़ती है, सब तरफ से श्रद्धा खंडित होती है। अश्रद्धा भर जाती है। यह अश्रद्धा इसलिए पैदा होती है कि तुम ऐसी सलाहें दे रहे हो जो तुम्हें नहीं देनी थीं। तुम ऐसी बातें कह रहे हो जो तुम्हें नहीं कहनी थीं। आखिर कितनी देर धोखा दोगे! थोड़े लोगों को थोड़े दिन धोखा दिया जा सकता है, लेकिन सभी को तुम सदा के लिए थोड़े ही धोखा दे दोगे।
अगर लोग इतने भी जागरूक हो जाएं कि ऐसी सलाह न दें जो उनके जीवन का अनुभव नहीं है, तो दुनिया में श्रद्धा के पौधे पनपने लगें। अगर बाप यह कह दे कि मुझे पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, मैं भी खोज रहा हूं; तू भी खोजना बेटे, अगर तुझे मिल जाए तो मुझे बता देना, मुझे मिल जाएगा तो तुझे बता दूंगा, लेकिन मैं भी टटोल रहा हूं। इस बाप से श्रद्धा कभी न उठ सकेगी। लेकिन पूछो बाप से--किसी भी बाप से--ईश्वर है? वह कहता है, है। उसी ने संसार बनाया है। प्रार्थना करो रोज।
लेकिन आज नहीं कल बेटा पाएगा कि इसकी प्रार्थना झूठी, रोज तो यह भी नहीं करता है। रोज-रोज पाएगा कि इसका जीवन वक्तव्य कुछ और दे रहा है और यह कहता कुछ और है। करता तो यह वही है जिससे सिद्ध होता है कि ईश्वर नहीं है, और कहता है कि ईश्वर है। घृणा और वैमनस्य, और ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा, सब इसमें घर किए हैं। मोह, मत्सर और मद, सब इसमें घर किए हैं। सब तरह के जहर पाले हुए है। इन जहरों से प्रार्थना उठेगी कैसे?
ध्यान रखना, तुम जब तक मेरे पास न आए थे, तुम्हें अपनी सलाहें मूल्यवान मालूम होती थीं, मेरे पास आकर तुम्हारी सलाहें दो कौड़ी की हो जाएंगी। जब तक तुम मेरे पास न आए थे, तुम्हें लगता था, सब ठीक है। क्योंकि ठीक का तुम्हें पता ही न था, तुलना कैसे करते? तौलते कहां? तराजू कहां था? मुझे सुनोगे, सब गैर-ठीक होने लगेगा। मेरे पास नहीं आए थे, बड़े सुलझे हुए थे।
स्वभाव ने पूछा है। स्वभाव को मैं जानता हूं। मेरे पास आने के पहले स्वभाव बिल्कुल सुलझे हुए थे। साफ-साफ था सब मामला। दृढ़ता थी। मुझसे तक

आकर टकरा जाते थे। बड़ा भरोसा था भीतर। फिर जैसे-जैसे करीब आए, वह भरोसा डगमगाया, वह दृढ़ता टूटी, पिघले, बहे--उलझाव प्रगट हुआ जो भीतर छुपा था। बड़ी उलझनें हैं। गुंजलिकें हैं उलझनों की, उलझनों पर उलझनें हैं, धागे में धागे उलझे हैं। किसी तरह हम ऊपर से अपने को समझाए रखते हैं, नहीं तो जीना मुश्किल हो जाए। तुम अपना सारा उलझाव लेकर बाजार जाओगे, दुकान चलाना मुश्किल हो जाएगा। तुम सारा उलझाव लेकर घर आओगे, पत्नी से संबंध जोड़ना मुश्किल हो जाएगा। तुम उलझावों को किनारे रखते हो। तुम कहते हो, हटाए चलो, छिपाए चलो। एक कोना साफ-सुथरा रखते हो, जैसा तुम्हारा घर का बैठकखाना है। बस उसको तुम साफ-सुथरा रखते हो। वहां मेहमानों से मिल-जुल लेते हो। बाकी सारा घर गंदा है। वहां तुम नजर ही नहीं डालते। वहां ध्यान देने की कोई जरूरत ही नहीं है। मेरे पास आए तो उलझन होगी। इसलिए प्रश्न बिल्कुल सार्थक है।
पूछा है, "हमें उलझाते क्यों हैं!"
और करें क्या? तुम उलझे हो, सुलझाव की बातें हम करेंगे, तुम्हारा उलझाव प्रगट होगा। जैसे अंधेरी दीवाल पर सूरज की किरण चमके; अंधेरे बादलों में, काले बादलों में, बिजली चमके। तुमने ख्याल किया, बिजली चमक जाने के बाद रात और अंधेरी मालूम होती है। राह से गुजरते तुमने देखा, कार निकल जाती है--तेज प्रकाश। अंधेरा था, लेकिन कार गुजर जाने के बाद और अंधेरा हो जाता है। अब कार अंधेरा थोड़े ही कर गयी। लेकिन कार रोशनी की झलक दे गयी। आंखें जब रोशनी देख लेती हैं तो अंधेरे को पहचानती हैं--और गहराई से।
मैं तो सुलझाने की ही कोशिश कर रहा हूं। लेकिन जितनी सुलझाने की मैं कोशिश करूंगा, जितनी रोशनी तुम्हारी आंख में डालूंगा, उतना तुम्हें अपना अंधेरा दिखायी पड़ेगा। और इसके अतिरिक्त कोई उपाय भी नहीं है। अंधेरे को देखो; छिपाओ मत, उघाड़ो। उघाड़ने से ही मुक्ति है। उसे बाहर लाओ। उससे संबंध छोड़ो, उससे नाते गिराओ, उसके साथ जितने तुमने न्यस्त स्वार्थ बांध रखे हैं, उनसे मुक्त हो जाओ। क्योंकि गलत से कोई भी स्वार्थ कभी पूरा होने वाला नहीं है। तुम कितना ही चाहो कि क्रोध से कभी शांति मिल जाए, नहीं मिलेगी। और तुम कितना ही चाहो कि वैर से कभी मित्रता मिल जाए, नहीं मिलेगी।
बुद्ध ने कहा है, वैर से वैर नहीं बुझता। शत्रुता से शत्रुता नहीं घटती। क्रोध से क्रोध की अग्नि और जलती चली जाती है।
इसे देखो। जिस दिन तुम्हें यह साफ-साफ दिखायी पड़ जाएगा कि मैं जहर को अमृत बनाने की कोशिश कर रहा हूं, यही मेरी उलझन है, बस उसी दिन तुम छुटकारा पा जाओगे। लेकिन इतना भी आसान नहीं होगा, क्योंकि जन्मों-जन्मों तक तुमने गलत के साथ संबंध बांधे हैं, गलत ने तुम्हारे भीतर जगह-जगह जड़ें पहुंचा दी हैं।
मैंने सुना है, एक फकीर बैठा हुआ था नदी के किनारे, अपने शिष्यों के साथ। सर्दी थी बहुत और फकीर ठिठुर रहा था। देखा नदी में एक कंबल बहता चला आ रहा है। तो शिष्यों ने कहा, अरे, कंबल! आप छलांग लगाकर कंबल निकाल क्यों नहीं लाते? आप ठंड से परेशान हैं। वह फकीर छलांग लगाया। लेकिन वह कंबल नहीं था, वह एक रीछ था, जो सिर छिपाए हुए पानी में बहा जा रहा था। कंबल जैसा मालूम पड़ रहा था।
अब जब उसने रीछ को पकड़ लिया, तो उसने पाया कि उसने तो पकड़ा नहीं था कि तत्काल रीछ ने उसको पकड़ा। अब वह उसके साथ बहने लगा। उसके शिष्यों ने कहा, क्या मामला है? अगर कंबल बहुत वजनी हो और खींचकर न ला सकते हो, तो छोड़ दो। उसने कहा कि अब छोड़ना बहुत मुश्किल है, कंबल ने भी पकड़ लिया है। मैं नहीं पकड़े हूं, मैं तो छोड़ने की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन अब कंबल ने भी पकड़ लिया है।
तुमने जो उलझनें पकड़ी हैं, वे मुर्दा नहीं हैं। उन्हें तुमने खूब जीवन दिया है, खूब सींचा है। वे कंबल की तरह नहीं हैं, वे रीछ की तरह हो गयी हैं। उनमें तुमने प्राण डाल दिया, अपना ही प्राण डाला है। खींच लोगे धीरे- धीरे तो निकल जाएगा, निष्प्राण हो जाएंगी। लेकिन एकदम से होगा नहीं। समय

लगेगा। और इसलिए जिसमें हिम्मत हो संघर्ष को जारी रखने की, वही उलझनों से मुक्त हो सकता है।
समझ जरूरी है, फिर समझ के बाद थोड़ी प्रतीक्षा जरूरी है। संघर्ष जारी रखो, प्रतीक्षा और धैर्य रखो; जिसको बनाया है, उसको हम मिटा भी सकते हैं। जो हमने ही बनाया है, हम उसे मिटा सकते हैं।
"आखिर आप कहते वही हैं जो आपको कहना है। फिर इतर बुद्धों की खूंटी का सहारा क्यों लेते हैं? अपनी बात सीधे ही हमसे क्यों नहीं कहते?"
सीधे तो तुम बिल्कुल न समझ पाओगे। बुद्धों के वचन तो तुम्हें परिचित
हो गए हैं। पच्चीस सौ साल लगे, तब बुद्ध के वचन धीरे-धीरे तुम्हारे रग-रेशे में उतरे। पांच हजार साल लगे, तब कहीं गीता तुम्हारे कंठ में उतरी। हृदय में तो अभी भी नहीं उतरी। पर कंठ तक तो उतर गयी, कंठस्थ हो गयी। दो हजार साल लगे, तब कहीं जीसस के वचन लोगों की वाणियों में छा गए। प्राणों में तो अब तक नहीं हैं, लेकिन वाणियों में छा गए। वे परिचित हैं।
अगर मैं सीधा-सीधा बोलूं--वह मैंने सोचा है कि जाने के पहले सीधा-सीधा बोलूंगा, तुम जरा तैयार हो जाओ--लेकिन मुझे शक है कि तुम समझ पाओगे। फिर पच्चीस सौ साल लगेंगे। फिर कोई और बुद्धपुरुष की जरूरत होगी, जो तुम्हें समझाए। क्योंकि अगर मैं सीधा-सीधा बोल दूंगा तो वह तरन्नुम तुमसे बिल्कुल अपरिचित होगी। वे शब्द तुम्हें बड़े बेबूझ मालूम होंगे। उनमें तुम्हें संगति न दिखायी पड़ेगी।
इसीलिए खूंटियां खोजता हूं। तुम्हारे सहारे के लिए। मुझे कोई जरूरत नहीं है। मुझे तो खूंटियों की वजह से बोलने में थोड़ी अड़चन होती है। क्योंकि मुझे तालमेल बिठलाना पड़ता है पच्चीस सौ साल पुरानी भाषा के साथ। व्यर्थ की अड़चन आती है। मुझे जो कहना है वही कहना है। मैं सीधे ही कह सकता हूं। आखिर धम्मपद में एक भी ऐसा वचन नहीं है, जो ऐसा हो जो मैं सीधा न कह सकूं। तुमने कोई एक वचन अभी तक सुना जो ऐसा है जो मैं सीधा न कह सकूं। अड़चन क्या है? गीता में कौन सा ऐसा वचन है जो मैं सीधा न कह सकूं? ऐसी बात क्या है जो सीधी नहीं कही जा सके?
लेकिन जब मैं सीधी कहूंगा, तो वह तुमसे बिल्कुल अपरिचित होगी। कोरे आकाश से उतरेगी। अगर मैं बुद्ध के ढांचे का सहारा लेता हूं, तो पच्चीस सौ साल पुराना ढांचा है; उससे तुम धीरे-धीरे राजी हो गए हो, पहचान गए हो। अगर मैं वेद पर बोलूं, उपनिषद पर बोलूं, तो वह तुम्हारे खून में उतर गया है--मैं उसका फायदा ले रहा हूं।
यह तुम्हारे लिए सुगम बनाने की दृष्टि से है, कठिन बनाने की दृष्टि से नहीं। लेकिन तुम इतने कठिन हो कि सुगम बनाने में भी कठिनता दिखायी पड़ जाती है।
मैं बोलूंगा कभी, मेरे ख्याल में है। लेकिन तुम्हें तैयार कर लूं। अभी तो तुम्हें लगता है विरोधाभासी हूं, तब तुम्हें लगेगा पागल हो गया। क्योंकि फिर मैं बोलूंगा, तुम्हारी फिकर छोड़ दूंगा। तुम्हारी फिकर से बोला तो फिर मुझे पुरानी भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। फिर मैं बोलूंगा जैसे कि मैं खाली रिक्त स्थान में बोल रहा हूं, तुम नहीं हो। तुम जरा रिक्त और खाली हो जाओ, तब मैं सूत्रों में बोलूंगा। फिर मैं व्याख्या नहीं करूंगा, व्याख्या कौन करेगा फिर? फिर व्याख्या के लिए पच्चीस सौ साल रुकना पड़ेगा। फिर सौभाग्य की बात है, कभी कोई जागेगा, उसकी व्याख्या कर देगा तो ठीक! ख्याल रखो, जो भी कर रहा हूं, वह इसीलिए है कि तुम्हें किसी भी तरह सहारा मिल जाए। कुछ भी हो, उपाय खाली न छोड़ा जाए। तुम यह न कह सको कि मैंने कोई उपाय खाली छोड़ा था। अगर तुम भटको, तो मैं तुम्हें इस स्थिति में ही भटकते छोडूंगा कि तुम जानते रहो कि तुम अपने कारण भटक रहे हो, मेरे कारण नहीं। तुम यह न कह सकोगे, यह शिकायत न कर सकोगे कि मैंने कोई औषधि छोड़ी थी। तुम यह न कह सकोगे कि आप एलोपैथी का ही इलाज करते रहे और हम होमियोपैथी से ठीक हो सकते थे। तो मैं सभी इलाज कर रहा हूं। होमियोपैथी भी, नेचरोपैथी भी, आयुर्वेद भी, हकीमी भी, एक्यूपंचर भी, जो तुम--जिस इलाज से तुम्हारी बीमारी छूटने की तुम्हारी इच्छा हो, वही।

अगर फिर भी तुम ठीक न हुए तो तुम्हें कहना पड़ेगा, मानना पड़ेगा कि तुमने बीमारी को पकड़ा था, तुम छोड़ना ही न चाहते थे। तुम मुझे दोष न दे सकोगे।

दूसरा प्रश्नः सुना है, संत स्वार्थ सिखाते हैं। किंतु कल तो आपने हमें हरी झंडी दिखा दी। भाग्य से प्रेम का प्याला मिला था, द्वंद्व की दवा द्वंद्वातीत से मांगी थी, और आपने हरी झंडी दिखा दी। ज्योति के, प्रकाश के, अमृत के, प्रभु के घर से जाने की हरी झंडी कैसी!

यदि तुम मुझे समझ गए, तो तुम फिकर छोड़ो, तुम जाओ, मैं तुम्हारे साथ आता हूं। यहां रुकने का आग्रह तो यही बताता है कि तुम्हें डर है कि कहीं इंदौर गए, तो जो पाया है वह छूट जाएगा।
इंदौर में कुछ खराबी है? पूना से खराब तो नहीं। जैसे लोग यहां हैं, वैसे लोग वहां हैं। जैसे वृक्ष यहां हैं, वैसे वृक्ष वहां हैं। जिस आकाश ने पूना को घेरा है, उसी आकाश ने इंदौर को भी घेरा है। और जिस पृथ्वी ने पूना को सम्हाला है, उसी पृथ्वी ने इंदौर को सम्हाला है। मैं चाहता हूं कि इंदौर और पूना का फासला मिट जाए। तुम इंदौर में भी पूना को पा सको।
तुमने अगर जिद्द की कि तुम यहीं रुकोगे, तो वह जिद्द सिर्फ डर बताती है। मैं तुम्हें उस डर से भी मुक्त करना चाहता हूं। तुम अगर मेरे पास ही सुखी रह सकते हो, तो यह सुख बहुत कीमत का न हुआ, यह सुख बहुत गहरा न हुआ। यह सुख बड़ा उथला है, ऊपर-ऊपर है। इस सुख के भीतर डर तो छिपा ही है--छूट जाने का, खो जाने का।
हरी झंडी से डरते क्यों हो? हरी झंडी उतनी ही प्यारी है जितनी लाल झंडी। तुम मेरे हाथ को तो पहचानो, जिसने लाल झंडी दी है, वही हरी झंडी दे रहा है। अब अगर तुम कहते हो कि हम तो लाल झंडी ही देखेंगे, हरी झंडी न देखेंगे, तो तुम मेरे हाथ नहीं देख रहे। तुम अपनी जिद्द से टिके हो। तुमने पुरानी कहानी सुनी है कि एक परम ज्ञानी अपने शिष्यों को समझा रहा था कि सभी जगह परमात्मा है। सब रूपों में वही छाया है। सभी रंग में वही है। एक शिष्य वहां से विदा हुआ, इस भाव से भरा हुआ। राह पर राजा का हाथी पागल हो गया था। महावत चिल्लाया, हट जाओ! आसपास के लोगों ने रोका कि राह पर मत जाओ, हाथी पागल है। पर उसने कहा, छोड़ो भी! अभी गुरु के घर से आ रहा हूं, और गुरु ने कहा सबमें वही है, वही एक बसा है। इस हाथी में भी वही है, क्या डर है? वही मुझमें, वही इसमें।
माना, उसने तो वेदांत सुना था, हाथी ने न सुना था। वहीं झंझट हो गयी। हाथी कहीं उपनिषद वगैरह की चिंता करते हैं? उस हाथी ने उसको उठाया सूंड़ में, मरोड़ा और फेंका। टकराया पास की दीवाल से, सिर खुल गया, लहूलुहान हो गया। वह बोला, अरे, यह गुरु तो कहता था सभी में ब्रह्म है! उसने कहा, मुझे गुरु के पास ले चलो, यह तो बात संदिग्ध मालूम पड़ती है।
लोग उसे उठाकर गुरु के पास ले गए। गुरु ने कहा, मैंने कहा था सभी में ब्रह्म है, लेकिन महावत में नहीं है, ऐसा मैंने कहा था? और वह महावत जब चिल्ला रहा था कि रुको, तो कौन चिल्लाया था नासमझ? ब्रह्म ही चिल्लाया था। अब तेरी मर्जी, तूने हाथी के ब्रह्म की सुनी और महावत के ब्रह्म की न सुनी। जब महावत और हाथी में सवाल उठे, तो महावत का ब्रह्म ज्यादा विकसित ब्रह्म है। उसकी सुनो। तूने व्यर्थ जिद्द की।
तुम सोचते हो, लाल झंडी मैंने बतायी, इसलिए तुम रुके। नहीं, तुम रुकना चाहते हो। तुम अपने कारण रुकते हो। इसलिए हरी झंडी बाधा डालती है। पर मैं कहता हूं, मेरे हाथ को देखो। मैं तुम्हें पास बुलाता हूं, तुम्हें दूर भी भेजता हूं, ताकि तुम उस ढंग से पास होना सीख जाओ, जहां फिर पास आने और दूर जाने का उपाय नहीं रहता।
तुमने जो पाया है उसे सम्हालो, गांठ गठियाओ; घर जाओ। कोशिश करना वहां
भी कि जो शांति, जो आनंद, जो सुख, जो ध्यान यहां मिला, वह वहां भी मिल सके। न मिले, जानता हूं कठिनाइयां हैं, फिर लौट आना। लेकिन बार-बार जाना वहीं है।

जिस दिन तुम्हें ब्रह्म इंदौर में दिखायी पड़ने लगे, उसी दिन समझना कि मेरे पास आए। और इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम जाओ, मैं पीछे आ रहा हूं।
तुम किस बात को बेहतर समझते हो, तुम्हारे यहां रहने को या तुम्हारे साथ मेरे आने को? मैं नहीं चाहता कि जिंदगी को तुम बोझ समझने लगो। मैं तुम्हें जिंदगी को जीने की कला सिखाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि तुम जिंदगी को आनंद से जी सको, अहोभाव से जी सको। मैं तुममें और तुम्हारी जिंदगी में किसी तरह की दुई पैदा नहीं करना चाहता, खाई पैदा नहीं करना चाहता। अन्यथा अधिक बार ऐसा ही हुआ है कि धर्म के नाम पर तुम भगोड़े हो गए हो।
अब उन्होंने पूछा है कि यह हरी झंडी कैसी? वस्तुतः प्रश्न से ऐसा लगता है, जैसे मैं तुम्हें भगा रहा हूं। गौर से देखो, तुम भागना चाहते हो। तुम घर से भागना चाहते हो। तुम मुझे सहारा बनाकर घर से पलायन करना चाहते हो। पत्नी है, बच्चे हैं, जिम्मेवारियां हैं, तुम उनसे भागना चाहते हो।
नहीं, मैं तुम्हें भगोड़ा नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें भगोड़ेपन से बचाना चाहता हूं। और मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम घर में रहो और बेमन से रहो। मैं कहता हूं कि घर को मंदिर समझो। ऐसा न हो कि तुम्हें और तुम्हारे मन में इस तरह की बातें पैदा हो जाएं--
अब जी रहा हूं गर्दिशे-दौरां के साथ-साथ
ये नागवार फर्ज अदा कर रहा हूं मैं
ये नागवार फर्ज! धर्म ने अब तक यही उपद्रव करवा दिया लोगों को। जिस दिन धर्म की बात जंचती है, तो फिर सारा नागवार हो जाता है। जबर्दस्ती ढोए चले जाते। मजबूरी है, उलझ गए, फंस गए जाल में, बच्चे पैदा कर लिए, क्या करें? विवाह कर लिया, क्या करें?
नहीं, जिंदगी अगर नागवार फर्ज हो जाए, जबर्दस्ती बोझ जैसा कर्तव्य हो जाए, तो तुमने धर्म को समझा ही नहीं। धर्म तुम्हारे पैरों को नृत्य देगा, तुम्हें निर्भार करेगा। इसलिए मैं तुम्हारे विपरीत लड़ता ही रहूंगा। मैं तुम्हें पलायनवादी नहीं बनने दूंगा। और एक न एक दिन जब तुम समझोगे, तब तुम मुझे धन्यवाद दोगे।
अभी तो तुम्हें लगेगा, यह क्या बात हुई! तुम यहां रहना चाहते हो, मैं कहता हूं जाओ। तुम सब छोड़ने को तैयार हो, मैं कहता हूं मत छोड़ो। तुम कहोगे, यह क्या बात हुई! तुम चाहते हो कि मैं हां भर दूं, ताकि छोड़ने की जो ग्लानि है तुम्हारे मन में, उसका उत्तरदायित्व तुम मुझ पर सौंप दो। तुम कहो, क्या करें! गुरु ने कहा, सब छोड़ दो। ऐसे गुरु बहुत हैं। अगर छोड़ना ही होगा तुम्हें, तो तुम किसी ऐसे गुरु को खोज लोगे जो छुड़वा देगा। बड़े नासमझ लोग हैं।
एक सिंधी महिला ने मुझे आकर कहा--उनके कोई गुरु हैं, कोई दादा--उस महिला ने मुझे कहा कि मैं बड़ी उलझन में पड़ गयी हूं।
अब एक तो गुरु और फिर सिंधियों के गुरु!
बड़ी उलझन में पड़ गयी हूं। क्या उलझन है? उसने कहा कि मेरे गुरु ने समझाया कि यह जो पति का प्रेम वगैरह--और अभी विवाह हुए कोई दो ही साल हुए थे--यह जो प्रेम वगैरह है, यह सब धोखा है, भ्रमजाल है, माया है। तो मैंने पूछा कि इसकी कसौटी कैसे करूं? तो गुरु ने कहा, ऐसा कर, पंद्रह दिन तक तू उदासीन रह। पति कुछ भी करे, तू उदासीनता जाहिर कर। पति कुछ भी कहे, तू क्रोध और नाराजगी जाहिर कर। पता चल जाएगा। अगर प्रेम होगा तो टिकेगा, नहीं होगा तो खतम हो जाएगा।
उस मूढ़ ने घर जाकर यह प्रयोग भी कर लिया। पंद्रह दिन उदासीन, क्रोधित। आखिर... पति आखिर पति है। उसने पिटाई कर दी उसकी। पिटाई कर दी तो गुरु से जाकर पूछा, अब क्या करना? गुरु ने कहा, छोड़, यह कैसा प्रेम है! तो वह छोड़ कर, घर-द्वार छोड़कर बैठ गयी। तभी कोई उसे मेरे पास ले आया।
मैंने कहा, वह तो ठीक है कि तेरे पति ने तेरी पिटाई की, तू एक ही पिटाई
से भाग खड़ी हुई? तूने यह न सोचा कि पति कहीं किसी और गुरु की शिक्षा लेकर और प्रयोग कर रहे हों! यह भी तो तू सोच थोड़ा। कोई और दादा मिल गए हों। दादाओं की कोई कमी है। और तेरा प्रेम एक ही दफे में खतम हो गया, और पंद्रह

दिन में पति की तू परीक्षा लेती रही। और उसने एक ही दफे लगायी पिटाई तेरी। तू फिर से घर जा। तू जरा सोच तो! उसने कहा, यह बात तो मेरे ख्याल में ही न आयी। पति भी परीक्षा ले रहा होगा। जब तू परीक्षा ले रही है तो पति को भी मौका दे।
जीवन को हम व्यर्थ उपद्रवों से भरते हैं। और इस तरह के लोग हमारे आसपास हैं। और उनके होने का कारण यही है कि तुम जीवन जीने की कला नहीं जानते। तो जीवन में अड़चनें आती हैं, तुम इन नासमझों के पास पहुंच जाते हो। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अगर तुम बीमार होओ, तो तुम डाक्टर के पास जाओगे, जिसने हजारों मरीजों का इलाज किया हो। लेकिन अगर तुम विवाह से परेशान हो, तो किसी बाल-ब्रह्मचारी के पास पहुंच जाओगे।
यह बड़े मजे की बात है। तुम जरा अकल की भी थोड़ा सोचो। बुद्धि है तुम्हारे पास! जिन्होंने एक भी विवाह नहीं किया, यह तो पक्का प्रमाणपत्र हुआ कि ये बेकार हैं, तुम्हारे किसी काम के नहीं हैं। इनका कोई अनुभव नहीं है। जिसने बहुत विवाह रचाए हों, उसके पास जाना, तो शायद कुछ कुंजी हाथ में सम्हाल दे, दे दे। जिन्होंने दुकान कभी की नहीं, उनसे पूछने चले गए। इसमें कोई समझ नहीं मालूम होती।
तुम भागना चाहते हो। तो तुम किसी भगोड़े को खोज लोगे और जिम्मेदारी उस
पर टाल दोगे। अब तुम निश्चिंत हो गए कि चलो ठीक, हम कोई भगोड़े नहीं हैं, धार्मिक हैं। आदमी अच्छे शब्दों की ओढ़नी ओढ़कर सारे दुष्कृत्य किए चला जाता है।
संन्यास की ओढ़नी ओढ़ लेते हो, लेकिन उस ओढ़नी के पीछे तुम क्या करते हो,
यह तो थोड़ा सोचो! कितना दुख छोड़ जाते हो पीछे। और ये सारे बुद्धपुरुष यह कह रहे हैं कि दूसरे को दुख देने से सुख न मिलेगा। तुम अपनी पत्नी और बच्चों को भी सुख न दे पाए, उनको भी तुम दुख में डाल गए, और किसको तुम सुख दे पाओगे? जो तुम्हारे बहुत पास हैं, कम से कम उन्हें तो दो, फिर दूर की सोचना। फिर और बढ़ाना अपने प्रेम को। लेकिन जो पास हैं, उनसे ही तो मत छीनो।
लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग प्रेम करने में असमर्थ होते हैं,
वे मनुष्यता को प्रेम करते हैं। और मनुष्यता कहीं मिलती है? कहां खोजोगे मनुष्यता को? जहां मिलेगा मनुष्य मिलेगा। जहां मिलेगा व्यक्ति मिलेगा, मनुष्यता तो कहीं मिलती नहीं।
जिनको प्रेम से बचना है, वे कहते हैं, हम तो मनुष्यता को प्रेम करते हैं। ये धोखेबाज हैं। ये इस सत्य को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं कि हम प्रेम करने में असमर्थ हैं, इसलिए हमने एक बड़ा ढकोसला बनाया, ऊंचा शब्द चुना--मनुष्यता का प्रेम।
संसार को भी तुम प्रेम न कर पाए, तुम निर्वाण को प्रेम कर सकोगे? ज्ञान
तो सीढ़ी-सीढ़ी ऊपर उठता है। तुम जहां हो, वहां तुम शांत हो जाओ, तत्क्षण तुम पाओगे, तुम ऊपर उठ गए। तुम जहां हो वहीं शांत हो जाओ, तुम पाओगे, एक सीढ़ी पार हुई। घर में होना एक शिक्षण है। संसार एक विश्वविद्यालय है। और सस्ता नहीं मिलता कोई अनुभव, कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए कलह भी है, उपद्रव भी है, अड़चन भी है, चिंता भी है--यह कीमत है।
रही मेरी बात, तो मैं तुम्हारे साथ आता हूं। तुम जब भी अकेले होओगे, तुम मुझे अपने साथ पाओगे। तो लौट जाओ घर। घड़ीभर को अकेले होने की प्रक्रिया जारी रखना। घड़ीभर को द्वार-दरवाजे बंद कर लेना, भूल जाना पत्नी- बच्चों को।
पत्नी-बच्चे भी खुश होंगे, क्योंकि तुम्हारा चौबीस घंटे छाती पर चढ़े रहना किसी को भी सुख नहीं दे रहा है। वे भी घड़ीभर को बड़े प्रसन्न होंगे कि बड़ा अच्छा हुआ! ध्यान कर रहे हैं, बड़ा अच्छा हुआ! कोई इससे दुखी होने वाला नहीं, क्योंकि घड़ीभर को उनको भी फुर्सत मिलेगी तुमसे। थोड़ा उनको भी अवकाश मिलेगा, जगह मिलेगी। घड़ीभर को तुम अकेले हो जाओ, उस अकेलेपन में तुम मुझे पाओगे। मेरे साथ संग बनने लगेगा।
मैं कल एक गीत पढ़ रहा था। बड़ा प्यारा गीत है--
मां! जल भरन न जाऊं
कोई युवती अपनी मां से कह रही है।

मां! जल भरन न जाऊं
जिधर बढ़ाऊं चरण, उधर ही
साथ लगा छाया-सा डोले
भीड़ देख जा छिपे आड़ में
इकला पाते ही संग हो ले
तरह-तरह के रूपक रचकर
ऐसा नाच नचाए मन को
मां! जल भरन न जाऊं
बिना सूत्र के पुतली नाचे बिना तार इकतारा बोले
घट से तट तक, थल से जल तक
पर्णकुटी से राजमहल तक
कोई भी पथ नहीं जहां
यह हेरा-फेरी करे न भौंरा
मां! जल भरन न जाऊं
कृष्ण के लिए कहा गया गीत है। पर बड़ा प्यारा! तुम अगर मेरे पास ही आ गए
हो तो तुम दूर न जा सकोगे। जल भरने जाओ कि न जाओ।
साथ लगा छाया-सा डोले
भीड़ देख जा छिपे आड़ में
इकला पाते ही संग हो ले
जरा इकले होते रहना।
तरह-तरह के रूपक रचकर
ऐसा नाच नचाए मन को
मां! जल भरन न जाऊं
बिना सूत्र के पुतली नाचे
बिना तार इकतारा बोले
तुम जरा इकले होकर बैठ जाना, मेरा इकतारा बजने लगेगा। तुमने अगर मुझे चाहा, तुमने अगर मुझे प्रेम किया, तो तुम जब भी अकेले होओगे मुझे पाओगे। इसमें मुझे कुछ करना नहीं पड़ता, तुम्हारा प्रेम ही सब कर लेता है।
तुम जिसे प्रेम करते हो, अकेले होते ही उसकी याद आती है, और किसी की याद नहीं आती। प्रेम की कसौटी यह है कि जब तुम अकेले होओ, तब उसकी याद आए।
खो जाते हो संसार में, बाजार में, भूल जाते हो; लेकिन जब फिर अकेले हुए, फिर उसकी याद आ जाती है। प्रेम का लक्षण यही है। इसमें मुझे कुछ करना नहीं पड़ता। मुझे कोई इंदौर तक आने-जाने की टिकिट का खर्च नहीं पड़ने वाला है। तुमने अगर मुझे चाहा, तुम्हारी चाहत सब कर लेगी।
बिना सूत्र के पुतली नाचे
बिना तार इकतारा बोले
घट से तट तक, थल से जल तक
पर्णकुटी से राजमहल तक
कोई भी पथ नहीं जहां
यह हेरा-फेरी करे न भौंरा
मां! जल भरन न जाऊं
जल भरने जाओ या न जाओ, तुम जहां जाओगे--हेरा-फेरी करे यह भौंरा। यह तुम्हारे चारों तरफ चक्कर लगाता ही रहेगा। यह तुम्हारा ही भाव है, यह तुम्हारी ही श्रद्धा है।
तुम इतने डरे क्यों हो अपनी श्रद्धा के प्रति? तुम इतने अविश्वासी क्यों हो अपनी श्रद्धा के प्रति? चलो, हरी झंडी दिखायी, हरी झंडी सही! हाथ को पहचानो और जो तुमसे कह रहा हूं, वह करो। क्योंकि जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वही करने में तुम मेरे निकट आओगे। तुम अपनी जिद्द से यहां रुक सकते हो। आखिर मैं क्या कर सकता हूं, तुम रुकना चाहो तो रुको। लेकिन तुमने मुझे नहीं सुना। फिर दोष मुझे मत देना, अगर भटक जाओ। यहां रुककर भी भटक जाओगे। क्योंकि यहां रुके तुम मुझे बिना सुने।

और मैं तुमसे कहता हूं, तुम जाओ। आते रहो कभी-कभी। मुझे तो तुम ज्यादा
से ज्यादा स्नान समझो। आ गए कभी, डुबकी लगा ली, चले गए। चौबीस घंटे नदी में मत डूबे रहो। इसका कोई सार नहीं है। बस कभी-कभी काफी है। उतना भी तुम सम्हाल लो तो बहुत, उतना भी तुम्हें ले जाएगा। कभी-कभी तो यह भी हो जाता है कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अगर तुम बहुत ज्यादा मेरे पास रहो तो मुझे भूल ही जाओ। पास रहने से भूल-चूक होनी शुरू हो जाती है, विस्मरण हो जाता है। दूर रहने से याद बनी रहती है।
दूरी को तुम प्रेम का दुश्मन मत समझना, दूरी प्रेम की बड़ी मित्र है। क्योंकि दूरी उकसाती है प्रेम को, जलाती है प्रेम को। विरह को उठाती है।
पास ही जो है, वह मिला ही है, धीरे-धीरे हम भूल जाते हैं। पास होने के कारण ही तुम परमात्मा को भूले हो। पास ही होने के कारण तो तुम आत्मा को भूले हो।
दूर है इसलिए थोड़े ही परमात्मा दूर है; बहुत पास है, तुमसे भी ज्यादा पास है, इसीलिए याद नहीं आता।

आखिरी सवालः आपने माला के धागे के पहचानने की बात कही। मैं आपको काफी समय से सुन रहा हूं। मेरी समझ से आपकी माला का धागा साक्षीभाव है। कृपापूर्वक इस बात पर प्रकाश डालें।

ठीक पहचाना। साक्षीभाव मेरी ही माला का धागा नहीं, सभी की माला का धागा है। बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, जरथुस्त्र, लाओत्सू--सभी की माला का धागा है। साक्षीभाव आखिरी बात है। पहली भी और अंतिम भी। शुरू भी उसी से करना है और अंत भी उसी पर करना है। पहला कदम आखिरी कदम।
संभलने दे मुझे ऐ नाउमीदी क्या कयामत है
कि दामाने-यार छूटा जाए है मुझसे
अरी निराशा, यह कैसी ज्यादती! जरा मुझे सम्हल तो लेने दे, प्रीतम के ध्यान का आंचल मेरे हाथ से छूटा जा रहा है।
प्रेमी उसे प्रेम कहता है, प्रेम का आंचल कहता है--छूट न जाए हाथ से। ज्ञानी उसे ध्यान कहता है। भक्त उसे प्रभु की याद कहता है, नाम-स्मरण कहता है। ज्ञानी उसे स्मृति कहता है, आत्मबोध कहता है। लेकिन बात वही है कि प्रभु का, या स्वयं का बोध न खो जाए। कुछ तुम्हारे भीतर जो शाश्वत है, वह वही है।
शरीर भी गलेगा, मिटेगा। मन भी जाएगा। शरीर भी संगठन है पांच तत्वों का। और मन भी संगठन है उधार विचारों का, वासनाओं का। दोनों पिघल जाएंगे, खो जाएंगे। तुम्हारा होना न तो शरीर में है, न मन में है। तुम्हारा होना तो उसमें है, जो शरीर और मन के पार खड़ा हो जाता है। दोनों को देख लेता है। शरीर का साक्षी हो जाता है। मन का साक्षी हो जाता है।
गायक के अधरों पर है ऐसा एक गीत
चुप होकर भी जो युग-युग गाया जाता है
चुप होकर भी जो युग-युग गाया जाता है
मुरझाते उपवन में भी है ऐसा एक फूल
जिसके तन को पतझार नहीं छू पाता है
सांसों के घर में एक सांस ऐसी रहती है
मरघट का सूना भी न जिसे भर सकता है
मिट्टी की पुतली में है ऐसा एक स्वप्न
जिसके कारण इंसान नहीं मर सकता है
तुम्हारे भीतर उसे खोजो, जिसके पार तुम न जा सको, जिसके पीछे तुम न हट सको। जहां तक हट सको, जिसके पीछे न हट सको। तुम आंख बंद करो, अपने शरीर को देख सकते हो। हाथ हिलाओ, तुम देख सकते हो हाथ हिल रहा है। सिर में दर्द हो, तुम देख सकते हो, भीतर सिरदर्द हो रहा है। तुम अलग हो, पीछे खड़े हो। विचार चलें, सूक्ष्मतम विचारों की तरंगें चलें, अच्छी या बुरी, तुम उन्हें भी देख सकते हो। तुम देखने वाले हो। तुम साक्षी हो। अब इस साक्षी से पीछे तुम न हट सकोगे, क्योंकि साक्षी को भी देखोगे तो साक्षी ही रहोगे। साक्षी के साक्षी को भी देखोगे तो साक्षी ही रहोगे। शरीर से हट गए, शरीर न रहे। मन से

हटे, मन न रहे। साक्षी से नहीं हट पाते, साक्षी ही रहते हो। यह परम सूत्र मिल गया। यह वह गीत मिल गया जिसकी बात है।
गायक के अधरों पर है ऐसा एक गीत
चुप होकर भी जो युग-युग गाया जाता है
मुरझाते उपवन में है ऐसा एक फूल
जिसके तन को पतझार नहीं छू पाता है
वही तुम्हारा साक्षीभाव है। वही समस्त बुद्धपुरुषों की मालाओं का सूत्र है। उस साक्षीभाव में सारे विरोध शून्य हो जाते हैं। उस साक्षीभाव में अंधेरा और प्रकाश दोनों शून्य हो जाते हैं, क्योंकि तुम दोनों से पीछे हट जाते हो। तुम अंधेरे के भी देखने वाले, प्रकाश के भी देखने वाले। शुभ और अशुभ दोनों शांत हो जाते हैं, तुम दोनों के देखने वाले। संसार और निर्वाण दोनों शांत हो जाते हैं, तुम दोनों के देखने वाले। सब निमज्जित हो जाता है उसमें।
मुहब्बत सोज भी है, साज भी है
खामोशी भी है, आवाज भी है
प्रेम कभी खामोश है, कभी बोलता है। लेकिन साक्षीभाव दोनों के पार है।
न तो खामोश, न बोलता। इसलिए बड़ा कठिन है कहना कि साक्षीभाव क्या है? खामोश होता, कह देते खामोश है। बोलता, कह देते बोलता है। लेकिन न बोलता है, न खामोश है। दोनों के पार है।
किसका कुर्ब, कहां की दूरी, अपने आपसे गाफिल हो
राज अगर पाने का पूछो, खो जाना ही पाना है
किसका सामीप्य--किसका कुर्ब? किसके पास जाने की सोच रहे हो? किस परमात्मा की खोज पर निकले हो?
किसका कुर्ब, कहां की दूरी, अपने आपसे गाफिल हो
न कोई दूरी है, न परमात्मा दूर है, न उसकी समीपता खोजनी है, बस अपने आपसे बेहोश हो, साक्षी नहीं हो, जागे नहीं हो।
राज अगर पाने का पूछो, खो जाना ही पाना है
साक्षीभाव में तुम भी न बचोगे। क्योंकि तू और मैं, दोनों के तुम साक्षी हो जाओगे।
यहां देखो, मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो। अगर तुम साक्षी बनो, तो तुम बोलने और सुनने दोनों के पार हो गए। तुम अपने सुनने के भी साक्षी हो जाओगे; जैसे तुम मेरे बोलने के साक्षी हो वैसे ही अपने सुनने के भी साक्षी हो जाओगे। तुम कहोगे, आप बोल रहे, मैं सुन रहा। लेकिन कोई दोनों के पार है। इस पार को पकड़ो। इस अतिक्रमण के सूत्र को पकड़ो। यही दामाने-यार है। यही उस प्रेमी का आंचल है।
साक्षी समस्त शास्त्रों का सार है। साक्षी समस्त कही गयी, न कही गयी उपदेशनाओं का सार है। साक्षी के लिए अलग-अलग शब्द उपयोग किए गए हैं, लेकिन भाव को पकड़ लो। भाव इतना ही है कि तुम दृश्य से छूटते जाओ और द्रष्टा में डूबते जाओ। जो दिखायी पड़े, जानना अलग है, भिन्न है, पृथक है। जो देखे, जानना यही मैं हूं। और धीरे-धीरे उस जगह आ जाना जिसके पार जाने का उपाय न हो। जहां द्रष्टा ही द्रष्टा बचे, देखने को कुछ न बचे। जहां साक्षी ही साक्षी बचे। जहां एक ही स्वाद बचे तुम्हारे भीतर, साक्षी का। जैसे सागर का जल सब जगह खारा है, कहीं से भी चखो।
तुम उठो, बैठो, चलो, सोओ, बोलो, न बोलो; घर में, मंदिर में, मस्जिद में, बाजार में, हिमालय पर, कहीं भी रहो, तुम्हारा स्वाद साक्षी का हो जाए--बस, हाथ में आ गया प्यारे का आंचल। पकड़ ली राह। उठ गया पहला कदम। और इस जगत में पहला कदम ही आखिरी कदम भी है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
चौवनवां प्रवचन

समष्टि से आलिंगन है धर्म

अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो" व जीरति।
मंसानि तस्स बड्ढन्ति पंजा तस्स न बड्ढति।। 131।।

अनेक जाति संसारं संधविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसंतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।। 132।।

गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखिति।
विसंखारंगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।। 133।।

अचरित्वा ब्रह्मचरियं यलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोंचा" व झायन्ति खीनमच्छे" व पल्लल।। 134।।

अचरित्वा ब्रह्मचरियं यलद्धा योब्बने धनं।
सेन्ति चापातिखित्ता" व पुण्णानि अनुत्थनं।। 135।।

आज के सूत्र बड़े अनूठे और बहुमूल्य हैं। बुद्ध के वचनों में भी अतुलनीय हैं। उनकी जीवन-साधना का सार इन सूत्रों में है। इन्हें ठीक से समझने की कोशिश करें। पहला सूत्र--
"यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की भांति बढ़ता है। उसके मांस तो बढ़ते हैं, परंतु उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती।"
इस सूत्र को खोजने में मनोविज्ञान को पच्चीस सौ साल लगे। पश्चिम में
इस खोज का श्रेय अल्फ्रेड विने को मिला। न उसे पता था कि बुद्ध ने यह सूत्र पच्चीस सौ साल पहले कहा, न अभी भी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को ख्याल है कि यह बात नयी नहीं।
अल्फ्रेड विने ने पहली दफा एक खोज की--कम से कम पश्चिम की दृष्टि में--
कि मनुष्य की शारीरिक-उम्र और मानसिक-उम्र अलग-अलग है। साधारणतः हम सोचते हैं कि जो आदमी बीस साल का है, उसका शरीर भी बीस साल का है, उसका मन भी बीस साल का है; ऐसा नहीं है। बीस साल के व्यक्ति के मन की उम्र हो सकता है दस ही साल हो। यह भी हो सकता है तीस साल हो।
इसलिए कभी-कभी ऐसा हुआ है कि शंकराचार्य जैसे व्यक्ति को तीस साल की उम्र में वैसे बोध और अनुभव हुए, जो साधारण आदमी तीन सौ साल की उम्र में भी न पा सकेगा।
शंकराचार्य ने अपने सारे श्रेष्ठ शास्त्र तैंतीस साल की उम्र में रच दिए--तैंतीस साल में तो उनकी मृत्यु हो गयी। ब्रह्मसूत्र पर उनकी टीकाएं, उपनिषदों पर उनकी टीकाएं, गीता पर उनकी टीकाएं अमूल्य हैं, बेजोड़ हैं। फिर कोई दूसरा वैसा काम न कर पाया। और यह बिल्कुल युवा था।
नौ वर्ष की उम्र में शंकराचार्य ने संन्यास लेने की आज्ञा मांगी। लोग हैं जो नब्बे वर्ष की उम्र में भी संन्यास की आकांक्षा नहीं करते। संन्यास की आकांक्षा बड़ी प्रौढ़ता का लक्षण है। आत्यंतिक प्रौढ़ता का लक्षण है। इसीलिए तो हिंदुओं ने सदियों की खोज के बाद संन्यास को अंतिम चरण माना। मगर अंतिम चरण में भी कहां लोग संन्यासी हो पाते हैं!
एक ब.ूढा आदमी मेरे पास आया, उसकी उम्र होगी कोई अठहत्तर वर्ष। वह रोने लगा, उसने कहा, आपने मेरे बेटे को संन्यास दे दिया, उपद्रव खड़ा कर दिया, यह उम्र कहीं संन्यास की है! अभी तो वह जवान है, अभी तो दिन राग-रंग, भोग के हैं। मैंने कहा, छोड़ो, तुम्हारी उम्र संन्यास की है? अगर तुम संन्यास लेने को राजी हो, तो तुम्हारे बेटे का संन्यास मैं वापस ले लेता हूं। वह घबड़ाया। वह यह सोचकर न आया था।

मैंने कहा, तुम्हारी कितनी उम्र है? उसने कहा, माना मेरी उम्र अठहत्तर वर्ष है, लेकिन अभी नहीं। अभी मुझे थोड़ा सोचने दें। अठहत्तर वर्ष नहीं सोचा? बहुत उलझाव हैं, वृद्धजन कहने लगे, परिवार की जरूरतें हैं। कब तक पूरी करोगे? किसी भी दिन विदाई का क्षण आ जाएगा, परिवार फिर भी रहेगा, जरूरतें फिर भी रहेंगी। तुम कब पूरा करोगे? वे भूल ही गए कि बेटे के संन्यास को अब वापस लेना है। वे इतने घबड़ा गए, उन्होंने कहा कि मुझे जाने दें। मैं फिर कभी आऊंगा।
दो वर्ष से उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, वे नहीं आए। अभी कुछ दिन पहले खबर मिली कि वे चल बसे। अब वे कभी नहीं आएंगे।
अस्सी वर्ष की उम्र में भी कहां संन्यास का भाव उठता है? मरते दम तक आदमी जीवन को पकड़ता है। आखिरी क्षण तक पकड़ता है। मौत गरदन दबाने लगती है, तब भी उसके हाथ जीवन की तरफ बढ़े रहते हैं।
शंकराचार्य ने नौ वर्ष की उम्र में संन्यास की आज्ञा मांगी। मां रोने लगी होगी, स्वाभाविक था। यह कोई उम्र है! कहानी बड़ी प्रीतिकर है कि शंकर स्नान करने नदी में उतरे थे, एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। ठीक समय मगर ने भी बड़ी कृपा की! बचना मुश्किल हो गया। मां घाट पर खड़ी है, भीड़ इकट्ठी हो गयी है, शंकर ने वहीं से चिल्लाया कि अब तो आज्ञा दे दे संन्यास की, अब मरते को तो आज्ञा दे दे। अब तो उम्र और ज्यादा न हो सकेगी, अब तो आखिरी घड़ी आ गयी। तो मां ने यह देखकर कि बेटा मर ही रहा है--जो मर रहा है, वह बूढ़ा हो गया; और अब संन्यास से रोकने का क्या कारण है? उसे शांति से संन्यस्त होकर ही मर जाने दो--उसने कहा, ठीक। संयोग की बात, मगर ने पैर छोड़ दिया।
कहानी तो कहानी है, लेकिन बड़ी सूचक है। सूचना इतनी है कहानी में कि मौत तो नौ साल के बच्चे को भी आ सकती है। कोई नब्बे साल तक मौत प्रतीक्षा करे, जरूरी कहां? मगर तो अभी पकड़ ले सकता है। कल तक भी दया करेगा, इसे मानने की सुविधा कहां है? और अगर मौत इस क्षण हो सकती है, तो संन्यास फिर कब होगा? शंकर नौ वर्ष की उम्र में संन्यस्त हुए। तैंतीस साल की उम्र में विदा
हो गए सदा के लिए, फिर कभी लौटेंगे नहीं, उनका कोई पुनरागमन न होगा।
इतनी छोटी उम्र में ऐसी प्रौढ़ता! निश्चित ही शंकर की मानसिक-उम्र तीस साल, तैंतीस साल नहीं मानी जा सकती। तैंतीस साल की उम्र में तो आदमी शराबखानों में मिलता है, वेश्यागृहों में मिलता है। संन्यास! तैंतीस साल की उम्र में तो आदमी हर तरह की मूढ़ता करता मिलता है। करीब-करीब विक्षिप्त होता है। संन्यास की समझ!
बुद्ध का यह सूत्र कहता है--जो अल्फ्रेड विने ने इस सदी के प्रारंभ में खोजा। विने ने कहा कि लोगों की मानसिक-उम्र और शारीरिक-उम्र अलग-अलग हैं। तुम अपनी शारीरिक-उम्र से धोखे में मत पड़ना, क्योंकि उससे तुम्हारी समझदारी का कोई संबंध नहीं। वह तो बैल भी ऐसे ही बढ़ते हैं।
यह थोड़ा समझो। बैल की शारीरिक और मानसिक-उम्र हमेशा एक ही होती है। भैंस की शारीरिक और मानसिक-उम्र हमेशा एक ही होती है। सिर्फ आदमी है इस जगत में जिसकी शारीरिक और मानसिक-उम्र में फासला हो सकता है। तुम चकित होओगे लेकिन, जब तुम अपनी मानसिक-उम्र का विचार करोगे।

पिछले महायुद्ध में, पहली दफा सैनिकों के सेनाओं में प्रवेश के पहले उनकी मानसिक-उम्र की जांच की गयी। पहली दफा। क्योंकि उसके पहले तक तो ठीक-ठीक साधन भी उपलब्ध न थे। आई.क्यू., इंटेलीजेन्स कोसिएंट, बुद्धि-अंक के साधन पहले न थे कि कैसे नापो आदमी का। किस तराजू पर नापो कि बुद्धि कितनी है। लेकिन अब कुछ वैज्ञानिकों ने थोड़े से साधन विकसित किए हैं। तो दूसरे महायुद्ध में, पहली दफा, जो लोग फौज में अमरीका में भरती हुए उनका बुद्धि- अंक नापा गया। बड़ी हैरानी की घटना हुई। बारह-तेरह साल से ज्यादा किसी का बुद्धि-अंक ऊपर न गया। किसी की उम्र पैंतीस साल थी, किसी की तीस थी, लेकिन औसत बुद्धि-अंक बारह साल। बड़ी घबड़ाने वाली बात है।
अब तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा चार साल की उम्र में, अपने जीवनभर में जितना सीखेगा, उसका पचास प्रतिशत सीख लेता है। चार साल में आधी मानसिक-उम्र पूरी हो गयी। फिर तो तुम यूं ही जीते हो, उधार जीते हो। और

बारह साल में तुमने सब सीख लिया, जो तुम जिंदगीभर दुहराते रहोगे। फिर तुम जीओगे जरूर, सीखोगे नहीं। बारह साल पर आकर तुम्हारी बुद्धि ठहर जाती है। पड़ाव आ जाता है। शरीर बढ़ता जाता है।
बुद्ध का यह सूत्र कहता है, "यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की भांति बढ़ता है।"
अल्पश्रुत! अल्पश्रुत का अर्थ होता है, जिसने अभी सुनने की कला नहीं सीखी। क्योंकि ज्ञान का सारा प्रादुर्भाव सुनने की कला से होता है। ज्ञान कहीं पड़ा तो नहीं है कि तुम उठा लो। ज्ञान कोई वस्तु तो नहीं है कि खरीद लो, कि बाजार में बिकता हो। ज्ञान तो वहां से लिया जा सकता है, जहां हो। ज्ञानी के सत्संग से लिया जा सकता है। लेकिन सत्संग का अर्थ तो होगा, श्रवण की कला। सुनना सीखना होगा।
कृष्णमूर्ति निरंतर कहते हैंः राइट लिसनिंग, ठीक-ठीक सुनना। महावीर
ने तो अपने शिष्यों को श्रावक कहा। ठीक सुनने वाले। जिन्होंने श्रवण की कला सीख ली। महावीर ने तो यहां तक कहा कि जो ठीक से सुन लेते हैं, वे सुनकर ही मुक्त हो जाते हैं। इसलिए उन्होंने चार तीर्थ कहे। श्रावक-श्राविका-- दो तीर्थ। इनसे भी उस पार जाया जा सकता है। फिर साधु-साध्वी--और दो तीर्थ। चूंकि महावीर पर सभी टीकाएं जैन-साधुओं ने लिखी हैं, इसलिए उन्होंने
इस बात को उठाया नहीं; वह जरा उनके धंधे के विपरीत है। लेकिन मैं यह पूछना चाहता हूं कि महावीर ने पहला तीर्थ कहा है--श्रावक-श्राविका। पहले श्रावक-श्राविका को गिनाया, फिर साधु-साध्वी को। अर्थ साफ है कि जो सुनने से ही पा गया, उसे करने की जरूरत नहीं। जो सुनने से न पा सके, उसे करना पड़ेगा। साधना उनके लिए है, जो सत्संग न कर सके। साधना नंबर दो है, नंबर एक नहीं।
यह तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि श्रावक साधु के पैर छूता है, छूना चाहिए साधु को श्रावक के पैर। क्योंकि जिसने सुनकर ही पा लिया, करने की भी जरूरत न रही। करने का तो अर्थ ही है कि समझ में कुछ कमी रह गयी, उसे करके पूरा करोगे। किसी ने कहा, आग में हाथ डालने से जल जाता है हाथ। यह तुमने सुनकर समझ लिया, तुम श्रावक हो। और तुम गए, तुमने हाथ डालकर देखा, और जला, और तब समझे, फिर हाथ खींचा, फिर कसम ली मंदिर में जाकर कि अब कभी आग में हाथ न डालेंगे, हम तो व्रत लेते हैं, तो तुम साधु हो। साधु का मतलब यह हुआ, समझ जिसके लिए काफी न हुई, व्रत लेना पड़ा। अगर समझ काफी है, तो व्रत तुम लोगे क्यों? व्रत किसके खिलाफ लोगे?
तुमने कभी कसम खायी कि आग में हाथ न डालेंगे? तुम जानते हो, अब कसम की क्या जरूरत? हां, तुम जाकर मंदिर में कसम लेते हो कि अब कभी क्रोध न करेंगे। वह तुम जानते नहीं, वह तुम समझे नहीं। अगर समझ लेते तो उसकी भी कसम न खाते। मंदबुद्धि कसम खाते हैं, व्रत लेते हैं। जिनकी प्रज्ञा प्रखर है, वे सिर्फ समझ लेते हैं। समझ ही उनकी नाव है।
"यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की भांति बढ़ता है।"
बढ़ता तो रहता है--मांस बढ़ता है, वजन बढ़ता है, देह बढ़ती है--प्रज्ञा नहीं बढ़ती। दीए का आकार बड़ा होता जाता है, ज्योति नहीं बढ़ती। और ज्योति ही तुम हो; दीया तुम नहीं। दीया तो मौत छीन लेगी। ज्योति ही उड़ेगी मौत के पार। वही तुम हो। अक्सर तो ऐसा होता है कि दीए का वजन ज्योति को दबा डालता, मार डालता है। दीया ही भारी हो जाता है ज्योति पर।
सुनने की कला तुम्हारी प्रज्ञा को उकसाएगी। जैसे कोई दीए की बाती को हाथ से उकसा दे, ऐसा सत्संग उकसाता है।
मनोवैज्ञानिक-उम्र का ध्यान रखना। इस संबंध में कुछ और बातें समझ लेनी जरूरी हैं, क्योंकि आगे के सूत्र समझने में सहयोगी होंगी।
अभी तक मनोवैज्ञानिकों ने यह पूछा नहीं कि बारह साल के करीब-करीब क्यों उम्र रुक जाती है! दस साल पर क्यों नहीं रुकती? सोलह पर क्यों नहीं रुकती? कभी न कभी पूछेंगे, लेकिन अभी तक नहीं पूछा है। लेकिन हम इस देश में कोई हजारों साल पहले यह बात पूछ चुके हैं कि वहां क्यों रुक जाती है। हमारी शोध यह है कि जिस दिन जीवन में ब्रह्मचर्य का विनाश होता है, वहीं मानसिक-उम्र रुक जाती है। और अमरीका में ब्रह्मचर्य का विनाश बारह साल के करीब होता है। सारी दुनिया में चौदह साल के करीब होता है। अमरीका में

कामवासना जल्दी जग रही है। लड़कियां बारह साल में मासिक-धर्म शुरू कर रही हैं, चौदह साल में नहीं। वह गयी-बीती बातें होंगी। पुराने समय की बातें। इतनी उत्तेजना है कामवासना की चारों तरफ--फिल्में हैं, टेलीविजन है, रेडियो है; पोस्टर हैं--चारों तरफ कामवासना को प्रज्वलित करने के इतने उपाय हैं, असमय में, जब नहीं होना था तब काम पक जाता है। जैसे कि धूप से न पका हो फल, बिजली की आंच मिल गयी हो। जैसे कि आम तो लगा हो और बिजली के बल्ब के खंभे के पास लगा हो और बिजली की आंच से पक गया हो। असमय पक गया हो। स्वाद तो न होगा उसमें, स्वादिष्ट तो न होगा, लेकिन पीला होगा।
जैसी कहावत है कि धूप में बाल पक गए। जीवन के अनुभव में पकें, तब तो एक बात है। धूप में पक जाएं, तब कोई बात नहीं, कोई गौरव की बात नहीं। अमरीका में कामवासना की उम्र नीचे सरक रही है। बारह साल पर आ गयी है। और वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जल्दी ही ग्यारह साल पर आ जाएगी। आमतौर से मानसिक-उम्र चौदह साल पर रुकती है। अगर आदिवासियों की खोज कभी की गयी तो मैं जो कह रहा हूं उसकी सचाई समझ में आएगी। उनकी मानसिक-उम्र चौदह वर्ष पर रुकती है। यह सूत्र हमें बहुत प्राचीन समय में अनुभव में आ गया। इसका कारण है।
बच्चा पैदा होता है, तब उसकी सारी ऊर्जा संगृहीत होती रहती है। उस ऊर्जा के संगृहीत होने से ही प्रज्ञा को बल मिलता है। प्रज्ञा तुम्हारे भीतर नवनीत की भांति है, तुम्हारी सारी शेष ऊर्जा का अंतिम मक्खन है। वह जो प्रखरता है बुद्धि की, वह जो तेज है, वह तुम्हारे भीतर की सारी ऊर्जाओं का आखिरी निचोड़ है। ऐसा समझो। तुमने भोजन किया, तो मांस-मज्जा बनता है। उसमें से भी जो श्रेष्ठतम है, वह रक्त बनता है। उसमें से भी जो श्रेष्ठतम है, वह वीर्य बनता है। उसमें से भी जो श्रेष्ठतम है, उससे प्रज्ञा बनती है। प्रज्ञा आखिरी शिखर है।

इसलिए जैसे ही वीर्य-स्खलन शुरू होता है, वैसे ही प्रज्ञा के शिखर तक पहुंचना बंद हो जाता है। यह बिल्कुल सीधी और वैज्ञानिक बात है। ऊर्जा इकट्ठी नहीं होती। तो जहां तक ऊर्जा इकट्ठी होने के क्षण में जो सीमा-रेखा तुमने छू ली थी, वह सदा के लिए अटकी रह जाती है। चौदह साल के करीब आमतौर से अधिक लोगों की मानसिक-उम्र रुक जाती है।
इसलिए हमने बड़े अनूठे प्रयोग किए। हमने ब्रह्मचर्य के प्रयोग किए। हमने कहा कि अगर ब्रह्मचर्य को पच्चीस साल तक ले जाया जा सके, तो मानसिक-उम्र को भी पच्चीस साल तक ले जाया जा सकता है। और अगर कामवासना के वातावरण के कारण वासना की उम्र नीचे गिर सकती है, तो कामवासना से मुक्त वातावरण के कारण वासना की उम्र पीछे भी हटायी जा सकती है।
अगर अमरीका में चौदह से बारह हो सकती है, तो कोई कारण नहीं कि किसी गुरुकुल में चौदह से सोलह हो जाए। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। यह बात सीधी है। यह गणित जैसी साफ है। अगर बिजली का ताप मिलने से आम जल्दी पक जाए, तो बर्फ में रखने से वर्षों तक पकने से रोका जा सकता है। लेकिन जितनी देर ब्रह्मचर्य लंबा होता जाता है, उतनी ही प्रज्ञा निखरती जाती है।
इस देश के अनूठे प्रयोगों का यह परिणाम था कि हमने यह तय किया था कि अगर अट्ठाइस वर्ष तक ब्रह्मचर्य हो जाए, तो प्रज्ञा आखिरी चरण छू लेती है। इसके ऊपर जाने का उपाय नहीं है। तब हम कहते हैं, संसार, अब कोई डर नहीं। अब लुटाओ। अब तुमने एक स्थिति पा ली, जिससे नीचे गिरने का कोई उपाय नहीं। इसलिए हमने--पहला कदम ब्रह्मचर्य, दूसरा कदम गृहस्थ।
आमतौर से सौ साल को अगर हम आदमी की उम्र मानें, तो पच्चीस-पच्चीस साल
का विभाजन। मोटे तौर से। लेकिन चेष्टा यह थी कि अट्ठाइस वर्ष। साधारणतः चौदह वर्ष में कामवासना परिपक्व होती है। चौदह वर्ष में युवक योग्य हो जाता है बच्चे पैदा करने के, युवती योग्य हो जाती है मां बनने के। अगर चौदह वर्ष में कोई कामवासना में उतर जाए, तो अट्ठाइसवें वर्ष में कामवासना अपना शिखर छू लेती है। अट्ठाइस साल के बाद फिर कामवासना का उतार शुरू हो जाता है। बयालीसवें वर्ष में--दूसरे चौदह वर्ष पूरे हुए अब; अट्ठाइस धन

चौदह--बयालीसवें वर्ष में एक वर्तुल पूरा हुआ। जीवन का एक ढांचा गया। बयालीस वर्ष में लोग धर्म की चिंता शुरू कर देते हैं।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने अपने जीवनभर के मनोवैज्ञानिक अध्ययन, शोध, निरीक्षण के बाद यह कहा--मेरे पास जितने मानसिक-मरीज आते हैं, उनमें जिनकी उम्र भी चालीस के पार है, उनको मानसिक-चिकित्सा की जरूरत नहीं है, धर्म की जरूरत है। यह एक मनोवैज्ञानिक के मुंह से यह खबर आनी सोचने जैसी है। चालीस साल के बाद जितने मानसिक-बीमारियों से पीड़ित लोग आते हैं, उनको चिकित्सा की कोई जरूरत नहीं है। चिकित्सा की जरूरत पड़ रही है, क्योंकि धर्म के द्वार बंद हैं।
ऐसा ही समझो कि चौदह साल का बच्चा हो गया, काम पक गया और कामवासना को प्रगट करने का कोई उपाय नहीं, तो रुग्ण हो जाएगा। ऐसे ही बयालीस साल की उम्र में एक नयी वासना उठती है--जिसको धर्म की वासना कहो--अगर उसको ठीक-ठीक मौका न मिले; मंदिर न मिले, मस्जिद न मिले, गुरुद्वारा न मिले; कोई निकास का रास्ता न मिले... और कामवासना के लिए तो सुविधा है--पुरुष अगर है तो स्त्री को खोज लेगा। उतनी ही संख्या में स्त्रियां हैं दुनिया में जितने पुरुष हैं। स्त्री है तो पुरुष को खोज लेगी। लेकिन बयालीस साल में एक नयी ऊर्जा उठती है, जिसकी खोज बड़ी धुंधली है। परमात्मा की खोज, सत्य की खोज। हाथ कहां रखो? किस दिशा में जाओ? कोई रूप साफ नहीं है।
तो अगर कोई सहारा देने वाला हाथ न मिल जाए, या अगर जीवनभर तुमने यह सोचा हो कि न कोई ईश्वर है, न कोई धर्म है, न कोई प्रार्थना, न कोई पूजा, न कोई ध्यान, यह सब बकवास है; अगर तुमने चालीस साल तक यह धारणा बनायी हो, तो तुमने ही--बयालीस साल में जब नए जगत का सूत्रपात होगा--तो तुमने उसके विपरीत सारे संस्कार इकट्ठे कर लिए। तुम ही बाधा बन जाओगे। मंदिर का द्वार भी सामने होगा तो तुम्हारी पीठ उस तरफ होगी। और तुम्हारी गरदन अकड़ गयी होगी, पक्षाघात लग गया होगा। जब चालीस-पैंतालीस साल तक तुमने मंदिर की तरफ कभी न देखा, तो अचानक तुम कैसे देख सकोगे? तुम्हारी आंख असमर्थ हो गयी होगी।
जुंग का निर्णय बड़ा विचारणीय है। और जुंग जैसा व्यक्ति जब कुछ कहता है, तो यूं ही नहीं कहता। जीवनभर के हजारों मानसिक-चिकित्साओं के बाद की यह प्रतीति है।
लेकिन हम इस देश में यह जानते रहे, तो हमने पहला तो कदम रखा ब्रह्मचर्य। दूसरा कदम रखा गृहस्थ--अर्थ। तीसरा कदम रखा धर्म। चौथा कदम रखा मोक्ष।
अभी किसी मनोवैज्ञानिक ने इस बात की खोज नहीं की कि बयालीस साल के बाद फिर चौदह वर्ष जब पूरे हो जाते हैं--छप्पन वर्ष की उम्र आती है--तो क्या होता है? हर चौदह वर्ष पर जीवन में क्रांति घटती है। नयी सीढ़ियां शुरू होती हैं। जिसे हिंदुओं ने मोक्ष कहा है, वह छप्पन वर्ष की उम्र में पैदा होता है। वह एक अनूठी खोज है। वह धर्म के भी पार जाना है।
धर्म की तो रूपरेखा है, क्रिया-कांड है, मंदिर-मस्जिद है। धर्म को फिर
भी पकड़ा जा सकता है, तरल है बहुत। कामवासना तो ऐसी है जैसे पत्थर सी बरफ हो, मुट्ठी में आ जाती है। धर्म ऐसे है जैसे जल हो। बांधो मुट्ठी में, छितर-छितर जाता है, लेकिन फिर भी मुट्ठी भीग जाती है--पकड़ा जा सकता है। मोक्ष तो ऐसा है जैसे जल भाप बन गया। दिखायी भी नहीं पड़ता कहां है, पकड़ने की तो बात और। कोई खबर नहीं मिलती।
हमने इस देश में चार हिस्सों में बांटा है आदमी की जीवन-व्यवस्था को। काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष। बुद्ध के इन सूत्रों को तुम समझोगे तो ख्याल में आएगा और तुम बड़े चकित होओगे, शायद तुमने कभी सोचा भी न होगा कि बुद्ध और ऐसी बात कहेंगे।
"यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की भांति बढ़ता है। उसके मांस तो बढ़ते हैं, परंतु उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती।"
अगर जीवन नैसर्गिक हो तो चौदह साल की मानसिक-उम्र उपलब्ध होगी। वह भी ठीक है। कम से कम नीचे तो न गिरे। अगर चौदह साल की मानसिक-उम्र होगी, तो अट्ठाइस साल में कामवासना का वर्तुल नीचे उतरने लगेगा, बयालीस साल की

उम्र में धर्म की आकांक्षा पैदा होगी। ऐसे ही पैदा होगी जैसे काम की आकांक्षा पैदा हुई थी।
धर्म उतना ही नैसर्गिक है, जैसा काम। समाधि उतनी ही नैसर्गिक है, जितना संभोग। यह संभोग का ही आगे का कदम है। यह अनंत के साथ संभोग है। यह व्यक्ति को बीच से हटा दिया अब, समष्टि को सीधा-सीधा आलिंगन में ले लिया। लेकिन आखिरी ऊंचाई तो मोक्ष की है। पहले व्यक्ति को हटाया, समष्टि को लिया। फिर समष्टि को भी हटा दिया। आत्मरति मोक्ष है। अब अपने में ही संभोग को उपलब्ध हुए। दूसरे की इतनी भी जरूरत न रही। प्रेमी को प्रेयसी की जरूरत है, भक्त को भगवान की जरूरत है, मोक्ष के यात्री को भगवान की भी जरूरत नहीं।
इसीलिए तो बुद्ध भगवान की बात नहीं करते। इसीलिए तो महावीर भगवान की बात नहीं करते। भगवान के विपरीत हैं, ऐसा नहीं; एक कदम आगे हैं, ऐसा। मोक्ष! मोक्ष शब्द भी समझने जैसा है। इसका अर्थ है, दूसरे से मुक्ति।
काम में पड़ो, तो दूसरे में बंधना पड़ता है। यही तो पीड़ा है प्रेम की। दूसरे के बिना हल नहीं होता। और जिसके बिना हल नहीं होता, उस पर क्रोध आता है। इसीलिए पति-पत्नी लड़ते हैं, लड़ते ही रहेंगे। इस लड़ने को बचाया नहीं जा सकता।
इसका यह मतलब मत समझना कि पत्नी बुरी है या पति बुरा है। न, इससे व्यक्तियों का कुछ लेना-देना नहीं है। यह काम का स्वभाव है, प्रेम का स्वभाव है कि दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है; और हम स्वतंत्रता चाहते हैं-- निर्भरता कोई नहीं चाहता। प्राणों के प्राणों में छिपी मोक्ष की आकांक्षा है।
हम कहते हैं कि हम कुछ ऐसे हो जाएं कि अपने में काफी हों। ऐसी कोई स्थिति न रह जाए जिसमें हमें दूसरे की जरूरत हो। आप्तकाम हो जाएं। तभी तो मौज होगी, तभी मजा होगा, क्योंकि कोई सीमा-रेखा न रह जाएगी। जब चाहेंगे तब आनंदित होंगे, किसी पर निर्भर न रहना पड़ेगा, कोई कारण न होगा।
अभी तो अगर प्रेम का सुख चाहिए और पत्नी राजी न हो--और अक्सर पत्नी राजी न होगी जब तुम्हें चाहिए। जब पत्नी को चाहिए, तब तुम राजी न होओगे। मेरे पास रोज लोग आते हैं, कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है। जब हम मांगते हैं प्रेम दो, पत्नी सिकुड़ जाती है। जब पत्नी मांगती है, हम सिकुड़ जाते हैं। क्या होता है? जब भी कोई मांगता है, तो ऐसा लगता है शोषण हुआ। जब भी कोई मांगता है तो अकड़ आती है। लगता है, तो ठीक, हम पर निर्भर हो न! तो नहीं कहने में मजा आता है। रोकने में, ठहराने में सुख मिलता है। यह देखकर मजा आता है कि दूसरा गिड़गिड़ा रहा है। वहीं हमें अपनी ताकत, अहंकार का बल मालूम होता है।
तो पति-पत्नी एक-दूसरे से संघर्ष करते ही रहेंगे। फिर अगर न भी संघर्ष करें, समझदार हों--बहुत समझदार हों--तो भी गहरे में एक बात खलती है कि मैं किसी पर निर्भर हूं। मेरा सुख किसी पर निर्भर है, यह कैसा सुख हुआ? सुख अगर दूसरे पर निर्भर है, तो उसमें दुख छिपा ही है। कल पत्नी मर जाएगी। उसे खूब चाहा था। तो जितना सुख चाहा था, जितना सुख जाना था, उतना ही दुख होगा। कल बेटा मर जाएगा, तो दुख होगा। आज पत्नी बीमार पड़ जाएगी, तो दुख होगा। पत्नी कुरूप हो जाएगी, घर में आग लग जाएगी और पत्नी जल जाएगी, तो दुख होगा। पत्नी आज नहीं कल ब.ूढी होगी, कुछ दुर्घटना न हो तो ब.ुढापा तो आएगा ही, शरीर जर्जर होगा, जीर्ण होगा। सुख ज्यादा से ज्यादा माना जा सकता है, हो नहीं सकता। क्योंकि इतनी विपरीत चीजें घटती रहेंगी।
सुख तो तभी सुख है जब उससे दुख की सारी संभावना शून्य हो गयी हो। पर ऐसे सुख के लिए तो अकारण होना चाहिए। और किसी पर निर्भर न होना चाहिए। वह आत्मरति होगी। मोक्ष आत्मरति है।
प्रेमी से छूटता है आदमी तो परमात्मा को पकड़ता है। क्योंकि दूसरे से छूटना बड़ा मुश्किल है। ठीक भी है। प्रेमी से हटे, प्रेयसी से हटे तो फिर परमात्मा की बात शुरू होती। परमात्मा काफी बड़ा है प्रेमी और प्रेयसी से। न मरेगा, न बूढ़ा होगा, जब चाहो तब उसकी प्रार्थना करो, वह इनकार न करेगा कि अभी नहीं। जब चाहो तब उसकी मस्ती में मस्त होकर नाचो, वह कभी बाधा न

डालेगा। एक अर्थ में वह है ही नहीं कि बाधा डाले। उसकी उपस्थिति अनुपस्थिति जैसी है।
इसलिए तुम क्या करते हो, तुम अकेले ही कर रहे हो। मगर अकेले ही करने में तुम्हें मजा न आएगा। तुम झुक रहे हो चरणों में परमात्मा के, एक रस आता है। उसके चरण। लेकिन अब तुम अकेले ही झुक रहे हो, चरण नहीं हैं, तो झुकने में फीकापन आ गया। कोई है ही नहीं जिसके सामने झुक रहे हो।
तुम मंदिर में बैठे परमात्मा से बात कर रहे हो, बात में रस है, क्योंकि तुम सोचते हो, उस तरफ कोई सुन रहा है। न केवल सुन रहा है, अगर भक्त डूब जाए ठीक-ठीक, तो उत्तर भी आने शुरू हो जाते हैं। वह भी भक्त से ही हैं। उसके ही गहरे अचेतन से आते हैं। वहां कोई भी नहीं है। मगर उसको लगता है, आते हैं। और इतने सत्य होते हैं कि यह तो मान ही नहीं सकता कि मुझसे आते हैं। लेकिन तुम अपने से अकेले बातें करो तो तुमको खुद ही लगेगा कि पागल हो।
तुमने देखा, अगर मंदिर में कोई भक्त हाथ जोड़े खड़ा है और कह रहा है, हे पतित-पावन! तो तुम उसको पागल नहीं कहते। लेकिन बगीचे में कोई खड़ा है, प्रेयसी पास नहीं है और वह कह रहा है, हे देवी! मैं तेरे चरणों की धूल हूं, तो तुम कहोगे, यह पागल हो गया। दोनों एक ही काम कर रहे हैं। लेकिन एक भक्त है। हम सबने मान लिया है कि परमात्मा दिखायी नहीं पड़ता, अदृश्य है।
जिन देशों में भगवान की धारणा खो गयी है, उनमें पागलों की संख्या ज्यादा है। उसका कारण है कि उनके पागलपन के निकास का एक द्वार बंद हो गया। अब वे सभी बगीचों में खड़े हैं और प्रेयसियों से बात कर रहे हैं। अगर वे भारत में होते, तो मंदिरों में होते परमात्मा से बात करते, कोई उन्हें पागल न कहता। वे पागल थे भी नहीं। क्योंकि परमात्मा उस तरफ है, यह धारणा ही उनको हलका करती, निश्चिंत करती। यह धारणा ही उनके पागलपन का रेचन करती। तो जब प्रेमी से कोई मुक्त होता है तो परमात्मा को पकड़ लेता है। लेकिन बुद्ध और महावीर जैसे लोग कहते हैं, मुक्त तो हुए, लेकिन पूरे मुक्त न हुए, थोड़ा तुम बचा लाए। इसको भी जाने दो। आकार तो छोड़ दिया, भाव न छोड़ा। भाव भी जाने दो।
इसीलिए तो भक्त--सूफी हैं--वे परमात्मा को प्रेयसी मानते हैं। तो उनका सारा वर्णन परमात्मा का ऐसा ही है जैसे एक सुंदर स्त्री का हो, परम सुंदर स्त्री का, क्लियोपेत्रा का। सूरदास जैसे भक्त परमात्मा को छोटा बालक मानकर चलते हैं। वह भी प्रेम का एक ढंग है, वात्सल्य। तो कृष्ण के बचपन की कहानियां, गीत, उनका ठुमक-ठुमककर चलना, उनके पैरों में बंधी पायल की झनकार, जैसे एक मां अपने बच्चे में रस लेती है। ऐसी कोई मां है जिसने अपने बच्चे में उतना ही रस न लिया हो? सभी मां लेती हैं। सूरदास कुछ नया नहीं कर रहे हैं। वह जो वात्सल्य का भाव है, उसको आरोपित कर रहे हैं कृष्ण पर।
फिर कोई कृष्ण-भक्त हैं। बंगाल में एक संप्रदाय है, वह अपने को सखी मानता है। कृष्ण को पति मानता है। तो वे स्त्रियों के ही कपड़े पहनते हैं। अब धीरे-धीरे उनकी संख्या कम हो गयी, क्योंकि जमाना अनुकूल नहीं। मांग भरते हैं, स्त्रियों के कपड़े पहनते हैं, स्त्रियों जैसे ही चलते हैं। रात कृष्ण की प्रतिमा को छाती से लगाकर सोते हैं। ये सब प्रेम के ही जगत की बातें हैं, जिनमें से आधा हिस्सा बदल दिया गया--उस तरफ अब कोई ठोस प्रेमी नहीं है। लेकिन इस तरफ ठोस प्रेम का भाव अब भी है। प्रेमी विराट हो गया है, लेकिन भाव अभी भी दूसरे पर बंधा है।
बुद्ध कहते हैं, वह भी जाए, क्योंकि इसमें भी पर-निर्भरता है। कभी तुम बुलाओगे और वह न बोलेगा। कभी तुम चीखोगे-चिल्लाओगे और वह न आएगा। वह तो है भी नहीं उस तरफ। कभी तुम्हारे ही भीतर ऐसी संगति होगी कि उत्तर आ जाएगा; कभी संगति न होगी, उत्तर न आएगा। यह भी निर्भरता है। तुम पूरे ही मुक्त हो जाओ।
मोक्ष की धारणा भारत में ही पैदा हुई, क्योंकि परमात्मा से मुक्त होने की धारणा भारत में पैदा हुई। यह धर्म का आत्यंतिक रूप है। संसार से मुक्त होना धर्म का पहला कदम है। धर्म से भी मुक्त हो जाना धर्म का आखिरी कदम है। धर्म जब तक धर्म के भी पार न ले जाए तब तक एक नया बंधन बन जाता है।

ईसाई हैं, यहूदी हैं, मुसलमान हैं, परमात्मा पर अटक गए हैं। मोक्ष की धारणा नहीं।
मोक्ष के लिए दूसरी भाषाओं में शब्द नहीं है। क्योंकि उस पर कभी विचार ही नहीं हुआ, तो शब्द कहां से हो। शब्द ही एकांत रूप से हमारा है। अगर अनुवाद करना हो मोक्ष का, निर्वाण का, कैवल्य का, तो बड़ी मुश्किल पड़ती है, कैसे अनुवाद करो? अनुवाद करो, तो जो भी शब्द तुम चुनो; अगर मोक्ष के लिए फ्रीडम चुनो, तो कुछ राजनीति मालूम पड़ती है उस शब्द में। मोक्ष में कोई राजनीति नहीं है। कोई भी शब्द चुनो, शब्द है ही नहीं उसके पर्यायवाची। क्योंकि ईसाई, मुसलमान और यहूदी मुल्कों में परमात्मा के ऊपर धर्म न गया। धर्म के पार धर्म न गया। सीढ़ी पर तो चढ़े, लेकिन सीढ़ी पर अटक गए; सीढ़ी को न छोड़ पाए। और सीढ़ी का प्रयोजन यही है कि चढ़ो और छोड़ दो, नहीं तो छत पर न पहुंच पाओगे।
"यह अल्पश्रुत पुरुष बैल की भांति बढ़ता है। उसके मांस तो बढ़ते हैं, पर उसकी प्रज्ञा नहीं बढ़ती।"
प्रज्ञा की आखिरी कला क्या है? मुक्ति, मोक्ष। प्रज्ञा का आखिरी स्वरूप क्या है? परम निर्विकार असीम का अनुभव। जहां कोई सीमा न रही। जहां तुम आकाश हुए। उससे कम पर रुक जाना रुक जाना है। उससे कम पर बुद्ध कहेंगे, मांस तो बढ़ रहा है, प्रज्ञा नहीं बढ़ रही है। बड़ी ऊंची गौरीशंकर के शिखर को हमने लक्ष्य माना है। इससे छोटा लक्ष्य मनुष्य के योग्य भी नहीं।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हमने और जीवन के लक्ष्यों को इनकार किया है। यही भारत की अनूठी सामंजस्य और समन्वय की कला है। हमने सारे लक्ष्यों को मोक्ष में समाहित किया है। हमने उनको सीढ़ियां बना लिया। हमने विरोध नहीं किया है।
अब तुम चकित होओगे, क्योंकि आमतौर से ऐसा लगता है, बुद्ध जीवन-विरोधी हैं, लेकिन ये सूत्र तुम्हें बताएंगे कि यह बात कहीं न कहीं गलत हो गयी है, गलत हाथों की व्याख्या है।
"बिना रुके अनेक जन्मों तक घर को बनाने वाले को खोजते-खोजते मैं संसार में दौड़ता रहा। पुनः-पुनः जन्म पाना बड़ा दुखरूप है।"
"बिना रुके अनेक जन्मों तक घर को बनाने वाले को खोजते मैं संसार में दौड़ता रहा--घर को बनाने वाले को खोजते--गहकारकं गवेसंतो।"
यह जीवन का घर कौन बनाता है? यह जीवन उठता क्यों है? यह जीवन है क्यों? किस सहारे जीवन चलता है? क्या है इसका आधारभूत कारण? यह आग जलती है, ईंधन क्या है? क्योंकि यह आग का जलना बड़ा दुखरूप है। जिन्होंने भी जीवन को देखा, उन्होंने यह पाया--
मौत से बदतर नजर आयी मुझे
जिंदगी को जिंदगी समझा था मैं
जिसने जिंदगी को जिंदगी समझा, वह आज नहीं कल रोएगा, पछताएगा।
मौत से बदतर नजर आयी मुझे
जिंदगी को जिंदगी समझा था मैं
यहां तुम मरने के अतिरिक्त कर क्या रहे हो? बाकी सब करना बड़ा खिलवाड़ मालूम पड़ता है। खेल-खिलौने थोड़े बड़े हैं, इससे धोखे में मत पड़ जाना। छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डियों के विवाह रचा रहे हैं, तुम क्या कर रहे हो?
एक जर्मन विचारक हैरीगेल जापान में मेहमान था किसी मित्र के घर। एक बुजुर्ग मित्र। मित्र ने कहा कि आज सांझ एक बारात में सम्मिलित होना है, आप भी आओगे? वह बड़ा खुश हुआ। उसने कहा, अच्छा होगा। एक मौका मिलेगा, जापानी बारात कैसी होती है, विवाह कैसा होता है, मैं जानना चाहूंगा।
पश्चिम के लोगों की ऐसी व्यर्थ की बातों में बड़ी उत्सुकता होती है।
वह साथ हो लिया। लेकिन वहां जरा चौंका, क्योंकि वह विवाह गुड्डे- गुड्डियों का था। दो परिवार में बच्चों ने गुड्डे-गुड्डियों का विवाह रचाया था। लेकिन पूरे गांव के बड़े-बुजुर्ग भी सम्मिलित हुए थे। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि ये बच्चे यह करें, समझ में आता है, बूढ़े इसमें सम्मिलित हों गंभीरता से!

साधे रहा अपने को। संस्कारशील आदमी था! लौटकर घर उसने कहा कि जरा मैं पूछना चाहता हूं। पूछना चाहिए तो नहीं, आपको कहीं चोट न लगे, लेकिन यह देखकर मैं चकित हुआ, यह तो छोटे बच्चों का काम है। ठीक है, बच्चों ने जुलूस निकाला होता, शोभायात्रा की होती, विवाह किया होता, सब ठीक है, मगर बड़े- ब.ूढे इसमें क्यों सम्मिलित हुए?
वह ब.ूढा हंसने लगा? उसने कहा कि और अगर असली जवान लड़के और असली जवान लड़की का विवाह होता, तो? उसने कहा, फिर कोई हर्जा नहीं। वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा कि हम तो मानते हैं, दोनों एक जैसे हैं। इसीलिए सम्मिलित हुए। कोई फर्क नहीं है। वही शोरगुल है, वही बैंड-बाजा है। तुमने बच्चों को देखा, जिसकी गुड़िया का विवाह हो रहा था उसको देखा, इससे ज्यादा तुम किसी के मां- बाप को और क्या प्रसन्न पाओगे! और क्या हो सकता है इससे ज्यादा! गुड्डा- गुड्डी क्यों देख रहे हो, जिन्होंने विवाह रचाया उनकी खुशी तो देखो। यही खुशी असली विवाह में हो रही है। जिसको तुम असली विवाह कह रहे हो वह भी यही राग-रंग है। यही सपने हैं।
यहां सब धूल में पड़ा रह जाता है। जिसको तुम असली कहते हो, वह भी नकली
ही है। यहां नकली सिक्के तो नकली हैं ही, यहां असली सिक्के भी नकली हैं। मगर असली सिक्के की वजह से तुम ख्याल में नहीं लाते।
एक नोट पकड़ जाता है किसी आदमी के पास नकली। नकली तुम कैसे जांचते हो? क्योंकि तुमने किसी को असली मान रखा है। लेकिन जिसको असली माना है, वह कहां असली है? असली क्या है उसमें? कल सरकार बदल जाए, नकली हो जाए। अभी सरकार का दिल बदल जाए, नकली हो जाए। मान्यता की बात है। तुम्हारा असली भी नकली ही है। नकली तो नकली है ही। लेकिन किसको तुम असली कह रहे हो?
बुद्ध कहते हैंः

अनेक जाति संसारं संधविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।

अनेक-अनेक जन्मों में, अनेक-अनेक जीवन में एक ही बात खोजता रहा हूं कि
यह जीवन का घर कौन बनाता है? यह खेल कौन रचता है?
यहां बुद्ध की बड़ी गहरी खोज है। साधारण आदमी कह देता है, भगवान की लीला! यह कोई उत्तर न हुआ। यह उत्तर से बचना हुआ। न तुम्हें भगवान का पता, न तुम्हें लीला का पता! ये उत्तर वैसे ही हैं जैसे कि किसी ने तुमसे पूछा कि कहां से आए, तुम कहते हो भगवान जाने। इसका मतलब समझते हो? कोई नहीं जानता। भगवान जाने, इससे यह मत तुम समझना कि भगवान जानता है। तुम अज्ञान को जानने में ढांक रहे हो। यह कहने की तुम्हारी हिम्मत नहीं कि मुझे पता नहीं। आदमी बड़ा धोखेबाज है। जहां-जहां उसे कहना पड़ता है मुझे पता नहीं, वह कुछ इस ढंग से कहता है कि ऐसा लगे कि पता है। कहते हो, भगवान जानता है। ज्यादा ईमानदारी होती, तुम कहते, पता नहीं, कोई भी नहीं जानता। मगर तब अहंकार को खड़ा कैसे करते? यहां, भगवान जानता है, ऐसा जानकर तुमने जना दिया है कि भगवान जानता है क्यों, और तुम भगवान को जानते हो। सब साफ हो गया मामला। जहां कुछ भी जाना हुआ नहीं है, वहां तुमने जानने का भ्रम पाल लिया। नहीं, बुद्ध ने... इस तरह तो बहुत गुरुओं के पास वे गए थे। उन्होंने कहा, भगवान ने बनाया, वह उनको जंचा नहीं। वह जंचा इसलिए नहीं कि वे कहते हैं कि फिर भगवान को किसने बनाया? इससे कोई उत्तर नहीं मिलता। और भगवान भी क्यों बनाएगा? भगवान के भी बनाने का कारण क्या है? इससे कुछ आधार-सूत्र नहीं मिलता। बुद्ध की गवेषणा उन्हें बड़े अनूठे जगह ले गयी, जो कि समस्त धर्मों का सार है।
उजाड़ से लगा चुका उम्मीद मैं बहार की
निदाघ से उम्मीद की बसंत की बयार की
मरुस्थली-मरीचिका सुधामयी मुझे लगी
अंगार से लगा चुका उम्मीद मैं तुषार की
अगर तुम गौर से देखोगे, तो जहां-जहां तुमने सुख देखा था वहां-वहां दुख पाया, और कुछ भी नहीं। फिर भी तुम यह नहीं कहते--

उजाड़ से लगा चुका उम्मीद मैं बहार की
फिर भी तुम वही उम्मीद बार-बार लगाए चले जाते हो। तुम अनुभव से सीखते नहीं। और जो अनुभव से न सीखेगा वह पुनरुक्ति करता रहता है। वह वही-वही दोहराता रहता है। सीख लो, तो जीवन में कुछ नया हो, पुनरुक्ति रुके।
बुद्ध कहते हैं कि मैंने गौर से देखा, जन्मों-जन्मों में झांककर देखा, बार-बार झांककर देखा, यह क्या हो रहा है? यह कौन मेरे घर को बनाए जाता है? कौन मुझे नया जन्म दिए चला जाता है? यह उन्होंने बाहर न खोजा। क्योंकि इसकी बाहर खोज नहीं हो सकती। यह कहीं तुम्हारे भीतर ही कोई सूत्र है। कहीं भ्रांति का भीतर ही कोई आधार है।
"बिना रुके अनेक जन्मों तक घर को बनाने वाले को खोजते मैं संसार में दौड़ता रहा। पुनः-पुनः जन्म पाना बड़ा दुखरूप है।"
मगर कोई उपाय न था। क्योंकि जब तक हमें यह पता न चल जाए कि घर कैसे बनता है, कैसे उठता है, तब तक उसे मिटाएं कैसे? जब तक हमें बीज का पता न चल जाए तब तक हम वृक्ष को रोकें कैसे? बीज हाथ में आ जाए तो जला दें आग में, भून डालें उसे, फिर उससे कोई अंकुर न उठे, फिर निर्बीज समाधि हो जाए, फिर जीवन में कोई अंकुर न आए। लेकिन बीज कहां है? कौन दौड़ा रहा है?
कोई कहता है, भाग्य दौड़ा रहा है। कोई कहता है, भगवान दौड़ा रहा है। कोई कहता है, प्रकृति दौड़ा रही है। कोई कहते हैं, यह सब दुर्घटना है, संयोगमात्र है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, यह संयोगमात्र नहीं हो सकता। इतने लोग दौड़ रहे हैं, इतने जन्मों तक दौड़ रहे हैं, यह मात्र संयोग नहीं हो सकता। इसके पीछे सूत्र खोजना ही होगा।
बुद्ध की दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक है। और बुद्ध कहते हैं, देखने पर मेरी समझ में आना शुरू हुआ कि जो कुछ भी हो रहा है, कहीं न कहीं मेरा हाथ है। क्योंकि जो मेरे जीवन में हो रहा है, वह मेरे ही हाथ से हो सकता है। यह हो सकता है मुझे पता न हो।
फ्रायड की एक बड़ी खोज है इस सदी की। और वह खोज भी अत्यंत प्राचीन है। पूरब के लिए बड़ी प्राचीन है। फ्रायड ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक नयी बात जोड़ी जो जीवनभर की खोजों के विपरीत जाती है। उसकी खुद की खोजों के विपरीत जाती है। लेकिन वह आदमी ईमानदार था। उसने असंगति की फिकर न की। उसने कहा, जो मेरे अनुभव में आ रहा है, वह मैं कहूंगा। वह मेरे भी विपरीत जाता हो, तो भी कहूंगा। मैं क्या कर सकता हूं! तथ्य ही ऐसा कह रहे हैं। जीवनभर उसने जिस सिद्धांत की प्रस्तावना की, उस सिद्धांत का उसने नाम दिया है--लिबिडो। इरोज। कामवासना। वह कहता है, सारा जीवन कामवासना की दौड़ है। लेकिन फिर जीवन के अंतिम क्षण में उसने अपने भीतरी निरीक्षण से भी पाया कि अब तो दौड़ थकने लगी और कभी-कभी मरने का भी मन होता है, और कभी-कभी तो शांत, चुप हो जाने का, डूब जाने का भी मन होता है। फिर वह ऐसे मरीजों के भी संपर्क में आया, जो जीना नहीं चाहते। फिर उन्हें तुम जिलाने की कितनी भी कोशिश करो, तुम उन्हें जिला भी नहीं सकते। क्योंकि जिसके भीतर से जीने की आकांक्षा चली गयी, उसको फिर कोई बाहरी सहारा नहीं रोक सकता। वह तो ऐसा समझो कि उसकी बुनियाद ही गिर गयी। आधार टूट गया। केंद्र बिखर गया। फिर तुम कितना ही सतह को सम्हालो, आज नहीं कल उखड़ जाएगी।
तो उसने एक दूसरा सिद्धांत प्रस्तावित किया--थानाटोस। पहला सिद्धांत
है जीवेषणा। और दूसरा सिद्धांत है मृत्यु-आकांक्षा। वह कहता है--और उसकी भी बातें तुम्हें मेरे इस पूरे हिसाब में बैठ जाएंगी--वह कहता है, करीब बयालीस साल की उम्र के निकट जीवेषणा मृत्यु-एषणा में बदल जाती है। जो आदमी अब तक जीने के लिए दौड़ रहा था, वह मरने के लिए दौड़ने लगता है। थकने लगता है। जैसे दिन के बाद रात है। दिनभर श्रम है और रात विश्राम है। दिनभर जो दौड़ा और श्रम किया, वह सांझ को कहता है, अब सो जाने दो। अब मैं थक गया, अब बाधा मत दो। अब मुझे विश्राम करने दो। ऐसे चालीस साल तक आदमी दौड़ता रहता है, वह आधा वर्तुल है जीवन का, जीवेषणा। फिर थक जाता है। फिर रात शुरू हुई। फिर वह कहता है, अब मुझे विश्राम करने दो, अब मुझे मर जाने दो।
अगर हम भारत की भाषा में समझें, तो अर्थ और काम आधा वर्तुल है। जीवेषणा। दूसरा वर्तुल है धर्म और मोक्ष। मृत्यु-एषणा। और हमने इसमें कभी

विसंगति नहीं देखी, यह पूरा वर्तुल है। पहले रेखा वर्तुल की ऊपर उठती है, ऊपर उठती है, फिर एक जगह से वर्तुल मुड़ता है, रेखा नीचे उतरने लगती है, फिर वहीं मिल जाती है जहां से शुरू हुई थी, वर्तुल पूरा हुआ। जहां जन्म हुआ था, वहीं मृत्यु वापस ले आती है। फिर नया जन्म शुरू हो जाता है। फिर नयी मृत्यु की यात्रा पर हम निकल जाते हैं।
और जिस जीवन में ये दोनों नहीं हैं, वह जीवन अधूरा है। जिसने केवल दिन जाना और रात का विश्राम न जाना, तुम उसका पागलपन तो देखो। वह किस मुश्किल में पड़ जाएगा। जिसको नींद नहीं आती, उससे पूछो। जो विश्राम नहीं कर सकता, उससे पूछो। भोजन के बिना आदमी तीन महीने जी सकता है। बिना नींद के तीन महीने न जी सकेगा। नींद भोजन से भी ज्यादा जरूरी है। बिना भोजन के आदमी दुबला हो जाएगा, कमजोर हो जाएगा; बिना नींद के आदमी विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है।
अनिद्रा जिसको पकड़ लेती, इनसोमेनिया जिसे पकड़ लेती है, उसकी तकलीफ पूछो। उसकी तकलीफ यह है कि काम तो करता है, विश्राम का उपाय न रहा। दूसरे दिन सुबह उठता है और भी ज्यादा थका-हारा, जितना कि सांझ को बिस्तर पर गया था। तो दिनभर भी थकता है, रातभर भी थकता है। थकान इकट्ठी होती चली जाती है। उसकी पूरी जिंदगी एक थकान और एक बोझ हो जाती है।
जो रात के संबंध में सही है, वह मौत के संबंध में सही है। मौत पूरी जिंदगी की दौड़ के बाद विश्राम है। और जैसे रात की तैयारी करनी होती है-- सांझ हो गयी, सूरज ढल गया, दीए जल गए, लोग तैयारी करने लगे, पशु-पक्षी आकर अपने नीड़ों में शोरगुल मचाकर आखिरी चर्चा, विचार-विमर्श करके शांत हो गए-- ऐसा धर्म तैयारी है। सांझ हो गयी, मोक्ष, मृत्यु में डूब जाना है, स्वेच्छा से।
जो मरने से डर रहा है, वह नींद से भी डरेगा। जो नींद से डर रहा है, वह मरने से भी डरेगा। क्योंकि नींद रोज आने वाली छोटी मौत है। और मौत जीवन के अंत में आने वाली बड़ी नींद है। और जैसे नींद सुबह ताजा कर जाती है, ऐसे ही मौत फिर तुम्हें नए जन्म के योग्य बना जाती है। फिर तुम्हें ताजा कर जाती है। बुढ़ापा छीन लेती है तुमसे, बचपन दे देती है।
जो आज जा रहा मैं असमय की यात्रा पर
वह सचमुच मेरी चाह हुई है जाने की
जो ठहर नहीं पाती हैं मेरी सांसें
है मेरी ही वह चाह नहीं रुक पाने की
कोई मरता नहीं। कोई जबर्दस्ती किसी को मार नहीं रहा है। हम मरते हैं।
हम चाहने लगते हैं। जो आकांक्षा जीवन को मांगती थी, वही एक दिन मौत को मांगने लगती है। अगर जीवन की ही आकांक्षा को हमने स्वीकार किया, तो अर्थ और काम दो ही लक्ष्य रह जाते हैं। भोगो, वासना, स्त्री-पुरुष और धन-पद। धन-पद की जरूरत है भोगने के लिए। बिना धन के भोगोगे कैसे? बिना धन के अच्छी स्त्री भी न पा सकोगे। बिल्कुल निर्धन हुए तो स्त्री भी न पा सकोगे। स्त्रियां आमतौर से धन में उत्सुक होती हैं।
यह तुमने ख्याल किया। धनी को सुंदरतम स्त्री मिल जाती है। चाहे धनी सुंदर न हो। ब.ूढा भी हो धनी, तो भी युवा स्त्री मिल जाती है। ओनासिस को जैकी मिल जाती है। धन हो! तो थोड़ा सोचने जैसा है कि स्त्री को धन में इतनी उत्सुकता क्या है?
स्त्री काम है। धन के बिना काम के खिलने की सुविधा नहीं। धन तो ऐसे ही
है जैसे पौधे में पड़ी खाद है। बिना खाद के फूल न खिल सकेगा। इसलिए स्त्री की सहज आकांक्षा धन की है। वह बलशाली आदमी को खोजती है, महत्वाकांक्षी को खोजती है, धनी को खोजती है, पद वाले को खोजती है। स्त्री सीधे-सीधे चेहरे पर नहीं जाती। चेहरे-मोहरे से स्त्री बहुत हिसाब नहीं रखती।
इसलिए कभी-कभी आश्चर्य होता है, सुंदरतम स्त्री कुरूप आदमी को खोज लेती है। मगर उसकी जेबें भरी होंगी। वह बड़े पद पर होगा। राष्ट्रपति होगा। प्रधानमंत्री होगा। सुंदर स्त्री की आकांक्षा बड़े गहरे में अर्थ की है, क्योंकि वह जानती है अगर अर्थ होगा, तो ही वह खिल पाएगी, तो ही उसका सौंदर्य निखर पाएगा। धन सुविधा है।

पुरुष की आकांक्षा काम की है। पुरुष अर्थ है। इसे तुम समझो।
पुरुष महत्वाकांक्षा है, वह अर्थ है। वह धन तो कमा सकता है, धन तो उसकी मुट्ठी की बात है, हाथ का मैल है, लेकिन सुंदर स्त्री को कैसे कमाएगा? सुंदर स्त्री तो हो तो हो, न हो तो सौंदर्य को पुरुष पैदा नहीं कर सकता। इसलिए उसकी नजर सौंदर्य पर है। सुंदर स्त्री हो, तो वह और तेजी से दौड़कर कमाएगा।
एंड्रू कारनेगी को किसी ने पूछा--अमरीका के सबसे बड़े धनी व्यक्ति को--
कि तुम इतनी कमाई कैसे करते चले गए? तो उसने कहा, मेरी पत्नी को देखा? जब उससे मैंने विवाह किया, तभी मैंने जान लिया कि उसने मुझसे विवाह नहीं किया है, मेरे धन से विवाह किया है। और अगर यह विवाह टिकना है, तो धन बढ़ते जाना चाहिए। फिर मुझमें और उसमें एक दौड़ लग गयी। मैं यह देखता रहा कि कितना ऐसा धन हो सकता है, जिस पर वह तृप्त होगी! वह कभी तृप्त न हुई, इसलिए मैं दौड़ता रहा। दस अरब रुपया वह आदमी छोड़कर मरा, नगद। महत्वाकांक्षा में दौड़ पैदा हो गयी, महत्वाकांक्षा में त्वरा आ गयी।
स्त्रियों ने प्रेरणा दी है। अगर कवि कविता करता है, सुंदर स्त्री मिल जाए, कविता सुंदर हो जाती है तत्क्षण। नहीं तो बैठे-बैठे गमगीन गा रहे थे--रो रहे थे असल में। रोने को गाना कह रहे थे। आंसू टपक रहे थे। सुंदर स्त्री मिल जाती है, प्रेरणा आ जाती है। गीत निखर जाते हैं। छवि प्रगट होने लगती है गीत में। सुंदर स्त्री न भी मिले, दिखायी भर पड़ जाए, तो भी महत्वाकांक्षा सजग हो जाती है, ज्योति जलने लगती है।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि पुरुष है अर्थ, पुरुष है महत्वाकांक्षा, अहंकार की दौड़, विजय की यात्रा। पुरुष है आक्रमण, स्त्री है निमंत्रण। स्त्री है काम, बुलावा। इसीलिए तो पुरुष निवेदन करता है प्रेम का, स्त्री कभी नहीं करती। स्त्री कभी नहीं कहती कि मुझे तुमसे प्रेम है। वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है कि बोलो, अब बोलो। बोलो और फंसो! मगर वह राह देखती है। इसलिए तुम कभी किसी स्त्री से यह न कह सकोगे कि तूने मुझे फंसाया। वह
तो चुप ही थी। उसने तो कभी बात ही न उठायी थी। बात की तो बात दूर, उसने तो हमेशा इनकार ही किया था। वह तो नहीं ही कहती चली गयी थी--कि नहीं। वह तो दूर ही हटती चली गयी थी, तुम्हीं पीछे दौड़ते रहे।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में, दोनों में बात हो रही थी, सुबह चाय की टेबल पर। मैं भी मौजूद था। कुछ गरमागरमी बात हो गयी थी। तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुम्हें ध्यान रहना चाहिए कि मैं तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ रही थी। मैंने कभी तुम्हें चाहा भी न था, कभी कहा भी न था। मुल्ला ने कहा, वह मुझे पता है। चूहादानी कभी चूहे के पीछे दौड़ती है? चूहा खुद ही आता है। यह तो बिल्कुल साफ है, मैं खुद ही आया।
स्त्री निष्क्रियता है, एक शांत सरोवर। उसके कारण बहुत से सरोवर अशांत होते हैं, यह दूसरी बात है। मगर अपने में वह शांत है। अपने में वह उत्तेजित नहीं है। स्त्री काम-ऊर्जा है। काम की प्रतिमा है। स्वभावतः स्त्री और पुरुष में मेल तभी हो सकता है, जब वे विपरीत हों। रस भी तभी हो सकता है, जब विपरीत हों।
पुरुष है महत्वाकांक्षा, स्त्री है निमंत्रण। पुरुष है दूर शिखरों को छूने की प्रज्वलित भावना। स्त्री है दूर शांत खड़ा शिखर--बुलाता है। स्त्री और पुरुष अर्थ और काम हैं। इसलिए स्त्री रस लेती है धन में, पुरुष रस लेता है सौंदर्य में। यह दौड़ जारी रहती है।
जब तक कि इस दौड़ के भीतर हम प्रवेश करके गौर से न देखें, पुरुष जब तक न झांके अपनी महत्वाकांक्षा में, अपनी आक्रामक, अपनी हिंसात्मक वृत्तियों में, तब तक उसे पता नहीं चलता, कौन घर बना रहा है? स्त्री जब तक न झांके अपनी निष्क्रिय निमंत्रण की अवस्था में, अपने चुपचाप दिए गए बुलावे में। कभी-कभी तुम्हें पता ही नहीं होता कि तुम जो कर रहे हो... जब होता है तब तुम नाराज हो जाते हो।
अब स्त्रियां घर से निकलती हैं, खूब सज-धजकर निकलती हैं। फिर कोई रास्ते पर धक्का मार देता है। अब कोई पूछे कि इतना सज-धजकर क्यों निकलीं? तो शायद कोई उत्तर नहीं है साफ, लेकिन अगर इसे गहरे मनोविज्ञान से पूछें

तो सज-धजकर निकलने का मतलब ही यह था कि तुम चाहते थे कि कोई धक्का मारे। कोई आकर्षित हो, कोई उत्सुक हो। अगर कोई धक्का न मारे, तो स्त्री उदास-उदास घर लौटेगी कि यह क्या हुआ?
तुम सोचो, एक सुंदर स्त्री निकले, कोई देखे ही नहीं। बाजार में घूम आए,
सब जगह हो आए, कोई नजर ही न डाले। गांव तय कर ले कि आज इसको देखना नहीं, न कंकड़ मारना, न धक्का मारना, न दूर से एक चुंबन फेंकना--कुछ करना ही नहीं, भूल ही जाना कि यह है स्त्री। वह घर आकर रोएगी उस रात, यह हुआ क्या?
मैं एक कालेज में अध्यापक था। बैठा था मैं प्रिंसिपल के कमरे में, कुछ बात थी। एक लड़की आयी, वह बड़ी नाराज थी। किसी लड़के ने एक कंकड़ उसको मार दिया। प्रिंसिपल बहुत नाराज हुए, उन्होंने कहा कि उस लड़के को बुलवाओ। मैं बैठा सुनता रहा। वह लड़का भी आ गया।
प्रिंसिपल ने कहा, आप इससे कुछ कहें--मुझसे कहा कि आप इससे कुछ कहें। मैंने कहा, मुझे बीच में मत लाएं! क्योंकि मेरी यह समझ है कि ये दोनों सहभागी हैं। इस लड़की की तरफ तो देखें, बालों में लव-इन-टोकियो लटके हुए हैं। यह झंझटी है। इसको कंकड़ न मारा जाए, तो यह दुखी होकर लौटेगी। अब मारा, तो दुखी हो रही है। और यह लड़का ऐसे कुछ बुरा नहीं दिखता। अगर यह कंकड़ अभी नहीं मारेगा, तो क्या सोचते हैं जब प्रिंसिपल हो जाएगा आपकी जगह, तब मारेगा। तब बड़ा बेहूदा लगेगा। तब असमय हो जाएगी बात। और मुझे नहीं दिखता कि इसकी, लड़की की नाराजगी में वस्तुतः नाराजगी है। इसकी नाराजगी को जरा गौर से झांकें, यह बड़ी प्रसन्नचित्त होकर कह रही है। वह लड़की भी मेरी बात सुनकर मुस्कुरायी। मैंने कहा, आप देखिए!
आदमी कभी अपने भीतर ठीक से झांककर देखे, तो बहुत चीजें साफ होती हैं। यहां जो भी हो रहा है, वह हमारे चाहे हो रहा है। जो हम चाहते हैं, वही हो रहा है। शायद हमें भी पता न हो कि हम क्या चाहते हैं। चाहे हमारी चाह भी हमने खूब अंधेरे में दबा दी हो--अचेतन में दबा दी हो--लेकिन जो भी हो रहा है वह हमारे चाहे हो रहा है। मौत भी यहां हमारी चाह से ही घटती है, और जीवन भी हमारी चाह से ही घटा है। जन्मे भी हम अपने कारण हैं, मरेंगे भी हम अपने कारण। संसार में भी हम अपने कारण हैं और मोक्ष में भी हम अपने कारण होंगे। यही बुद्ध की आत्यंतिक खोज है। यह उनका चरम निष्कर्ष है।
"हे घर के बनाने वाले! मैंने तुझे देख लिया; अब तू फिर मेरे लिए घर न बना सकेगा। तेरे सभी बांस टूट गए और तेरे घर का शीर्ष भी बिखर गया।
संस्कार-रहित चित्त से तृष्णा का क्षय हो गया है।"
तृष्णा, घर बनाने वाला सूत्र है। तन्हा। वह जो, जिसको फ्रायड लिबिडो कहता है, वह कामवासना।

गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।

देख ले, हे घर बनाने वाले अब ठीक से देख ले, अब तुझे दुबारा बनाने की जरूरत न रहेगी, पकड़ लिया मैंने सूत्र। मैं ही बना रहा था। मैंने ही अंधेरे हाथों से अपने घर की ईंटें रखी थीं। मैंने ही सजाया था। हो सकता है रात में उठकर नींद में सजाया हो, पर मैंने ही सजाया था।

गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।

अब दुबारा, अब दुबारा यह न होगा।

सब्बा ते फासुका

देख, सारे बांस गिरने लगे।

भग्गा गहकूटं विसंखिति।

देख, शीर्ष भी बिखरने लगा। घर की छत भी गिरने लगी।

विसंखारंगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।

तण्हानं--तन्हा, तृष्णा, लिबिडो। पकड़ लिया सूत्र। मैंने ही चाहा है,
जो हुआ है। औरों ने कहा है, भगवान ने चाहा है, जो हुआ है। लेकिन तुम जरा जिन्होंने कहा है, भगवान ने चाहा है, उनको जरा पूछो, उनके जरा गहरे उतरो-- उसने क्यों चाहा है? तो भगवान से भी गहरी तुम चाह को पाओगे, क्योंकि उसने भी चाहा है।
इसलिए पुराणों की कथाएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं। कभी-कभी अभद्र भी मालूम पड़ती हैं, पर बड़ी महत्वपूर्ण हैं।
पुराण कहता है, ब्रह्मा ने पृथ्वी रची, वह उसकी बेटी थी, फिर उस पर मोहित हो गया। अपनी बेटी पर! उसके पीछे दौड़ने लगा। बेटी घबड़ा गयी। घबड़ाकर गाय हो गयी। वह बैल हो गया। ब्रह्मा!
मगर यह कितनी ही भद्दी लगती हो, अश्लील भी लगती हो, पर बड़ी मूल्यवान है कथा। और हिंदुओं ने बड़ी हिम्मत की। उन्होंने इसकी फिकर नहीं की कि लोग क्या कहेंगे कि यह पुराणकथा! यह धर्म-शास्त्र! यह तुम क्या कह रहे हो? लेकिन सत्य को कहने की बड़ी हिम्मत की। आज के हिंदू बहुत कमजोर और कायर हो गए, वह बात और है। लेकिन कभी बड़ी हिम्मतवर कौम थी।
जरा सोचो, भगवान ने पृथ्वी पैदा की, तो निश्चित ही जिसने पैदा की वह पिता हो गया। बेटी हो गयी पृथ्वी। और वह बेटी पर आकर्षित हो गया--इतनी सुंदर थी। वह दौड़ने लगा उसके पीछे। बेटी स्वभावतः घबड़ा गयी। बाप को दौड़ते देखा तो वह बेचैन हो गयी। उसने घबड़ाकर रूप बदल लिया, वह गाय हो गयी। तो वह बैल हो गया। बैल नहीं सांड, क्योंकि बैल तो बहुत बाद में आए। वह घबड़ाकर बदलती गयी। हथिनी हो गयी, तो वह हाथी हो गया। हिंदू कहते हैं, इसी तरह पूरी सृष्टि पैदा हुई। क्योंकि वह बेटी घबड़ाती गयी और रूप बदलती गयी। और बाप भी अपना रूप बदलकर नए रूप में फिर कामवासना से भरता हुआ दौड़ने लगा।
सारी दुनिया में सभी समाजों ने अब तक--अब तक कहता हूं, कहना चाहिए दो सप्ताह पहले तक--नियम रखा है कि बाप और बेटी का संबंध न हो। यह संबंध सबसे बड़ा पाप समझा है। दो सप्ताह पहले तक कहता हूं, क्योंकि दो सप्ताह पहले स्वीडन की सरकार ने एक नियम पारित किया, कि इसको अब गैरकानूनी नहीं समझा जा सकता। बाप भी अगर बेटी से संबंध बनाए, या बेटी बाप से संबंध बनाए, तो इसको कोई अब अदालत में नहीं ला सकता। यह गैरकानूनी, अपराध नहीं है।
क्यों सारे समाजों ने यह बात रखी कि बाप और बेटी का संबंध, या बेटे और मां का संबंध... । जरूर खतरा वहां है। अगर संबंध पर बहुत रोक न हो, तो संबंध हो जाएगा। इसका डर है। जहां डर है, वहीं रोक है। साधारणतः हम सोचेंगे कि यह बात ही सोचने जैसी नहीं। बाप और बेटी का संबंध! लेकिन जब ब्रह्मा और उसकी बेटी का हो गया, तो हिंदू जानते हैं, यह हो सकता है।
जब बेटी बड़ी होती है, तो बाप को फिर अपनी पत्नी उसमें दिखायी पड़ती है-- वैसी ही जैसी उसकी पत्नी युवा थी, जब वह उसे विवाह लाया था। सारी वासना फिर प्रज्वलित होती है। वह तो इतने संस्कारों के कारण रुकावट पड़ती है। इतने संस्कार हमने खड़े कर दिए हैं, इतनी धारणाएं हमने पैदा कर दी हैं कि पाप है। यह पाप की बात इतनी गहरी बिठा दी है और संस्कार सदियों पुराना है कि बाप के मन में उठे भी तो वह खुद ही को घृणा करेगा कि यह मैंने क्या सोचा? यह बात मेरे मन में कैसी उठी? मैं महापापी हूं। वह पश्चात्ताप करेगा, उपवास रखेगा, मंदिर जाएगा, कुछ करके इंतजाम करेगा--अपने को प्रच्छालित करेगा। लेकिन यह बात उठ सकती है।
अगर बिल्कुल प्राकृतिक हो और कोई रुकावट न डाली गयी हो, तो जैसा पशुओं में उठती है, वैसे ही पुरुष में भी, मनुष्यों में भी उठेगी। मां जब अपने बेटे को जवान होते देखती है, तो उसे याद आते हैं वे दिन, जब उसका पति भी जवान था और ऐसा ही तो लगता था! ठीक उसका पति जैसे फिर लौट आया। लौटा भी है। आखिर बेटा उसका पति का ही रूप है। खतरा है! डर है!
स्वीडन ने यह खतरा हटाया, यह मनुष्य-जाति के इतिहास में एक क्रांतिकारी क्षण हो सकता है। आज इसका इतिहास नहीं लिखा जा सकता, लेकिन हजारों साल बाद। आदमी, स्वीडन में जो यह नियम बना, इसके बाद अब वही नहीं हो

सकेगा जो इसके पहले था। मनुष्य का इतिहास इस नियम से विभाजित होगा। यह बड़ा क्रांतिकारी कदम है। बड़ा हैरान करने वाला कदम है।
बुद्ध कहते हैं, ईश्वर ने बनाया, लेकिन... वेद कहते हैं कि ईश्वर के मन में कामना पैदा हुई कि मैं रचूं। मैं संसार रचूं। रचने की वासना जगी। तो बुद्ध की बात बड़ी साफ है, वे कहते हैं, वासना फिर परमात्मा से बड़ी हुई। वासना ने परमात्मा को आंदोलित किया। परमात्मा भी वासना से ही चला--कामना हुई कि रचूं, वासना हुई कि बनाऊं, फैलाऊं, माया का जाल उठाऊं--तो फिर यह जो वासना ने परमात्मा तक को अनुप्राणित किया और चलाया, वह बड़ी हो गयी।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, परमात्मा को छोड़ो, जिसने परमात्मा को चलाया वही तुम्हें भी चला रही है, उससे ही निपट लो।
इसलिए बौद्ध-पुराणशास्त्र में, जब बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध होते हैं,
तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उनके चरणों में आते हैं। यह भी एक बड़ी अनूठी घटना है। हिंदू इससे बहुत नाराज हुए। यह कहानी गढ़ने से। कि यह क्या कहानी गढ़ी कि बुद्ध के चरणों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आते हैं! ब्रह्मा उनके चरणों में सिर रखता है और कहता है, आप बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए, हमें भी ज्ञान दें। परमात्मा बुद्ध के चरणों में आकर मांगता है, ज्ञान दें!
यह बात लेकिन महत्वपूर्ण है। यह कहानी बिल्कुल ठीक है। होना ही यह चाहिए। क्योंकि ब्रह्मा भी तो उसी वासना से पीड़ित है जिससे बुद्ध पीड़ित थे। और बुद्ध उस वासना से मुक्त हो गए जिससे ब्रह्मा अभी मुक्त नहीं हुआ है। तो ब्रह्मा को चरणों में आना चाहिए, बिल्कुल ठीक है। स्वाभाविक है। कथा से चोट नहीं लगनी चाहिए। कथा बड़ी सूचक है।
"हे घर के बनाने वाले! मैंने तुझे देख लिया; अब फिर तुम घर न बना सकोगे।"
जिसने देख लिया तृष्णा को, बस मुक्त हो गया। देखने में मुक्ति है, दर्शन में मुक्ति है, द्रष्टा होने में मुक्ति है। इसलिए सारा सवाल यह है कि हम कैसे अपने भीतर के उस मूल-सूत्र को देख लें, जिससे बार-बार जीवन की पुनर्रचना होती है। फिर-फिर जन्म, फिर-फिर मौत। और पुनः-पुनः जन्म पाना बड़ा दुखरूप है, बुद्ध कहते हैं।
"तुम्हारे सभी बांस टूट गए।"
तृष्णा से कह रहे हैं कि तेरे सब बांस टूट गए।
"तेरे घर का शीर्ष भी बिखर गया है। संस्कार-रहित चित्त से तृष्णा का क्षय हो गया है।"
आशियाना ही गुलिस्तां में नहीं
अब खिजां आए या बहार आए
अब क्या फिक्र! अपना घर ही अब बगीचे में नहीं है। अब बहार आए तो ठीक, पतझार आए तो ठीक।
आशियाना ही गुलिस्तां में नहीं
अब खिजां आए या बहार आए
इस घड़ी को मुक्ति कहा है। इसलिए हम संसारी को गृहस्थ कहते हैं। गृहस्थ से तुम इतना मत समझ लेना कि घर में रहता है इसलिए; कि घरवाली उसके पास है इसलिए। गृहस्थ का इतना ही मत समझना मतलब। इसका मतलब है, जिसका घर बनाने का क्रम अभी जारी है। घरवाली तो पीछे आती है। घर भी पीछे आता है। इन दोनों के पीछे घर बनाने का क्रम--गृहकारक! अभी तृष्णा जारी है।
संन्यासी को हम कहते हैं गृहत्यागी। बुद्ध ने उसे अगृही कहा है। अनिकेत कहा है। अनागरिक कहा है। जिसने घर छोड़ा, जो अगृही हुआ। इसका यह मतलब नहीं कि बुद्ध का भिक्षु घर में नहीं रहता। घर में ही टिकता है, जब बरसात आती है तो घर में ही रुकता है। मेहमान तो बनता है घर में ही। लेकिन अब उसने घर बनाना छोड़ दिया। उसने तृष्णा को देख लिया।
साधारणतः हम अंधे की तरह टटोल रहे हैं। साधारणतः तृष्णा हमें चलाए जाती है, हम दौड़े चले जाते हैं। हमें ठीक से यह भी पता नहीं, कौन हमें दौड़ा रहा है? क्यों दौड़ा रहा है? कहां दौड़ा रहा है? इस तृष्णा के कारण हम बड़ा दुख पाते हैं, क्योंकि यह दुख में ही ले जाती है। सब दौड़ दुख में ले जाती है।

थी छांव बहुत जग में लेकिन मेरी किस्मत बस धूप पड़ी
उस क्षण भी कांटे हाथ रहे मौसम ने ली जब फूलछड़ी
पर करूं शिकायत कहां
समय का रथ ऐसे ही चलता है कल देखी थी बारात जहां
अर्थी उस घर थी आज खड़ी
जो ऋण देना था चुका दिया
जो कुछ कहना था सुना दिया
अब जाने बोली कहां लगे?
झोली नीलाम कहां पर हो?
अब जाने शाम कहां पर हो?
बस ऐसे ही चलता है। कहां सुबह होगी, पता नहीं। कहां शाम होगी, पता नहीं। कहां घर बनेगा, पता नहीं। कहां कब्र बनेगी, पता नहीं। मगर एक बात पक्की है--
थी छांव बहुत जग में लेकिन
मेरी किस्मत बस धूप पड़ी
तृष्णा तुम्हें दुख में ले जाती है--यहां सुख भी बहुत है--क्योंकि तृष्णा तुम्हें बाहर ले जाती है और बाहर दुख है, भीतर सुख है। यहां छांव बहुत है। पर छांव भीतर है, धूप बाहर है। यहां शांति बहुत है। पर शांति भीतर है, अशांति बाहर है। यहां बड़ा आनंद है। यहां समाधि के फूल भी खिलते हैं। पर उन्हीं के जीवन में, जो भीतर प्रवेश करते हैं। और तृष्णा बाहर ले जाती है। तृष्णा तुम्हें तुमसे दूर ले जाती है, वही दुख है। जो अपने से जितना ज्यादा दूर, उतना ज्यादा दुखी। जो अपने से जितना पास, उतना ज्यादा सुखी। जो अपने में बिल्कुल डूब गया, वह परम आनंद को उपलब्ध हो गया।
"जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं... ।"
बुद्ध का सूत्र है कि तृष्णा क्यों दिखायी नहीं पड़ती? अंधे हम क्यों हैं? जो है इतनी प्रगाढ़ता से, जो जीवन का आधार है, वह दिखायी क्यों नहीं पड़ती?
"जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, जो युवावस्था में
धन नहीं कमाते, वे वृद्धावस्था में मछलियों से खाली तालाब के किनारे बैठे बूढ़े क्रौंच पक्षी के समान चिंता को प्राप्त होते हैं।"
यह शब्द चौंकाने वाला है। बुद्ध से सुनने की कल्पना भी नहीं होती कि बुद्ध कहेंगे कि जो युवावस्था में धन नहीं कमाते, और जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते। बुद्ध यह कह रहे हैं, जो जीवन की सरणी में चूक जाते हैं। बाल्यावस्था ब्रह्मचर्य के लिए है। क्योंकि जितनी देर ब्रह्मचर्य टिक जाए, जितनी देर बाल्यावस्था टिक जाए, उतनी ही प्रज्ञा प्रखर हो जाती है। जितनी देर शक्ति बाहर न जाए, उतने ही भीतर का अनुभव हो जाता है। एक बार भीतर का अनुभव हो जाए, फिर जाओ बाहर। फिर तुम्हें बाहर अटकाएगा न, उलझाएगा न। तुम बाहर भी रहोगे लेकिन भीतर का तुम्हें स्मरण भूलेगा न। वह सुख तुमने जाना।
यह बड़ी सोचने जैसी बात है। भारत की आत्यंतिक खोजों में बड़ी बहुमूल्य खोज है। भारत कहता है, पहले तुम भीतर का सुख जान लो, फिर जाओ बाहर। सब फीका- फीका रहेगा। अगर भीतर का सुख जाने बिना बाहर चले गए, तो चूके। फिर बाहर का सुख ही एकमात्र सुख मालूम होगा और दुख ही दुख पाओगे। और तुम्हें भीतर से तुलना करने का कोई उपाय नहीं। तुमने अपना घर तो कभी जाना ही नहीं। तुम उससे तो अनजाने ही बाहर निकल आए, बेहोश ही बाहर निकल आए।
अब तुम खोजते फिरोगे छांव पराए घरों में, पराए छप्परों के नीचे से भगाए जाओगे, हटाए जाओगे। तुम जानते ही नहीं कि अपना भी घर है एक, और उसे तुम अपने भीतर लिए हो। वहां जाने के लिए कुछ भी नहीं करना है, बस आंख बंद करनी है। वहां जाने के लिए कुछ भी नहीं करना है, बस न-करने का थोड़ा उपाय करना है।

वहां जाने के लिए कुछ भी नहीं करना है, थोड़े द्वार-दरवाजे बाहर के बंद करने हैं, ऊर्जा को भीतर प्रवाहित होने देना है।
इसलिए हमने यह चेष्टा की थी इस देश में--अनूठा प्रयोग था, कभी पृथ्वी
पर कहीं और किया नहीं गया और भारत भी करके उसे भटक गया, चूक गया। किया, फिर भूल गया। प्रयोग बड़ा बहुमूल्य था। वह प्रयोग यह था कि हर बच्चा ब्रह्मचर्य का अनुभव कर ले। चौदह साल तक ब्रह्मचर्य का अनुभव नहीं हो सकता। बच्चा ब्रह्मचारी होता है; लेकिन अभी कामवासना नहीं उठी, इसलिए ब्रह्मचर्य का अनुभव नहीं हो सकता। अनुभव तो विपरीत में होता है। काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद रेखा खींचनी पड़ती है, तब दिखायी पड़ती है।
चौदह साल तक सभी बच्चे ब्रह्मचारी हैं। लेकिन वह ब्रह्मचर्य अबोध है। चौदह और अट्ठाइस के बीच में ब्रह्मचर्य हो, तो अनुभव होगा। क्योंकि तब वासना खींचेगी बाहर, और ऊर्जा को भीतर रखने की साधना चलेगी, तो अनुभव होगा। वासना के विपरीत, वासना के आकर्षण के विपरीत, वासना की काली तख्ती पर जब सफेद रेखा की तरह ब्रह्मचर्य प्रगट होगा, तो बोधपूर्वक अनुभव होगा। चौदह साल तक सभी बच्चे ब्रह्मचारी हैं। उस ब्रह्मचर्य का कोई पता नहीं। वह बेहोश है। विपरीत अभी पैदा नहीं हुआ, अभी आकर्षण जगा नहीं, अभी बाहर जाने का निमंत्रण नहीं आया है, इसलिए भीतर रहने का अनुभव भी नहीं हो सकता। विपरीत में अनुभव होते हैं। चौदह और अट्ठाइस साल के बीच में ब्रह्मचर्य का अनुभव है। अगर उस बीच ब्रह्मचर्य का अनुभव हो जाए, तो जीवन की बुनियाद रख गयी--ठीक जगह बुनियाद रख गयी। यह अनुभव इतना महत्वपूर्ण है, इतना गहरा है, इतनी सुरभि है इसकी, इतनी संपदा है इसमें कि फिर संसार तुम्हें कुछ भी दे, तुम जानोगे यह ना-कुछ है। तुम्हारे पास तुलना होगी। तुमने सोना जान लिया, अब तुम्हें पीतल से कोई भरमा न सकेगा। तुमने हीरे जान लिए, अब रंगीन कंकड़-पत्थर तुम्हें भुला न सकेंगे।
ब्रह्मचर्य को हमने पहला कदम माना। फिर दूसरा कदम बुद्ध कहते हैं, युवावस्था में जिसने धन नहीं कमाया। बचपन में जिसने ब्रह्मचर्य न साधा, युवावस्था में जिसने धन न कमाया। युवावस्था है महत्वाकांक्षा का क्षण। बाहर को देख लेने का क्षण। बाहर से परिचित होने का क्षण।
ध्यान रखना, अगर कोई व्यक्ति ब्रह्मचर्य में डूबा-डूबा भीतर ही रह जाए, तो सुख तो बहुत पाएगा, लेकिन यह कभी न समझ पाएगा कि बाहर दुख है। और जब तक तुम यह न जान लो कि बाहर दुख है, तब तक बाहर जाने की संभावना बनी है।
किसी भी दिन तुम बाहर जा सकते हो। बाहर से रोकने वाला अभी तुम्हारे पास कोई अनुभव नहीं है। बाहर जाना जरूरी है, ताकि बाहर से तुम मुक्त हो जाओ। फिर तुम्हें कोई बाहर न ले जा सकेगा। भटकना जरूरी है, ठीक राह पर आने के लिए। अपने घर में प्रवेश के लिए दूसरे घरों पर दस्तक देनी जरूरी है।
यह ऊपर से उलटा दिखायी पड़ता है, लेकिन जीवन को समझो, ऐसा ही जीवन का शास्त्र है। एस धम्मो सनंतनो।
बाहर जाओ, घर की याद रहे। बाहर खूब घूमो, घर का रास्ता न भूले। तुम घर
से ठीक से परिचित हो जाओ, फिर जाओ। फिर बड़ी मौज से जाओ, वह भी करना जरूरी है। वह जीवन का अनिवार्य शिक्षण है। भीतर है आनंद, यह जानना जरूरी है। बाहर है दुख, यह भी जानना जरूरी है। ताकि भीतर होना शाश्वत हो जाए। फिर बाहर की कोई कल्पना ही न उठे, स्वप्न न जगे।
"जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, और युवावस्था में
धन नहीं कमाते... ।"
धन यानी महत्वाकांक्षा, पद। वह जो व्यर्थ है, उसको भी इकट्ठा करना जरूरी है।
एक यहूदी रबाई से एक गरीब आदमी ने आकर कहा कि अब बहुत हो गया, मुझे मरने का आशीर्वाद दे दें। अब मुझे समझाएं मत। मैं बहुत बार पहले भी आया, आप हर बार समझा-बुझाकर भेज देते हैं, अब मैं नहीं जी सकता। यह जीना नरक है। जरा सोचो भी तो, उसने कहा, एक छोटा सा कमरा, दस बाई दस का। पानी भी बरसता है उसमें। उसी में मैं रहता हूं, मेरी पत्नी रहती है, मेरे बच्चे रहते हैं। उसी में मेरी सास रहती है, मेरा ससुर रहता है। उसी में मेरी मां, उसी में मेरे पिता। नहीं, अब यह बहुत हो गया। यह तो महानरक है। हिलने-डुलने की भी

जगह नहीं है। और सब एक-दूसरे से चिड़चिड़े और क्रोध से भरे रहते हैं। थोड़ा एकांत भी चाहिए। और हमारी सामर्थ्य नहीं कि हम और कोई मकान खरीद सकें, या कहीं जा सकें। मरने की आज्ञा दे दें।
उस बूढ़े रबाई ने कहा, एक बात। इस बार तुम्हें रोकूंगा न, बस सात दिन और रुक जाओ। तुम्हारे पास कितने जानवर हैं? उसने कहा कि एक कुत्ता है, छह बकरियां हैं, बारह भेड़ें हैं, एक गाय है, उसका एक बछड़ा है। तुम ऐसा करो, इन सबको भी कमरे में ले लो। उसने कहा, पागल हो गए हैं आप! दिमाग खराब हो गया है! हम वैसे ही मरे जा रहे हैं, इनको भी कमरे में ले लूं? खड़े होने की भी जगह न रहेगी। उस रबाई ने कहा, सात ही दिन का मामला है, फिर तुम मर जाना। इतना तो मान लो। मैं बूढ़ा आदमी। सदा तुमने मेरी मानी, मरते वक्त तो न टालो।
उसने कहा, हद्द की बात हो गयी। तुम फिर से सोचो, क्या कह रहे हो? मैं यह कल्पना ही करके घबड़ाता हूं। सात दिन जिंदा ही न रहूंगा, मरने की बात ही अलग है। मरेगा कौन? मर ही जाएंगे सभी। कोई फिकर नहीं, जब मरना ही है तो इसकी भी क्या फिकर।
रबाई ने जिद्द की, गरीब यहूदी कुछ सोच न सका, घर चला आया। घर के लोगों
से कहा, रबाई ने कहा है तो मानना ही पड़ेगा। घर के लोग भी चिल्लाए कि हद्द हो गयी। वैसे ही मरे जा रहे हैं, ये बकरियां, कुत्ता, गाय, भेड़ें! तुम... तुम्हारा दिमाग ठीक है? वे भी भागे गए, रबाई से पूछा। रबाई ने कहा, हां, मैंने कहा है। करने दो। जब रबाई कहता है तो फिर करना पड़ता है।
ले लिया सबको अंदर। वे सात दिन महानर्क के थे। नर्क भी फीका पड़ जाए। सात दिन बाद वह आदमी आया। रबाई ने कहा, अब मरने के पहले उन सबको घर के बाहर कर दे। उसने घर के बाहर किया। रबाई दो-तीन दिन प्रतीक्षा किया, वह लौटा नहीं। वह गया रबाई उसके घर, कहा क्या मामला है? मरना नहीं है?
उसने कहा, अरे छोड़ो, हम जीवन का ऐसा आनंद भोग रहे हैं! ऐसा आनंद कभी जाना ही न था। और घर में ऐसा प्रेम-भाव पैदा हुआ है! हम सब एक-दूसरे में इतने... और इतनी जगह मालूम होती है! कमरा वही है। बड़ी जगह मालूम होती है। और बड़ा रस। कौन मरता है? तुम्हारी बड़ी कृपा। अगर कभी फिर मरने लगूं, यही इलाज तुम फिर बताना।
जिंदगी ऐसी है। यहां विपरीत से अनुभव होते हैं। यहां दुख भी दिशा देता है। यहां नर्क भी स्वर्ग की तरफ तीर बताता है।
"जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते हैं, युवावस्था में धन नहीं कमाते, वृद्धावस्था में मछलियों से खाली तालाब के किनारे बैठे ब.ूढे क्रौंच पक्षी के समान चिंता को प्राप्त होते हैं।"
उनका वार्द्धक्य धूप में पकाए गए बाल सिद्ध होते हैं, जिन्होंने बचपन में ब्रह्मचर्य न जाना, और जवानी में जिन्होंने राग-रंग न जाना। जिन्होंने जवानी का ज्वर न जाना, बचपन की शांति न जानी, उनका बुढ़ापा कोरा, खाली होता है। उनके पास कोई संपदा नहीं। वे ऐसे तालाब के किनारे बैठे हैं, बुद्ध कहते हैं, जिसमें मछलियां नहीं; बंसी लटकाए हैं।
"जो बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते, युवावस्था में धन नहीं कमाते, वे वृद्धावस्था में धनुष से छोड़े गए बाण की भांति अपनी पुरानी बातों को ही कह-कहकर चिंतित पड़े रहते हैं।"
उनके पास फिर कुछ करने को नहीं रहता, सोचने को भी नहीं रहता। वे पुराने अतीत को ही जुगाली करते हैं। बूढ़े अक्सर तुम्हें जुगाली करते मिलेंगे। जब किसी बूढ़े को तुम जुगाली करते देखो, तो जान लेना, बूढ़े क्रौंच पक्षी की भांति। ऐसे ही तालाब में बैठा है बंसी लटकाकर जहां मछलियां नहीं हैं। जब किसी बूढ़े को तुम जुगाली करते देखो, जब वह कहे कि मालूम है, मैं डिप्टी कलेक्टर था, तब तुम समझ जाना। कि पता है, हमने जमाना देखा है। कि अब वे दिन न रहे। सभी को ऐसा लगता है। सभी को ऐसा लगता है कि--
अपने युग में सबको अनुपम ज्ञात हुई अपनी हाला
अपने युग में सबको अनुपम ज्ञात हुआ अपना प्याला
फिर भी वृद्धों से जब पूछा, एक यही उत्तर पाया--
अब न रहे वे पीने वाले अब न रही वह मधुशाला
सभी को ऐसा लगता है कि वे जो उन्होंने पीए थे दिन!

लेकिन जो आदमी पीछे लौट-लौटकर देखता है, वह इतना ही बता रहा है कि उसके हाथ खाली हैं। क्योंकि जिस व्यक्ति ने ठीक से जीवन को जीया है, बुढ़ापे में वह वर्तमान में जीने लगता है। सारे जीवन का शिक्षण--बचपन का ब्रह्मचर्य, फिर बाद की गृहस्थावस्था, बाहर-भीतर दोनों उसने जान लिए। अब जानने को कुछ भी न बचा। व्यर्थ को उसने व्यर्थ की तरह जान लिया। सार्थक को सार्थक की तरह जान लिया। तो बूढ़े में एक गरिमा प्रगट होती है।
रवींद्रनाथ ने कहा है कि जैसा सौंदर्य बुढ़ापे का है, वैसा किसी और अवस्था का नहीं। सच है यह बात। बूढ़े के सफेद बाल ऐसे ही हैं जैसे हिम-शिखर। हिमालय के शिखर पर सफेद बर्फ। जवानी सुंदर है, लेकिन बड़ी उत्तेजित है।
बचपन सुंदर है, पर बड़ा अबोध है। बुढ़ापा सुंदर है--न तो अबोध, न उत्तेजित।
लेकिन बूढ़े कम ही सुंदर दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि बचपन ही चूक गया, आधार ही चूक गया। जवानी भी व्यर्थ गयी, बचपन भी व्यर्थ गया, सब ऐसे ही गया, तो बुढ़ापा खाली रह जाता है।
वृद्धावस्था बड़ी संपदा है। इसीलिए तो हमने इस देश में वृद्धों को बड़ा आदर दिया था। हमने जाने ऐसे वृद्ध, जो समृद्ध थे। हमने उनके पैर छुए।
यह बात इतनी गहरी हो गयी थी कि फिर हम तो बूढ़ों को सिर्फ बूढ़े होने की वजह से आदर देने लगे।
सारी दुनिया में--खासकर पश्चिम में--बूढ़ों का कोई समादर नहीं है। हो
भी नहीं सकता। क्योंकि पश्चिम का बूढ़ा बिल्कुल थोथा है। क्रौंच पक्षी की भांति। बैठे हैं बंसी लटकाए। मछलियां वगैरह हैं ही नहीं। तालाब भी न हो, हो सकता है वे टब में बैठे हों, और वहीं... ।
अंग्रेजी में शब्द है, डर्टी ओल्ड मैन, वह बिल्कुल ठीक है। जिंदगी ऐसे
ही गयी। अब वह गंदगी... जो जवानी में ठीक था, वही बुढ़ापे में गंदगी हो जाती है। जवानी में उचित था कि प्रेम का सोचा होता, गीत गाए होते, नाचे होते, मधुशाला की तरफ गए होते, स्त्री-पुरुष में रंग-रस लिया होता, वह जरूरी था, वह उचित था। वह तो चूक गया, वह भी चूक गया। उचित था कि बचपन में ब्रह्मचर्य जाना होता। वह प्रगाढ़ शांति जानी होती अपने भीतर होने की, जो बीज जानता है। ऐसा ब्रह्मचर्य जाना होता, जब अंकुर भी नहीं फूटा। फिर जवानी में फूल जाने होते। तो फिर पतझड़ भी बड़ा सुंदर हो जाता है।
पतझड़ की शांति! बसंत उसका मुकाबला नहीं कर सकता। पतझड़ में उड़ते सूखे पत्तों का संगीत! नहीं, बसंत के कोई पक्षी उसका मुकाबला नहीं कर सकते। मगर हो, तब!
साधारणतः तो हम बूढ़ों को जिस ढंग से देखते हैं, ऐसा लगता है--
यह हसरत रह गयी, किस-किस मजे से जिंदगी करते
यह हसरत रह गयी, किस-किस मजे से जिंदगी करते
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बागवां अपना
बस सोचते हैं, कैसा-कैसा मजा न करते। किया कभी नहीं। अब सपने देखते हैं। अब शक्ति खो गयी। अब सिर्फ सपने में ही सोच सकते हैं।
हुई मुद्दत कि गालिब मर गया, पर याद आता है
वह हर इक बात पर कहना कि यूं होता तो क्या होता
सभी बूढ़े यही कर रहे हैं--यूं होता तो क्या होता! चूक गए, चली हुई कारतूस हैं। खाली कारतूस, चल चुकी। अब रो रहे हैं--यूं होता तो क्या होता! इस तरह चलना था, इस तरह चोट करनी थी।
बुद्ध कहते हैं--समस्त बुद्धपुरुष यही कहते हैं--कि अगर ठीक निशाने पर पहुंचना हो तो बचपन से ही यात्रा ठीक दिशा में चल पड़नी चाहिए। यहां एक-एक कदम सुनियोजित होना चाहिए।
बचपन ब्रह्मचर्य का, स्वयं को जानने का। फिर जवानी घर बसाने की, गृहकारक को पहचानने की, तृष्णा में फैलने की--मगर भूलने की नहीं। तृष्णा में दूर तक जाने की, मगर अपने भीतर से जड़ें न उखड़ जाएं; केंद्रित रहते हुए दूर तक परिधि को फैलाने की, महत्वाकांक्षा को दूर तक दौड़ाने की। उड़ना दूर तक, जैसे कबूतर उड़ जाते हैं; लेकिन लौट-लौट आते हैं, अपने घर पर वापस आ जाते हैं। फैलाना दूर तक अपना जाल, क्योंकि वह भी जरूरी है, अन्यथा पीछे पछताओगे जब शक्ति न रहेगी। जब शक्ति है तब फैला लेना, ताकि फैलाने से भी

छुटकारा हो जाए। ताकि तुम जान लो--सब व्यर्थ है। जवानी व्यर्थ को जानने का अवसर है।
फिर वानप्रस्थ। जब तुम व्यर्थ को जानने लगो, तो फैलाए जाल को समेटने लगना, जैसे मछुआ जाल को समेटता है, या दुकानदार अपनी दुकान को समेटता है-- सांझ हो गयी, बाजार उजड़ने लगा, लोग जाने लगे। वानप्रस्थ है समेटना। जो फैलाया था जवानी में, उसे वानप्रस्थ में समेट लेना।

फिर है संन्यास। संन्यास है घर वापस लौट आना। फिर उसी जगह, जहां बचपन में थे। वह पुनर्जन्म है! इसी को जीसस ने कहा है, केवल वे ही जो बच्चों की भांति हैं, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। लेकिन ईसाइयों के पास इसका पूरा सूत्र नहीं है। जीसस ने इस देश से ही सीखा होगा। बुद्ध का वचन ही कहीं उनके कान में पड़ा होगा। फिर ब्रह्मचर्य, संन्यास। ब्रह्मचर्य से शुरुआत, ब्रह्मचर्य पर अंत। वर्तुल पूरा हुआ। यात्रा संपूर्ण हुई। लेकिन एक-एक कदम का अपना-अपना अर्थ है। एक भी कदम व्यर्थ नहीं है। यह दूसरी बात है कि अगर कोई बहुत मेधावान व्यक्ति हो, तो इन कदमों को जल्दी उठा लेगा। कोई जरूरी नहीं कि पच्चीस-पच्चीस साल के ही हों। यह तो औसत बात है।
अगर मेधावान व्यक्ति हो तो तैंतीस साल में सब कदम उठा लिए-- शंकराचार्य ने नौ वर्ष में संन्यास ले लिया। जहां पचहत्तर साल में घटना घटती, वह नौ वर्ष में घट गयी। मानसिक-उम्र बड़ी गहरी है। प्रज्ञा बड़ी प्रखर है।
बुद्ध जवान थे तब संन्यस्त हो गए। आंखें बड़ी पैनी रही होंगी। जो हमें देखने में कई सदियां लग जाती हैं, सैकड़ों जन्म लग जाते हैं, या कई वर्ष लग जाते हैं, वह बुद्ध को जल्दी ही दिखायी पड़ गया। तुमने भी देखा है मरते लोगों को। रोज मरघट कोई जाता है। लेकिन बुद्ध ने एक बार देखा, बात खतम हो गयी। कहते हैं, बस एक बार ही देखा। मुर्दे को देखा, बात खतम हो गयी। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी मर जाऊंगा? पाया उत्तर कि कोई भी बच नहीं सकता, मरना सभी को पड़ेगा। बुद्ध ने कहा, रथ घर वापस लौटा लो, बात खतम हो गयी। जहां मरना है, वहां जीने की आकांक्षा व्यर्थ है। तो मैं उसको खोजूं जो मरने के बाद मिलेगा, उसको अभी खोज लूं, क्योंकि समय क्यों गंवाना है! जब मौत आनी ही है, आ गयी। बड़ी गहरी आंख रही होगी। बड़ी प्रज्ञा रही होगी।
तो बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं तुमसे कि जब पचहत्तर साल के हो जाओ, तभी संन्यास लेना। बुद्ध यह कह रहे हैं, पचहत्तर साल के हो जाओ तब तो ले ही लेना। बुद्ध तो यह कह रहे हैं कि जब तुम्हारे पास आंख आ जाए, तब ले लेना। जिसके पास तीव्र प्रतिभा है, वह थोड़े ही अनुभवों से सीख जाता है। एक संभोग से सीख जाता है कि संभोग व्यर्थ है। एक पद पर पहुंचकर जान जाता है कि पद व्यर्थ है। लाख रुपए कमा लिए, समझ लिया, हो गया खतम। हजार रुपए कमाकर भी समझ लेता है, खतम है। अगर प्रज्ञा बहुत प्रखर हो, एक पैसा भी हाथ में रखकर समझ लेता है, मिट्टी। बात खतम हो गयी।
प्रज्ञा की प्रखरता पर निर्भर होता है। नहीं तो दस करोड़ भी इकट्ठे कर
लो, क्या फर्क क्या पड़ता है? बचकाना मन कहे चला जाता है, थोड़ा और, क्या पता दस करोड़ और एक रुपए पर सुख मिलता हो। क्या पता एक कदम और, थोड़े और चलो, अभी तो जवान हो। अभी तो शक्ति पास है, थोड़े और दौड़ लो, फिर तो मरना ही है। इतनी जल्दी क्या छोड़ना? तृष्णा दौड़ाए लिए चली जाती है। और इस जगत में जहां तृष्णा दौड़ाती है, तो वहां दूसरे से तो परिचय मुश्किल ही है, अपने से ही परिचय नहीं हो पाता।
मेरे सिरहाने जलता है जो एक दीप
कल हंसकर मैंने था यह प्रश्न किया
क्या बतला सकते हो तुम ओ मेरे साथी!
कब मेरी आंखों ने तुमको स्नेह दिया?
वह नीचे नजरें करके सकुचाकर यों बोला मैंने देखी है बुझी सुबह और जली शाम शायद तुमको तो पहली बार निहारा है

इसलिए नहीं मालूम तुम्हारा नाम-धाम। ऐसे ही मैंने पूछा पथ के पत्थर से
जिस पथ में वर्षों से चलने का मैं अभ्यासी वह बोला तुमसे कितने आए, चले गए
क्या मुझे पता तुम कौन देश के हो वासी?
जब एक लहर से कहा कि क्षणभर रुक जाओ
सुन लो मेरे जीवन की करुण-कहानी तुम
वह तुनुक गयी, बोली फुरसत है मुझे कहां
जो देखूं मैं गुमसुमी निगाहें यह पुरनम?
यहां कौन तुम्हें पहचान सकता है? तुम्हीं अपने को नहीं पहचानते। जिसने वस्तुएं इकट्ठी करके सोचा कि कुछ जान लेगा, उसने जानने के क्षण व्यर्थ ही गंवाए। जिसने दूसरों से दोस्ती बांधकर सोचा कि दोस्ती बनी, उसने संग-साथ के भ्रम में असली का साथ न किया, जिसका साथ हो सकता था। तुम ही हो अपने साथी। तुम्हारे भीतर का साक्षीभाव ही है तुम्हारा एकमात्र संगी। उसे ही जगाओ।
जीवन के दो ढंग हैं--तृष्णा का और साक्षी का। या तो सोए-सोए जीयो, तब तृष्णा तुम्हारी गरदन को पकड़े रहती है। या जागो, होश सम्हालो, आंखें खोलो, प्रज्ञा को निखारो, साक्षी बनो--जो भी करो देखते हुए करो, श्वास भी चले तो देखते हुए चले, हाथ भी हिले तो देखते हुए हिले। साक्षी को जिसने पकड़ा, उसकी तृष्णा गयी। जो साक्षी को पा लेता है, वही बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है। तृष्णा में बहुत दिन जीए--बहुत जन्म जीए--थोड़ा साक्षी की तरफ चेष्टा करो, प्रयास करो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
पचपनवां प्रवचन

मुझे शास्त्र नहीं, अनुभव बनाओ

पहला प्रश्नः ओशो, अर्थ तो कमाया, पर शुरुआत ही गलत हो गयी। कोई छह-सात साल का ही था जब कामवासना सक्रिय हो गयी। और दस से छत्तीस की उम्र तक इस कदर वीर्य स्खलित किया कि कोई हिसाब नहीं! और यह भी बता दूं कि केवल सात महीने ही मां के गर्भ में रहकर मैं बाहर आ गया था। आपका स्वभाव कल से बेचैन है। जब वह वीर्य न बचा सका, तब प्रज्ञा कैसे पैदा हो? तभी तो मूढ़ हूं और बिना जाने जानने का दावा करता हूं। संन्यास लेकर भी पलायन ही कर रहा हूं। क्रोध और अहंकार से बुरी तरह ग्रसित हूं। बस चमड़ी-मांस ही बढ़ा है। स्वभाव खुद कर-करके हार गया, प्रभु! अब आप ही कुछ करें।

पहली बात, जो बीता सो बीता। जो हुआ उसे न तो अनहुआ किया जा सकता है, न करने की चेष्टा में व्यर्थ समय गंवाने की कोई जरूरत है। अतीत के लिए रोओ मत, भविष्य के लिए प्रार्थना करो।
अतीत के लिए पछताओ मत, क्योंकि उस पछतावे में भी गंवाया गया समय फिर लौटकर नहीं आएगा। उतना समय तो गया। कुछ किया नहीं जा सकता। जो गया, गया। अब पछताओ मत। क्योंकि पछतावे में गया समय भी व्यर्थ जाएगा। व्यर्थ के कामों में समय जाता है, फिर व्यर्थ के कामों के पछतावे में समय जाता है। मूल तो गया ही गया, अब तुम व्यर्थ ब्याज भी गंवा रहे हो।
तो पहली तो बात ख्याल रखो, अतीत के लिए पछतावा नासमझी है। अतीत का अर्थ ही यह है कि जो अब हमारे हाथ के बाहर हुआ--तीर छूट चुका। अब उसे वापस तुम तरकस में न लौटा सकोगे। लेकिन चिंता का कोई कारण नहीं। यह चिंता भी उसी मन का जाल है जिसने अतीत को गंवाया। अब वही मन चिंतातुर होकर वर्तमान को गंवाएगा। तब किसी दिन भविष्य में, जब भविष्य वर्तमान बनेगा, तुम पछतावे के लिए पछताओगे। ऐसा चक्र है--दुष्ट-चक्र--जिसमें आदमी फंसता चला जाता है। बहुत ठीक से सभी के समझ लेने की बात है, किसी एक के नहीं। क्योंकि प्रश्न होंगे अलग-अलग, लेकिन इस संबंध में सभी का प्रश्न एक है। अतीत के लिए सभी पछताते हैं। कोई कामवासना में गंवाया है, इसलिए पछताता है। किसी ने क्रोध में गंवाया है, इसलिए पछताता है। किसी ने लोभ में गंवाया है, इसलिए पछताता है। अतीत के लिए सभी पछताते हैं। और इससे बड़ी कोई म.ूढता नहीं है। कुछ किया ही नहीं जा सकता। जब कुछ किया ही नहीं जा सकता, छोड़ो बात। कल नहीं जाग पाए, सोए, फिक्र छोड़ो; अब तो बीते कल में जाग न सकोगे। आज जागो। आज ही प्रारंभ है।
देर कितनी ही हो गयी हो, इतनी देर कभी नहीं हो जाती कि जीवन रूपांतरित
न हो जाए। अगर इतनी समझ भी शेष है कि अतीत मैंने व्यर्थ गंवाया, तो काफी समझ शेष है। एक किरण भी शेष है, तो सूरज को खोजा जा सकता है। एक बीज भी शेष है, तो पूरा उपवन निर्मित किया जा सकता है।
और इतना कोई कभी नहीं गंवाता कि सभी कुछ गंवा दे। गंवा ही नहीं सकता। क्योंकि संपदा हमारा अंतर-स्वभाव है। हम कितना ही गंवाएं, गंवाने से हम मुश्किलें खड़ी कर देते हैं स्वयं तक आने में, लेकिन स्वयं नष्ट नहीं हो जाता। समय हम कितना ही व्यर्थ करें, इससे स्वयं व्यर्थ नहीं हो जाता। तुम आज भी लौट सकते हो। तुम आज भी अंतर्यात्रा पर आ सकते हो। थोड़ी अड़चन होगी। कल जो मैंने कहा, वह तुम्हें निराश करने को नहीं कहा है, वह तुम्हें सजग होने को कहा है। यही मनुष्य का उलझाव है, जो सुलझाव के लिए कहा जाता है, उससे भी उलझाव खड़ा हो जाता है। कल जो मैंने कहा, वह तुम्हें उदास होने को नहीं कहा है। इसलिए नहीं कहा कि तुम अतीत के लिए पछताओ। इसलिए कहा है कि ऐसे भी देर बहुत हो गयी है, पर अब और देर मत करो। जब जागे, तभी सुबह।
यदि बचपन ब्रह्मचर्य में बीता होता, तो अंतर्यात्रा सुगम होती, रास्ते पर कंकड़-पत्थर न होते, फूल बिछे होते। रास्ता अभी भी है। फूल नहीं हैं। थोड़ा कंटकाकीर्ण होगा, थोड़े कंकड़-पत्थर होंगे, ऊबड़-खाबड़ होगा, बस इतना ही फर्क पड़ रहा है। जहां सुगमता से यात्रा हो सकती थी, वहां थोड़ी

दुर्गम होगी। जहां क्षण में पहुंचा जा सकता था, वहां थोड़ा ज्यादा समय लगेगा। थोड़ा तप होगा, थोड़ी कठिनाई होगी। हांपोगे थोड़े, पसीना बहेगा थोड़ा। बहुत नीचे उतर गए, चढ़ना होगा। ब्रह्मचर्य होता, उतरे ही न होते, चोटी पर ही होते। चलना समतल भूमि में होता। खाई-खड्ड में उतर गए, चढ़ना होगा। बस इतनी ही बात है। पछताओ मत। इतनी ही शक्ति को तपश्चर्या में लगाओ, चढ़ने में लगाओ।
और चढ़ने को दुख और उदासी से मत करो। सौभाग्य समझो कि अभी भी जाग गए। बहुत हैं जो अभी भी नहीं जागे। तुम छोटे ही गड्ढे में उतरकर जाग गए, बहुत हैं जो गहरी खाइयों में उतर गए हैं और उतरे ही चले जाते हैं।
सदा जीवन का विधायक रूप देखो, ताकि तुम उदास न हो जाओ। क्योंकि जो उदास है, उसके पैरों में पत्थर बंध जाते हैं। क्योंकि जो निराश है, वह थककर बैठ जाता है। और मैं कई लोगों को जानता हूं जो मंजिल के सामने ही थककर बैठ गए हैं। उठ जाएं तो मंजिल सामने है।
अक्सर ऐसा होता है। लंबी यात्रा तो लोग पार कर लेते हैं, फिर जब मंजिल करीब आ जाती है, तब थककर बैठ जाते हैं। दो कदम चलना मुश्किल हो जाता है। लंबी यात्रा तो आशा में कर लेते हैं पूरी, जब मंजिल सामने आती है, तब अपनी थकान का अनुभव होता है, बैठ जाते हैं। कहते हैं, अब तो पास है, अब तो पहुंच जाएंगे। बैठकर सो भी सकते हो! और मंजिल कुछ ऐसी है--गत्यात्मक है--तुम बैठ जाओगे, मंजिल बैठी न रहेगी। मंजिल भाग रही है। जब आंख खोलोगे, शायद पाओ कि मंजिल अब सामने नहीं है। किसी क्षण में थी। किसी भाव-दशा में सामने थी। किसी दूसरी भाव-दशा में सामने न होगी।
मंजिल कोई थिर चीज नहीं है, कोई वस्तु नहीं है, भावोन्मेष है। तो किसी प्रेम के क्षण में, प्रार्थना के क्षण में पास होती है। जब प्रेम खो जाता है, प्रार्थना खो जाती है, दूर हो जाती है। दूरी और पास होना तुम्हारे मन की अवस्थाओं पर निर्भर है। जब मन बिल्कुल नहीं होता, तो तुम मंजिल के भीतर होते हो, तुम भवन के भीतर होते हो, मंदिर के भीतर होते हो।
जो गया, गया। चिंता का कोई भी कारण नहीं। सभी ने गंवाया है, तुमने अकेले थोड़े ही गंवाया है। सभी भटके हैं, तुम अकेले थोड़े ही भटके हो। शायद भटकाव भी जरूरी था। शायद वही भटकाव तुम्हें मेरे पास ले आया है। इसे मैं कहता हूं, जीवन को विधायक ढंग से देखने की दृष्टि।
कुछ दिन हुए एक शराबी आया। उसने कहा कि मैं बरबाद हो गया शराब पी- पीकर। अब तो छोड़ भी नहीं सकता हूं। ऐसी गहन आदत बन गयी। मन की ही नहीं, शरीर की भी आदत बन गयी है। अब तो छोड़ता हूं तो शरीर में भी बेचैनी अनुभव होती है। अब तो मेरे चिकित्सक भी कहते हैं कि छोड़ना आसान न होगा। शरीर की जरूरत हो गयी है। मैंने तो जीवन यूं ही गंवाया! वह रोने लगा। उसने सिर पीट लिया। मैंने कहा, इसे भी थोड़ा गौर से देख, बहुत हैं जो शराबी नहीं हैं और मेरे पास नहीं आए। शायद तेरी शराब ही तुझे मेरे पास ले आयी। शराब को भी धन्यवाद दे। जीवन को शुभ की दिशा से देख। कभी-कभी मंदिर का रास्ता मधुशाला से होकर भी जाता है। कभी-कभी मंदिर के पड़ोस में जो रहता है, वह चूक जाता है; और मधुशाला से आने वाला पहुंच जाता है। उठने के लिए गिरना जैसे जरूरी है, पाने के लिए खोना जरूरी है। नहीं तो पाने का पता ही नहीं चलता।
इसीलिए तो हम बचपन को खोते। अब दुबारा जब हम बचपन को पाएंगे होशपूर्वक, खोजेंगे, निर्मित करेंगे--तब हम समझेंगे उस सौभाग्य को। सभी बच्चे रहे हैं। लेकिन किसने जाना उस सौभाग्य को! यूं ही गंवा दिया। और जीसस कहते हैं, जो बच्चों की भांति होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य के अधिकारी। और हम सभी बच्चे थे। और जब हम बच्चे थे, तब हमें कुछ भी पता न चला कि हम प्रभु के राज्य के अधिकारी! राज्य के भीतर थे, पता कैसे चलता?
मछली को पता चलता है सरोवर का, जब मछुआ उसे जाल में खींचकर रेत पर पटक लेता है। तब फड़फड़ाती है। तब रोती-चिल्लाती है। तब वह कहती है, हाय, यह जाना ही न अब तक कि मैं सरोवर में थी! सरोवर को जानना हो तो रेत पर तड़फना जरूरी है। ऐसा जीवन का गणित है।
तो घबड़ाओ मत। जो हुआ, हुआ। तड़फ लिए रेत पर काफी। इतना जीवन भी अगर शेष
है कि तड़फन अनुभव होती है, तो सरोवर दूर नहीं है। कहीं पास ही है। रेत से

सरोवर कितनी दूर हो सकता है! रेत जल के पास ही पास है। जल के किनारे पर ही रेत है।
अगर तड़फ रहे हो, तड़फन को छलांग बनाओ। उछलो। कई बार तो ऐसा होता है कि आकस्मिक रूप से उछलती मछली रेत में, पानी में वापस पहुंच जाती है। रास्ता भी पता नहीं होता। कहां जाए? तड़फ इतनी होती है कि आंखें अंधी हो जाती हैं, बुद्धि धुंधली हो जाती है, लेकिन तड़फ ही ले जाती है। तड़फ ही ले गयी है। भक्तों से पूछो! वे कहते हैं, जो तड़फा, उसने पाया। जो रोया, उसे मिला। दिल भरकर रो लो। आंसू धो देंगे। जीवन को लेकिन विधायक ढंग से देखो।
चल रहा है पर पहुंचना लक्ष्य पर इसका अनिश्चित
कर्म कर भी कर्मफल से यदि रहा यह पांथ वंचित
विश्व तो उस पर हंसेगा खूब भूला, खूब भटका
किंतु गा यह पंक्तियां दो वह करेगा धैर्य संचितः
व्यर्थ जीवन, व्यर्थ जीवन की रटन क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं
यही श्रद्धा है कि परमात्मा तुम्हारी बाट जोहता है। कितने ही दूर चले गए, सत्य तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुम्हीं नहीं खोज रहे हो, परमात्मा भी तुम्हें अंधेरे में खोज रहा है। जीसस ने कहा है, गड़रिया आता है सांझ, सूरज के ढले, अपनी गाड़रों को सम्हालता हुआ, भेड़ों को सम्हालता हुआ। अचानक पाता है, एक खो गयी। सबको छोड़ देता है वहीं, उस एक की तलाश में निकल जाता है। उस अंधेरी रात में सबको छोड़ जाता है असहाय। उस एक की खोज में निकल जाता है, जो भटक गयी। और जब उसे पा लेता है, तो उसे कंधे पर रखकर लौटता है।
ठीक कहा, जानकर कहा, पता है जीसस को जो वे कह रहे हैं।
किंतु गा यह पंक्तियां दो वह करेगा धैर्य संचितः
व्यर्थ जीवन, व्यर्थ जीवन की रटन क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं
जो गया, गया। व्यर्थ था, व्यर्थ सही। पर कोई तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुम्हीं नहीं खोजते, परमात्मा भी खोजता है। अगर तुम्हीं खोजते और वह न खोजता, तो मिलना हो ही नहीं सकता था। मिलना कहीं एकतरफा हुआ है? ताली दो हाथों से बजती है। तुम अकेले ही ताली बजाते होते और परमात्मा का हाथ उत्सुक न होता, ताली बजने वाली नहीं थी। ताली बहुत बार बजी है। उसका हाथ भी आतुर है। उतना ही, जितना तुम्हारा।
पंथ जीवन का चुनौती दे रहा है हर कदम पर
आखिरी मंजिल नहीं होती कहीं भी दृष्टिगोचर
धूल से लद, स्वेद से सिंच हो गयी है देह भारी
कौन-सा विश्वास मुझको खींचता जाता निरंतर
पंथ क्या, पथ की थकन क्या, स्वेदकण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं
मत देखो धूल जो राह पर इकट्ठी हो गयी। मत गिनो शूल जो राह पर मिले। नजरें उठाओ--
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं
भक्त की भाषा बोलो, तो भगवान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। ज्ञानी
की भाषा बोलो, सत्य आतुर है अनावृत्त होने को। जैसे दुल्हन आतुर है--आए दूल्हा, उठाए घूंघट। सत्य आतुर है। घबड़ाओ मत। भूलों-चूकों का हिसाब मत रखो। परमात्मा कृपण नहीं, कंजूस नहीं। पंडितों ने, पुरोहितों ने तुमसे कितना ही कहा हो कि वह तुम्हारे पापों का हिसाब रखेगा, मैं तुमसे कहता हूं, वह पापों का हिसाब रख ही नहीं सकता। परमात्मा और पापों का हिसाब रखे, यह बात ही कुछ बड़ी दुकानदारी की हो जाती है। तुम कितने ही भटको-भूलो, तुम कितने ही अंधकार में निकल जाओ, उसका हाथ तुम्हें खोज ही रहा है। इसलिए विधायक-दृष्टि को पकड़ो।
पहली बात, जो हुआ हुआ। समझो कि देखा था एक दुख-स्वप्न। इससे ज्यादा है
भी नहीं तुम्हारी जिंदगी। ब्रह्मचर्य भी एक मधुर-स्वप्न है। ब्रह्मचर्य भी एक मधुर-स्वप्न है! निश्चित ही रात अगर मधुर-स्वप्न देखे, तो सुबह तुम थोड़े ज्यादा मुस्कुराते उठते हो। बस इतना ही फर्क है। रात दुख-स्वप्न

देखे, छाती पर राक्षसों को सवार देखा, पहाड़ से गिराए गए, चट्टानों पर पीटे गए, छाती पर हिमालय रख दिया किसी ने, सुबह उठते हो थोड़े परेशान से।
लेकिन परेशानी कितनी देर टिकती है? आखिर यह भी सपना है। दुख-स्वप्न, नाइटमेयर, पर है तो सपना ही। और मधुर सपनों से मिली हुई ताजगी, गंध, वह भी कितनी देर टिकती है? घड़ी में दोनों खो जाते हैं। जागो। ब्रह्मचर्य, व्यभिचार दोनों निद्रा में हुए हैं। हो सकता कि मधुर सपने देख लेते--जब सपने देखने ही थे, मधुर देख लेते, अच्छा! न देख पाए, छोड़ो। सपने सपने हैं। अब तुम देखना, मन का उलझाव क्या है! जब मैं कह रहा हूं सपने सपने हैं,
तब जिन्हें व्यभिचार करना है, वे कहेंगे, अरे! पहले न सोचा, चलो अभी भी क्या देर हुई, अगर सपने ही हैं दोनों, तो फिर व्यभिचार ही चुन लो। फिर ब्रह्मचर्य की पंचायत क्या! कल मैंने तुमसे कहा था, अगर ब्रह्मचर्य हो, सत्य के पास आना सुगम हो जाएगा। तो तुमने सोचा, बड़े पाप किए, व्यभिचार किया, बड़े भोग में डूबे रहे; तो तुम थके-मांदे, उदास, धूल-सने, परेशान, व्यथित आ गए। कल मैंने कहा था, यदि बच्चे ब्रह्मचर्य में पल सकें, तो उन्हें संसार का अनुभव प्रगाढ़ होगा। ब्रह्मचर्य की पृष्ठभूमि में जीवन की सारी रेखाएं साफ उभर आएंगी।
तुम्हें उदास करने को न कहा था। अब तुम तो बच्चे हो नहीं सकते--इस जन्म में तो नहीं। अगले जन्म में होओगे, अगर न जागे तो होना ही पड़ेगा। ख्याल रखना! खैर, अगले जन्म में तुम शायद भूल ही जाओगे, क्योंकि होश से मरोगे इसकी संभावना बहुत कम है। तो तुम्हारे बच्चे होंगे, कम से कम उनका ख्याल रखना।
लेकिन वह तो तुमने न सोचा, तुम यह समझकर आ गए कि अब तो बात खतम हो गयी।
अब तो प्रज्ञा का जन्म कैसे होगा? यह मैंने नहीं कहा था कि प्रज्ञा का जन्म हो ही नहीं सकता। सुगम होता है। अब थोड़ा दुर्गम होगा। पर अंततः फर्क तो दुख-स्वप्न और मधुर-स्वप्न का है। रात सुख में बीत जाए, तो सुबह तुम जरा और ढंग से उठते हो। एक प्रसाद होता है उठने में। ताजे होते हो, स्वस्थ-मन होते हो। स्वच्छ-गात होते हो। स्नान किए-किए, ताजे-ताजे, नहाए-नहाए होते हो। मधुर-स्वप्न की गूंज, मधुर-स्वप्न की शहनाई भीतर बजती रहती है। तुम्हारे पैरों में थोड़े घूंघर बंधे होते हैं, थोड़ा संगीत होता है। दिन के लिए यह सहारा होगा।
फिर तुम दुख-स्वप्न से उठते हो। तुम सुबह ही क्रोध में उठे, नाराज उठे, परेशान उठे। किसी तरह उठे। बोझ-रूप दिन को तुम ढोओगे। लेकिन ये बातें इसीलिए होती हैं कि तुम बेहोश हो। अगर तुम होश में उठो सुबह, तो दुख-स्वप्न और मधुर-स्वप्न दोनों बराबर हैं। तुम कहोगे अरे, सब सपने थे! तुम झिड़का दोगे उन सपनों को अपने से। तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे। जो गया, गया। "अर्थ तो कमाया पर शुरुआत ही गलत हो गयी। कोई छह-सात साल का था तब कामवासना सक्रिय हो गयी। और यह भी बता दूं कि केवल सात महीने मां के गर्भ में रहकर बाहर आ गया था।"
तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि मां के गर्भ से नौ महीने के पहले जो बच्चे आ जाते हैं, वैज्ञानिकों के पास उसका अभी कोई ठीक-ठीक उत्तर नहीं है, लेकिन जिन्होंने जन्म-मरण की गहराइयों में प्रवेश किया है, उन योगियों के पास उत्तर है। उनका उत्तर तुम ख्याल रखो, शायद आगे काम आ जाए। पीछे तो काम आने का अब कोई उपाय न रहा, अब तो आ ही चुके, सात महीने में आए कि नौ महीने में आए, लेकिन आगे काम आ जाए।
मरते वक्त जो व्यक्ति मरना नहीं चाहता, लड़ता है मौत से, जबर्दस्ती करता है बचने की, वह मां के गर्भ से जल्दी बाहर आ जाता है। वह जो मरने से बचने की आकांक्षा है, वह जो जीवन की पकड़ है, वही उसे मां के गर्भ से जल्दी बाहर ले आती है। अगर मरते वक्त कोई शांत-मन, स्वीकार-भाव से मरे, मौत को अंगीकार करके मरे, अगर खूब अंगीकार करके मरे, तो वह ठीक समय पर पैदा होता है। कोई जल्दबाजी नहीं। उसकी मृत्यु भी शांत, समय पर होती, उसका जन्म भी शांत और समय पर होता है।
जो लोग जबर्दस्ती करते हुए मरते हैं, वे जन्म भी जबर्दस्ती ले लेते हैं। और इसीलिए दूसरी घटना भी घटी होगी। छह-सात साल की उम्र में कामवासना

से भर जाने का अर्थ इतना ही है कि पिछले जन्म में मरते समय तक कामवासना ने पीछा किया होगा। बहुत बूढ़े हैं जो मरते समय भी, मरने की आखिरी घड़ी में भी, कामवासना से ही आतुर रहते हैं। उस समय भी उनको काम ही घेरे रहता है। राम-नाम सत्य है, यह तो दूसरे कहते हैं, जब वे मर जाते हैं। वे खुद नहीं कह पाते। उनके लिए तो काम-नाम सत्य है। वही भीतर धुन गूंजती रहती है। तो चाहते हैं कि दो दिन और मिल जाते जीने के, तो और भोग लेते। थोड़े पाप और कर लेते।
एक आदमी मर रहा था। धर्मगुरु को बुलाया गया, धर्मगुरु ने कहा, अब तो पछता लो! अब तो यह आखिरी सांस का वक्त आ गया। उसने कहा, पछता ही रहा हूं और क्या कर रहा हूं? धर्मगुरु ने कहा, पछता रहे हो, तुम और पछता रहे हो! क्योंकि वह जाहिर आदमी था, कभी मंदिर न गया, कभी शास्त्र न छुआ, कभी सत्संग में तो बैठा नहीं। पछता रहा है! मरते दम तक भोग में ही लिप्त था। उसने कहा, तुम और पछता रहे हो! उसने कहा, हां, पछता रहा हूं। लेकिन तुम गलत मत समझना, मैं उन पापों के लिए पछता रहा हूं जो कर न पाया। कर ही लेता! अब पछता रहा हूं, आखिरी घड़ी आ गयी, समय न बचा। और तुम जैसे मूढ़ों की बातों में पड़कर मैं कई पाप न कर पाया। सोच-सोचकर रह गया--करूं, न करूं? अब यह मौत आ गयी। अब कौन उत्तर देगा?
लोग पछताते मरते हैं कि कर न पाए। और थोड़ा धन कमा लेते। और किसी स्त्री से प्रेम रचा लेते। और किसी पुरुष को पा लेते। और कोई पद पर पहुंच जाते। बस ऐसा ही गोरखधंधा मन में होता है। राम का नाम उठ ही नहीं पाता। काम ही घेरे रहता है।
तो अगर कामवासना मरते वक्त बुरी तरह घेरे रहे, तो दूसरे जन्म में बड़े जल्दी आ जाएगी। हम अपना जीवन अपने हाथों निर्मित करते हैं। जो हम मांगते हैं, मिल जाता है। यही यहां उपद्रव है। सोच-समझकर मांगना। जो मांगोगे, मिल जाएगा। जो मांगते हो, वह मिल ही जाता है। क्योंकि तुम्हीं बीज बोते हो, फिर तुम्हीं फसल काट लेते हो।
मरते वक्त अगर कामवासना रही, तो अगले जन्म में जल्दी ही कामवासना के बीज पक जाएंगे। अगर मरते वक्त राम की याद रही और काम का कोई भाव न रहा, तो अगले जन्म में ब्रह्मचर्य आसान हो जाएगा। राम के भाव में डूबा जो मरता है, उसने काम के बीज को दग्ध करने के लिए बड़ा उपाय कर लिया। वह देर तक ब्रह्मचर्य में जी सकेगा।
इसी आधार पर तो हम जब कोई मर जाता है तो उसकी अर्थी के आसपास राम-नाम सत्य कहते हैं। इसी आधार पर तो गंगाजल उसके मुंह में डालते हैं। वह खुद तो न कर पाए, वह तो शराब में रहे, गंगाजल जंचा नहीं। वह खुद तो नाम न ले पाए, मरते आदमी के कान में हम गायत्री पढ़ते हैं, मंत्र-जाप करते हैं, नमोकार का उच्चार करते हैं। मरते आदमी के! यह जो जीवन में उन्हें करना था, यह दूसरे कर रहे हैं। यह औपचारिक हो गया।
लेकिन कभी ऐसा था कि यह औपचारिक नहीं भी था। और किन्हीं के जीवन में अभी भी नहीं है। तब इसमें एक संगति है।
एक आदमी जो खुद अपने जीवन में मंत्रोच्चारों में डूबा रहा, जिसने मंत्रों का संगीत अनुभव किया, अब मर रहा है। अब खुद की जिह्वा शिथिल हो गयी है, अब खुद के ओंठ उच्चार नहीं कर पाते, वह किसी और से कहता है, तुम उच्चार करो, मैं तो अपने ही मौसम में मरना चाहता हूं। अब वह किसी और से कहता है कि तुम गाओ, गुनगुनाओ, अब मेरी तो सामर्थ्य गुनगुनाने की न रही, अब मैं तो डूबा जाता हूं, लेकिन डूबते क्षण आखिरी बात जो मेरे कान में पड़े वह मेरा ही संगीत हो, वह मेरा ही प्रभु-स्मरण हो।
जीवनभर गंगा से नाता जोड़े रहा--गंगा यानी पवित्रता, गंगा यानी शुचिता, गंगा यानी जीवन का क्वांरापन--जीवनभर गंगा से साथ जोड़े रहा, मरते वक्त कहता है, अब मैं तो जाता हूं, अब मेरे हाथ तो शिथिल हुए जाते हैं, लेकिन जाते-जाते आखिरी स्वाद मेरे मुंह में, मेरे ओंठों पर गंगा का हो। क्योंकि जो आखिरी स्वाद है, वही पहला स्वाद बन जाएगा। यह गंगा की याददाश्त में ही डूबूं। ताकि जब फिर आंख खुले, फिर नया जन्म हो, फिर जीवन की कली खिले और फूल बने, तो मैं गंगा से भरा ही बाहर आऊं।

तुम इसे छोटा सा प्रयोग करके देखो। रात सोते समय जो तुम्हारा आखिरी विचार हो, उसका ख्याल कर लो। तुम पाओगे, सुबह जागते वक्त वही तुम्हारा पहला विचार होगा। ठीक वही होगा। अगर तुम रात धन की सोचते-सोचते सो गए हो, तो तुम सुबह धन की सोचते-सोचते उठोगे। अगर रात तुम किसी चिंता में दबे-दबे सो गए हो, तो उसी चिंता में सुबह तुम उठोगे। रातभर भी वह चिंता तुम्हारे आसपास सरकती रहेगी, उसकी हवा बहती रहेगी, उसका वातावरण बना रहेगा। तुम्हारे कमरे में चिंता का आवास रहेगा। तुम सोए रहोगे, चिंता तुम्हारे चारों तरफ गिलाफ की तरह लिपटी रहेगी। वह प्रतीक्षा करेगी कि जागो तो मैं हाजिर हूं सेवा के लिए! अभी तुम बेहोश हो गए हो, ठीक है, मैं राह देखूंगी। लगाव है तुम्हारा इतना, जाए भी कैसे? सुबह उठते ही तुम उसे द्वार पर खड़ा पाओगे।
इसे थोड़ा विचार करना, खोजना, प्रयोग करना। ठीक यही जीवन के विराट पर
भी लागू है। मरते वक्त जो आखिरी विचार होगा, वह जन्मते वक्त पहला विचार होगा। इसलिए हर बच्चा एक जैसा पैदा नहीं होता। क्योंकि हर आदमी एक जैसा मरता नहीं। यहां जिंदगी ही अलग-अलग नहीं, मौत भी अलग-अलग है। यहां व्यक्तित्व इतना महत्वपूर्ण है। यहां तुम अपनी छाप मौत पर भी छोड़ जाते हो। जिंदगी पर तो छोड़ते ही हो--तुम्हारे हस्ताक्षर होते हैं जिंदगी पर--पर मौत पर भी छोड़ते हो। मौत जैसी सूक्ष्म चीज भी तुम्हारे हस्ताक्षरों को ले लेती है। हर आदमी अलग ढंग से मरता है।
एक झेन फकीर मर रहा था। उसने अपने शिष्यों से पूछा, सुनो जी, तुमने कभी किसी आदमी को खड़े-खड़े मरते देखा? उनमें से एक ने कहा, देखा तो नहीं, लेकिन सुना है कि कभी एक फकीर खड़े-खड़े मर गया, क्यों क्या बात है? उसने कहा कि अब मैं सोच रहा था किस ढंग से मरना। मरने का वक्त आ गया, अपने ही ढंग से मरना चाहिए, दूसरे के ढंग से क्या मरना! खाट पर लेटे-लेटे सभी मरते हैं। यह भी कोई बात हुई! कुछ अपना हस्ताक्षर हो!
उसने कहा, तुमने फिर कभी किसी को शीर्षासन करते हुए मरते सुना? यह तो सुना भी नहीं, सोचा भी नहीं। शीर्षासन करते हुए मरना!
शीर्षासन करते हुए तो आदमी सो भी नहीं सकता, मरना तो बहुत दूर की बात है। शीर्षासन करते हुए तुम सो नहीं सकते, झपकी नहीं खा सकते, क्योंकि खून इतनी तेजी से दौड़ता है मस्तिष्क में, सोओगे कैसे? इसलिए तो हम तकिया रखते हैं रात में, ताकि खून जरा कम चढ़े सिर में, नींद ठीक से आए। बिना तकिए के नींद नहीं आएगी, क्योंकि सिर थोड़ा नीचा पड़ जाएगा शरीर से, खून ज्यादा दौड़ेगा। तो जब तकिए की जरूरत है, तो शीर्षासन में तो नींद भी नहीं लग सकती। पर उसने कहा कि छोड़ो भी, जब मौत आएगी तो वह यह थोड़े ही देखेगी कि हम शीर्षासन कर रहे हैं! नींद भला न लगे मगर मौत किसी की प्रतीक्षा नहीं करती--चाहे खड़े, चाहे बैठे, वह तो ले ही जाएगी। अब चलो हम भी एक मौका लेकर देख लें। अगर मौत इस तरह न आती हो, तो एक तरकीब मिल गयी आदमी को बचने की। जब आए मौत, खड़े हो गए शीर्षासन लगाकर!
वह शीर्षासन लगाकर खड़ा हो गया। शिष्य भी घबड़ा गए। और कहते हैं, वह खड़ा
हो गया और उनको लगा कि मर भी गया। लेकिन अब उसको शीर्षासन से उतारें कैसे! बड़ा भय लगने लगा। कोई आदमी खाट पर मर जाए, अर्थी पर बांध लो। अब ये शीर्षासन में खड़े हैं, अब इनको अर्थी पर कैसे बांधो!
तो उन्होंने कहा, ठहरो, कुछ भी करना उचित नहीं। पता नहीं, इस ढंग से न कभी कोई आदमी मरा, न कोई रीति-रिवाज है। इसकी बहन पास में ही एक दूसरे आश्रम में है, उसको बुला लाओ। वह इसको जानती है। वह भी, साठ साल उसकी उम्र थी, वह आयी। और उसने कहा कि सुनो, जिंदगीभर भी तुम उपद्रव करते रहे, अब मरकर तो बाज आओ! जैसे आदमी मरते, ऐसे मरो। और उसने एक धक्का दिया। कहते हैं, वह फकीर मुस्कुराया, गिरकर मर गया।
हर आदमी की मौत भी, अगर तुम बहुत गौर से देखो, तो उसमें तुम विशिष्टता पाओगे। कोई रोता-चीखता मरेगा; कोई शांत, मौन मरेगा; कोई गीत गुनगुनाता मरेगा। किसी के पास तुम्हें लगेगा कि नृत्य चल रहा है, एक संगीत बज रहा है, एक ओंकार की ध्वनि हो रही है। किसी का चेहरा तुम पाओगे मरकर कुरूप हो गया और किसी का चेहरा तुम पाओगे, ऐसा सुंदर कभी भी न था। हम जो भी करते हैं वह

वैसा ही पृथक-पृथक होता है, जैसे हमारे अंगूठों के चिह्न पृथक-पृथक होते हैं। सभी कुछ व्यक्तित्व से भरा है।
तो मरते वक्त अगर मरने की बिल्कुल आकांक्षा न थी, और जीवन तुमसे जबर्दस्ती छीना गया और तुम जीवन को पकड़ना चाहते थे, तुम मां के पेट से जल्दी पैदा हो जाओगे। अगर मरते वक्त कामवासना ने मन को पकड़े ही रखा, राम का उच्चार चाहा भी तो भी न हो सका--और ध्यान रखना, कामवासना का उच्चार मृत्यु के क्षण में सौ में निन्यानबे लोगों को पकड़ लेता है। उसका कारण भी है। वह कारण भी तुम ख्याल में ले लो।
मृत्यु और काम एक-दूसरे के विपरीत हैं। जन्म होता है काम से और मृत्यु
से अंत होता है जन्म का। तो जन्म है यानी काम। जिस ऊर्जा को जन्म में कामवासना मुक्त करती है, मृत्यु में वही ऊर्जा सिकुड़ती है और नष्ट होती है। स्वभावतः कामवासना मृत्यु को अपना दुश्मन मानती है।
इसीलिए तो कामी पुरुष बूढ़ा नहीं होना चाहता, सदा जवान रहना चाहता है। कामी स्त्री अपनी उम्र झूठी बताने लगती है।
कल ही मैं एक छोटी सी कहानी पढ़ रहा था। एक युवती अपनी मां से बोली--मां
का जन्मदिन था--क्योंकि वह देख रही है कि मां की उम्र बढ़ती तो नहीं, उलटी घटती जाती है। पिछले साल अगर पैंतीसवां जन्मदिन मनाया था, तो इस बार वह चौंतीसवां मना रही है। तो उसने कहा कि मां और सब तो ठीक है, मुझमें और तुममें कम से कम नौ महीने का फर्क रखना। नहीं तो बड़ी झंझट होगी। लोग क्या कहेंगे?
स्त्रियों की उम्र ठहर जाती है कहीं न कहीं, फिर वे दो-दो साल, तीन-तीन साल में एक-एक साल बढ़ती हैं। बड़ी झिझककर बढ़ती हैं। बड़ी मुश्किल से बढ़ती हैं। बुढ़ापे का भय है। पश्चिम में स्त्रियां बच्चों को दूध नहीं पिला रही हैं, क्योंकि दूध पिलाने से स्तन बूढ़े हो जाते हैं। पश्चिम में स्त्रियां मां बनने में जरा भी उत्सुक नहीं रह गयी हैं। क्योंकि बच्चों को जन्म देने का मतलब है, अपनी मौत को पास बुलाना। हर बच्चा तुम्हारे जीवन का कुछ हिस्सा ले जाता है। जवानी बनी रहे, किसी भी कीमत पर!
कामवासना बुढ़ापे से भयभीत है, क्योंकि फिर बुढ़ापे का जब कदम उठ गया,
तो फिर मौत ज्यादा दूर नहीं। बुढ़ापा आ गया तो कब्र फिर कितनी दूर रही! मरघट के द्वार पर तो आ ही गए, अब ज्यादा देर न लगेगी। अगर बचना हो, तो पहले बुढ़ापे ही से बचना चाहिए, तो फिर मौत से शायद बचना हो जाए।
आदमी की कथाओं में, सारी मनुष्य-जाति की कथाओं में तुम ऐसे लोग पाओगे
जो मरे नहीं। वे हमारी कामवासना के प्रतीक हैं। कोई अश्वत्थामा मरता ही नहीं, कोई आल्हा-ऊदल मरते ही नहीं। सारी दुनिया में ऐसी कथाएं हैं कि कोई व्यक्ति जीए ही चला जाता है।
तुम भी बड़े प्रभावित होते हो अगर कोई कह दे कि फलां संन्यासी गांव में आया, उसकी उम्र दो सौ साल! चले, गिरे चरणों में! बड़े चमत्कृत हो गए! चमत्कार क्या है इसमें? चमत्कार यह है कि जो आदमी दो सौ साल जिंदा रह गया, पता नहीं कोई जड़ी-बूटी दे दे, कोई ताबीज दे दे, आशीर्वाद दे दे, तुम भी रह जाओ। यह तुम्हारे भीतर मरने का जो डर है, भय है, वही तुम्हें चमत्कृत करता है। उसी को चमत्कृत करने के लिए साधु अपनी उम्र बड़ी करके बताते हैं।
अब तुम थो.ेडा सोचो, स्त्रियां उम्र छोटी करके बताती हैं, साधु बड़ी करके बताते हैं, मगर मतलब दोनों का एक ही है। प्रयोजन एक ही है। स्त्रियां छोटी करके बताती हैं, वे कहती हैं, मौत बहुत दूर है। साधु बड़ा करके बताते हैं कि हम तो पार कर चुके हैं, मौत को हरा चुके हैं। मगर दोनों यह कह रहे हैं कि किसी भांति हम मौत से दूर, मौत हमें छू नहीं सकती। लेकिन यह कामी की ही वासना है।
पिछला जन्म, पिछला जीवन, पिछली मौत तुम्हारे इस जन्म को प्रभावित कर जाती है। पर यह सब हो चुका। यह मैं तुमसे इसलिए नहीं कह रहा हूं कि तुम इसके लिए उदास होओ। मैं तुमसे इसलिए कह रहा हूं, ताकि आगे तुम फिर ऐसी भूलें न करो।
एर्नाल्ड टायनबी ने अपने एक पत्र में लिखा है कि इतिहास पढ़ना जरूरी है, ताकि लोग वही भूलें दुबारा न करें।

यह बात ठीक समझ में आती है। लोग कहते हैं, इतिहास नहीं दोहरता, लेकिन
यह तभी संभव है जब इतिहास को ठीक से समझ लिया जाए; तभी नहीं दोहरेगा। नहीं तो दोहरेगा, दोहरेगा।
जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह तुम्हें उदास करने को नहीं, बल्कि तुम्हें भविष्य के प्रति आशा से भरने को कि अब तुम्हारे हाथ में सूत्र हैं, अब तुम दुबारा उस भांति मत मरना। और अब तुम दुबारा कामवासना से भरे मत मरना। यही मैं तुमसे कहता हूं कि मरते वक्त कामवासना बहुत जोर से पकड़ती है। तुमने देखा है, जब दीया बुझने लगता है तो भभककर जलता है एक बार। ऐसा जलता है जैसा कभी नहीं जला था। मरने के पहले कामवासना भी भभककर जलती है। मौत आ गयी, तो जो सदा की छुपायी हुई ऊर्जा थी, दबायी हुई ऊर्जा थी, कृपणता थी, अब तो मौत आ गयी, सब छूटने लगा हाथ से, अब भभककर जलती है। एक जोश में तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है।
मरता हुआ आदमी सौ में निन्यानबे मौकों पर कामवासना से घिरा मरता है। चिल्लाओ तुम मंत्र, पढ़ो तुम गीता, उस तक नहीं पहुंचेगा। क्योंकि वह भीतर तो कामवासना के लिहाफ में लिपटा हुआ है। मरते वक्त, और कामवासना से बच जाना, बड़ा कठिन है! यह तभी संभव है जब जीवनभर तुमने कामवासना के प्रति सजगता साधी हो और तुम्हारी कामवासना से इतनी पहचान हो गयी हो कि जब वह आखिरी भभककर जले, तब तुम हंसकर कहो कि अच्छा, तो अब दीया बुझा! और तुम साक्षी रह सको। तुम कहीं तादात्म्य न कर लो।
"आपका स्वभाव कल से बेचैन है। जब वह वीर्य न बचा सका, तब प्रज्ञा कैसे पैदा हो!"
अगर तुम बचे हो, तो वीर्य भी बचा है। वीर्य के संबंध में कुछ बात समझ लेनी जरूरी है। पहली बात कि वीर्य कुछ ऐसी बात नहीं है कि कोई निश्चित संपदा है। रोज पैदा हो रहा है। यह बड़ी भ्रांति है तुम्हें कि वीर्य कोई निश्चित संपदा है। यह कोई फिक्स्ड बैंक एकाउंट नहीं है कि सौ रुपए जमा हैं, एक रुपया खर्च हो गया, निन्यानबे बचे। एक और खर्च हो गया, अट्ठानबे बचे। वीर्य सृजनात्मक है। यह रोज पैदा हो रहा है। तुम्हारे भोजन से, श्वास से, श्रम से, विश्राम से रोज पैदा हो रहा है। इसलिए इससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है।
ब्रह्मचर्य को तुम कृपणता मत समझ लेना, जो कि अक्सर हुआ है। कंजूस आदमी ब्रह्मचारी हो जाते हैं। वह भी एक तरह की कंजूसी है। न धन खर्च कर सकते, न वीर्य खर्च कर सकते। मैं तुम्हें कंजूस बनने को नहीं कह रहा हूं। न बुद्ध कह रहे, न पतंजलि कह रहे हैं।
वस्तुतः वे यह कह रहे हैं कि इसके पहले कि तुम खर्च करो, काफी हो तुम्हारे पास। ताकि खर्च करने की गहराई आ सके। इकट्ठा करो पहले, ऊर्जा को गहन होने दो, सघन होने दो। क्योंकि जितनी ऊर्जा सघन और गहन होगी, उतना ही संभोग गहरा हो पाएगा। और कभी-कभी एक संभोग में भी मुक्ति हो सकती है। एक संभोग भी ठीक से देख लिया, बात खतम हो गयी। फिर तो पुनरुक्ति है।
और ध्यान रखना, अगर वीर्य पास हो, तो एक संभोग, पहला संभोग जितना गहरा होगा, दूसरा उससे कम होगा गहरा, तीसरा और कम गहरा होगा। क्योंकि पहला पच्चीस वर्ष, या बीस वर्ष, या अट्ठाइस वर्ष की संपत्ति--इकट्ठी संपत्ति--का परिणाम था। फिर दूसरा तो रोज-रोज जो संपत्ति इकट्ठी होगी, उसका परिणाम होगा। आज तुमने वीर्य खर्च किया, फिर चौबीस घंटेभर बाद पैदा हो जाएगा। लेकिन यह रोजमर्रा का पैदा होने वाला वीर्य है। इससे तुम वह गहरा अनुभव न पा सकोगे जो ब्रह्मचारी पाता है।
इसलिए यह मत सोचो कि वीर्य खतम हो गया, अब क्या करें? वीर्य आज भी पैदा
हो रहा है, रोज पैदा हो रहा है--वीर्य तो तुम्हारा जीवन है। अगर तुम आज भी ब्रह्मचर्य की दिशा में थोड़े कदम उठाओ, तो तुम्हारा सरोवर फिर भरने लगेगा। जीवन का दान अनंत है। जीवन कृपण नहीं है। तुम्हारी भूल-चूक के कारण जीवन यह नहीं कहता कि बस हो गया, तुमने भूल की, अब तुम्हें न मिलेगा। जीवन तुम्हें हजार बार देता है। तुम हजार बार भूल करो, वह एक हजार एक बार देता है। तुम जीवन को हरा न पाओगे।

तुम घबड़ाओ मत। जो समय गया, गया। जाने दो। फिर आज तुम्हारे जीवन में ब्रह्मचर्य का भाव जगे। कहते हो, तीस-पैंतीस साल गुजर गए, गुजर जाने दो।
तुम फिर से बच्चे हो जाओ। नहीं समझ थी तब, करते भी क्या तुम? कोई समझाने वाला भी न था, करते भी क्या तुम? जो समझाने वाले थे, वे उलटे हैं। उनके कारण ब्रह्मचर्य तो पैदा नहीं होता, उनके कारण ब्रह्मचर्य जल्दी टूट जाता है। समझाने वाले ऐसे नासमझ हैं कि उनके कारण और आकर्षण पैदा होता है।
अब यह बड़ी हैरानी की बात है। दो तरह के लोग हैं समाज में। एक हैं जो हर व्यक्ति की कामवासना का शोषण करना चाहते हैं। तो फिल्में हैं, कहानियां हैं, उपन्यास हैं, गीत हैं, संगीत है, बाजार है। वह तुम्हारी कामवासना का शोषण कर रहा है। वह छोटे से छोटे बच्चे में कामवासना पैदा कर रहा है। यह चारों तरफ फैला बाजार है। यह तुम्हारी गरदन पर तलवार रखे है। यह जानता है कि कामवासना बड़ी गहरी है, इसलिए हर चीज को कामवासना से बेचो। कार बेचनी है। कार अकेली नहीं बिकती। नग्न स्त्री उसके साथ होनी चाहिए खड़ी।
मैंने सुना है कि दूर अमरीका में पहाड़ों में रहने वाले एक आदमी को एक केटलाग मिल गया। अमरीका में केटलाग यानी गीता। लोग केटलाग ही पढ़ते हैं। वह एक खास अध्ययन का विषय है। कौन-कौन सी चीजें बाजार में बिक रही हैं-- विज्ञापन इस सबका। गरीब आदमी ने कभी केटलाग देखा नहीं था। उसने देखा तो बड़ा चकित हुआ। उसने एक स्त्री को देखा केटलाग में, बड़ी सुंदर और दाम बहुत कम। वह बड़ा हैरान हुआ। कुल तीन डालर। यही कोई पच्चीस-तीस रुपए। उसने कहा, इतनी सस्ती मिल रही है। उसने फौरन आर्डर किया।
फिर उसने बड़ी प्रतीक्षा की, क्योंकि लिखा था कि तीन सप्ताह के भीतर पोस्ट आफिस में पूछ लेना। वह फिर पोस्ट आफिस गया, दूर था गांव से, पास के नगर में था, वहां गया। उसकी पार्सल मौजूद थी। वह पार्सल देखकर और चौंका, पार्सल बड़ी छोटी थी। इतनी बड़ी औरत, इतनी सी पार्सल में समा गयी! चमत्कार पर चमत्कार हो रहा है! एक तो पच्चीस रुपए में।
उसने पूछा पोस्ट मास्टर को कि मुझे शक है, जो चीज मैंने बुलायी, है नहीं इसमें। यह धोखाधड़ी है। मेरे पच्चीस रुपए मुफ्त जाएंगे। मैं जान लेना चाहता हूं। उसने कहा, तुमने बुलाया क्या है? तो वह जरा शरमाया। अब उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना, मैंने एक स्त्री बुलायी है।
उसने कहा, स्त्री? कहां तुमने पढ़ा कि पच्चीस रुपए में स्त्री मिलती है। और अभी तक तो इंतजाम नहीं हुआ वी.पी.पी. से भेजने का। और तरह से मिलती? पच्चीस में भी मिलती। मगर वी.पी.पी. से! तुम भी बड़े खोजी हो। उसने केटलाग निकाली अपने बैग में से, कहा, यह देख लो।
वह एक हैंडबैग का विज्ञापन था। हैंडबैग लिए स्त्री खड़ी थी। उस गरीब
ने ठीक ही समझा कि स्त्री बिकती होगी। हैंडबैग के लिए स्त्री काहे के लिए खड़ी है? स्त्री के साथ हैंडबैग आता होगा, यह समझ में आता है; हैंडबैग के साथ स्त्री किसलिए आएगी? हैंडबैग आया हुआ था।
हर चीज को बेचना हो तो स्त्री को खड़ा करो। ऐसा लगता है कि और सब चीजें बहाने हैं, बिकती स्त्री है। बिकता काम है। तो एक तो चारों तरफ बाजार है, वह खींच रहा है तुम्हें कि तुम्हारी कामवासना जगे। जितनी जल्दी जग जाए उतना अच्छा। क्योंकि उतनी चीजें बिक सकें।
दूसरी तरफ मंदिर, मस्जिद, चर्च के पुजारी हैं। वे खिलाफ हैं। वे इतने ज्यादा खिलाफ हैं कि उनकी खिलाफत आकर्षण पैदा कर रही है। वे हर एक के गले में एक ही दवा घोंटकर पिलाए चले जाते हैं--ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य! उन बच्चों से ब्रह्मचर्य की बात करते हैं, जिनको अभी कामवासना का भी पता नहीं। अभी रुको! और उन दोनों के बीच में प्राण घुटे जा रहे हैं।
तो मैं जानता हूं, तुम्हारा कुछ कसूर नहीं, कोई अपराध नहीं। कोई पाप नहीं। इधर बाजार है, उधर पुरोहित है, और दोनों की सांठ-गांठ मालूम होती है। दोनों एक ही तरफ ढकेल रहे हैं।
सुख की गरदन काट रही है दुनिया की तलवार तो देख
जिस तलवार को चूम रहा है उस तलवार की धार तो देख
जान यहां हर चीज की कीमत आन यहां हर चीज का मोल

सौदा करने वाले गाफिल पहले ये बाजार तो देख
पर बच्चों को कहो भी क्या! उनका कसूर भी क्या! बच्चे तो नासमझ हैं, भोले-भाले हैं। उनकी स्लेट तो कोरी है, जो तुम लिख देते हो लिख जाता है। जब लुट जाते हैं तब पता चलता है कि जिस तलवार को चूमा, उसने काटा। जब लुट जाते हैं तब पता चलता है कि यह बाजार तो लुटेरों का है, दुकानदारों का नहीं। लेकिन तब ऐसा लगता है, देर हो गयी।
मैं तुमसे कहता हूं, देर नहीं हुई है। जब जागे, तब सुबह। छोड़ो चिंता! बेचैन मत होओ! वीर्य कोई ऐसी बात नहीं है कि बंधी हुई है। रोज पैदा होती है। फिर संगृहीत कर सकते हो। अच्छा होता कि पहले न गंवाया होता, पर अभी भी कुछ बिगड़ नहीं गया है। घबड़ाओ मत। अगर इतना बोध तुम्हारे भीतर है कि अब प्रज्ञा कैसे पैदा हो, तो प्रज्ञा पैदा होनी शुरू हो गयी। यही तो प्रज्ञा का पहला कदम है। क्या है पहला कदम?
कहा है, "तभी तो मूढ़ हूं और बिना जाने जानने का दावा करता हूं।"
अगर यह समझ में आ गया, तो प्रज्ञा ने पहला कदम लिया।
"संन्यास लेकर भी पलायन ही कर रहा हूं।"
अगर समझ में आ गया, तो पैर कब तक भगाए रखेंगे?
"क्रोध और अहंकार से बुरी तरह ग्रसित हूं।"
अगर यह दिखने लगा, तो बीमारियों से फासला होने लगा।
"बस चमड़ी-मांस ही बढ़ा है।"
जिसे यह समझ में आ गया, उसके प्रज्ञा के बढ़ने का क्षण आ गया।
और यह उचित है भाव कि "स्वभाव खुद कर-करके हार गया, प्रभु! अब आप ही कुछ करें।" इस भाव को प्रार्थना बनने दो। इस असहाय-भाव को पूजा बनने दो। इसमें फर्क समझ लेना। इसमें भी भ्रांति हो सकती है। असहाय-अवस्था से उठा हुआ यह भाव तुम्हें मुक्त कर सकता है, लेकिन निराशा से उठा हुआ यही भाव तुम्हें बरबाद कर सकता है। तुम निराशा से यह मत कहो कि अब आप ही करें। तुम असहाय-अवस्था से कहो।
क्या फर्क है दोनों में? जब तुम निराशा से कहते हो, तब तुम यह जानते हो
कि हो तो सकता नहीं, चलो यह भी करके देख लें। कि शायद गुरु पर छोड़ने से कुछ हो जाए। शायद प्रभु पर छोड़ने से कुछ हो जाए। जानते तो तुम यह हो कि यह हो नहीं सकता, जब अपने किए न हुआ, तो इनके किए क्या होगा? मगर मजबूरी है, चलो, इसको भी जांच लें। इसे भी देख लें। अगर निराशा से यह भाव उठा, तो यह पूरा न होगा। क्योंकि इसमें पहले ही प्राण नहीं हैं।
असहाय-अवस्था बड़ी अलग बात है। असहाय-अवस्था का यह अर्थ नहीं है कि यह
हो नहीं सकता। असहाय-अवस्था का इतना ही अर्थ है कि यह मेरे अहंकार से नहीं हो सकता, निर-अहंकार से होगा। निर-अहंकार से होगा। अहंकार से नहीं हुआ, निर-अहंकार से निश्चित होगा। अहंकार की यात्रा करके देख ली, अब अहंकार छोड़कर देखूं। लेकिन निराशा बिल्कुल नहीं है। अहंकार से हार हुई है, लेकिन हार नहीं हुई है।
लुट गए तन के रतन सब
लुट गए मन के सपन सब
तुम मिलो तो जिंदगी फिर
आंख में काजल लगाए
निराशा नहीं है। आंखें तैयार हैं, काजल लगाने का मन तैयार है। पर अब,
अब तक जिस ढंग से काजल लगाया, न लगाएंगे। उससे तो आंखें अंधी ही हुईं। सुंदर न हुईं।
लुट गए तन के रतन सब
लुट गए मन के सपन सब
समझ लेना। सब लुट गया, लेकिन आशा नहीं लुटी।
लुट गए तन के रतन सब
लुट गए मन के सपन सब
तुम मिलो तो जिंदगी फिर
आंख में काजल लगाए
तुम नहीं तो स्वर्ग की

सारी जमींदारी करूं क्या?
और अब अगर तुम्हारे बिना स्वर्ग की पूरी जमींदारी भी मिलती हो, तो मैं लेने को राजी नहीं। वही तो हम कोशिश करते रहे अब तक।
तुम नहीं तो स्वर्ग की
सारी जमींदारी करूं क्या?
तुम नहीं तो सांस की
दिन-रात रखवाली करूं क्या?
तार हूं मैं सिर्फ, है
झंकार तो इसमें तुम्हारी तुम नहीं तो एक मुट्ठी
धूल यह क्वांरी करूं क्या? अब न दरवाजा लगाओ
खोल सांकल पास आओ
यह न हो इस जन्म भी
डोली अकेली लौट जाए
तुम मिलो तो जिंदगी फिर
आंख में काजल लगाए
असहाय-अवस्था में उठी प्रार्थना में निराशा नहीं है। निराशा में पकड़ी गयी असहाय-अवस्था में प्राण नहीं है।
तो बहुत बार ऐसा हो जाता है कि तुम निराशा से आकर मेरे पास कहते हो कि
अब आप ही सम्हालो। मतलब यह है कि हम करके देख लिए, जानते हैं, आप से भी क्या होगा! किसी से कुछ होने वाला नहीं। मगर चलो, इसको भी करके देख लें, मरता क्या न करता! तो यह भी सही। मगर इस भांति कुछ भी न हो सकेगा, क्योंकि होना तो तुम्हारे भीतर है। तुमने तो द्वार बंद कर लिए। तुम्हारी निराशा ने तो तुम्हारे भीतर की संभावनाओं पर वज्रपात कर दिया, कुठाराघात कर दिया। हारे हो, संभावनाओं से नहीं, सिर्फ अहंकार से। हार हुई है, क्योंकि मैं को जिताना चाहा था। अभी जीत समाप्त नहीं हो गयी है। अभी तुम गलत ढंग से चल रहे थे, इसलिए हारे हो। हार आत्यंतिक नहीं है। लौटो। अभी तुम नदी से लड़ रहे थे, इसलिए थक गए हो। अब नदी के साथ बहो। थकान, जो नदी के साथ बहता है, उसने जानी नहीं। थकान उसने पहचानी नहीं। थकान का उसे परिचय नहीं है। जो नदी के साथ बहता है, वह ताजा होता है। नदी अपनी ऊर्जा भी उसे देती है। वह नदी का माध्यम बन जाता है।
अगर सच में तुम हार गए हो, अहंकार सब तरह से पराजित हो गया है, तो मैं तैयार हूं। लेकिन निराशा से न उठे यह स्वर। गहन आशा से उठे।

दूसरा प्रश्नः एस धम्मो सनंतनो प्रवचनमाला के चालू सत्र में आपने स्त्रियों के दुख-प्रदर्शन की वृत्ति का ऐसा भव्य और विराट वर्णन किया कि अभी-अभी सच में भी हमें दर्द हो, तो भी हम उसे प्रगट न कर पाएंगे। कृपया बताएं कि इस आत्म-दमन के लिए--हमारे आत्म-दमन के लिए--कौन जिम्मेवार होगा?

दर्द प्रगट करने से प्रयोजन क्या है? दर्द झूठा हो या सच्चा हो, इससे क्या फर्क पड़ता है! प्रगट करने की आकांक्षा क्यों है? घाव को दिखाते फिरने की जरूरत क्या है? बाजार में घाव खोलने का कारण क्या है? सच्चा सही। सच्चे और झूठे में फर्क करने का भी क्या कारण है? क्योंकि प्रयोजन तो एक ही है। मैंने तुमसे यह नहीं कहा है कि झूठे घाव मत दिखाना; सच्चे हों तो दिखाना, यह मैंने नहीं कहा है। घाव दिखाने की आकांक्षा क्या? और अगर घाव ही दिखाने हों, तो सिर्फ दिखाने के लिए सच्चे की आकांक्षा कर रहे हो? फिर झूठे ही दिखा लेना। और झंझट क्यों लेनी सच्चे घाव की।
लेकिन दिखाने का रस तो एक ही है कि घाव के माध्यम से सहानुभूति मांग रहे हो। कोई तुम्हारे दुख में सहभागी हो, यह रुग्ण आकांक्षा है। सुख में सहभागी करो। दुख में कोई साथ भी हो गया, कितनी देर साथ रहेगा!
तुम जरा इसे ऐसा सोचो, जब कोई तुम्हारे पास आकर अपनी दुख की कथा कहता है--सच्ची ही सही--तब तुम्हें क्या बड़ी प्रसन्नता होती है कि इनका संग-साथ

दें! ऊब पैदा होती है कि इनसे कब छुटकारा हो, ये सज्जन कब जाएं। अपना ही दुख क्या कम है कि इनके दुख की कथा सुनें। किसके दुख में किसको रस है? शिष्टाचारवश तुम सुन लेते हो, यह एक बात है। या तुम्हें भी कुछ अपना दुख रोना है, इसलिए सुन लेते हो, यह दूसरी बात है। कि पहले तुम रो लो, फिर हम रोएंगे। तो बराबर हो जाएंगे।
तुम किस आदमी को कहते हो कि वह बड़ा उबाने वाला है, बोर है? कौन आदमी को तुम कहते हो? उस आदमी को तुम बोर कहते हो जो अपनी तो सुना लेता है, तुम्हें मौका नहीं देता। और किसको तुम बोर कहते हो! जो तुम्हें तो सता लेता है और तुम्हें बिल्कुल मौका नहीं देता कि तुम उसको सता सको। वह बोले ही चला जाता है।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं। उनकी वजह से मैंने टेलिफोन छूना छोड़ दिया। वे टेलिफोन पर बोलते, तो बोलते ही चले जाते। हां-हूं कहने का भी अवसर नहीं देते। रखने की भी सुविधा नहीं देते, क्योंकि वह भी अशिष्टाचार मालूम होगा। घंटों!
क्या प्रयोजन है? क्यों चाहते हो कि दुख को कहें? सुख को कहो। सुख को बांटो। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, अगर तुम सुख को बांटने लगो, तो तुम्हारा दुख अपने आप तिरोहित हो जाएगा। क्योंकि सुख बांटकर तुम्हें जो प्रेम मिलेगा, वह दुख बांटकर मिली सहानुभूति से बहुत अन्य है। दुख कहकर जो सहानुभूति मिलती है, वह तो प्रेम का आभास है। वह तो झूठा प्रेम है। वह तो मात्र शिष्टाचार है, सभ्यता है। सुख बांटो, प्रेम चाहो। तुम झूठे को क्यों मांग रहे हो?
यह कृष्णप्रिया का प्रश्न है। अब उसे तकलीफ लग रही है कि अब तो अपना सच्चा दुख भी न कह सकेंगे! लेकिन कहो क्यों? तो सवाल उठता है, यह तो दमन हो जाएगा।
नहीं, दमन के लिए मैंने नहीं कहा। दरवाजा बंद कर लो, अपने से ही कह लो। दिल खोलकर कहो। रोओ, छाती पीटो, लोटो। मगर यह जरा भी आकांक्षा न हो कि कोई देखे। दुख क्या दिखाना! यह कोई शोभन है बात? घाव क्या उघाड़ने!
रास्ते पर तुम देखते हो बैठे भिखारियों को, घाव उघाड़-उघाड़कर बताते हैं। तुमने कभी बड़ा प्रेम अनुभव किया उनके प्रति? ग्लानि उत्पन्न होती है। तुम छिटककर भागते हो, कि यह क्या मामला है? कोई अपना कोढ़ से भरा हाथ दिखा रहा है, कोई टूटी टांग दिखा रहा है। वे क्या कह रहे हैं?
वे तुम्हारी सहानुभूति पर हमला बोल रहे हैं। वे सहानुभूति का शोषण कर रहे हैं। वे कह रहे हैं, अगर आदमी हो, तो दो कुछ। वे तुमसे यह कह रहे हैं कि अगर न कुछ दिया, न देखा, तो दुनिया तुमको आदमी न कहेगी। वे तुम्हें एक झंझट में डाल रहे हैं। वे तुम्हारे सामने एक प्रश्नवाची चिह्न खड़ा कर रहे हैं कि अब देखें बिना दिए जाते हो! अधार्मिक! जो देता है वह धार्मिक है। दान को तो शास्त्रों ने पुण्य कहा है, वे कह रहे हैं--भिखारी तुमसे कह रहे हैं-- इधर देखो, और वे अपने घाव बनाए बैठे हैं। अक्सर तो झूठे! पर सच्चे भी हों तो भी किसी का घाव देखने को किसको उत्सुकता है? ऐसे ही रस हो तो अस्पताल चले गए, जरा देख आए सबको। किसको रस है? यह रस रुग्ण है।
जो तुम्हारे घाव देखने में रस लेता है, वह तुम्हें घाव में देखना चाहता है। उसको ही मनोवैज्ञानिक सैडिस्ट कहते हैं। वह परदुखवादी है। उसका रस गलत है, रुग्ण है, बीमार है। वह तुमसे और कहता है, जरा और उघाड़-उघाड़कर दिखाओ। उसका रस गंदा है। उसका रस स्वस्थ नहीं है। तुम भी रुग्ण हो कि अपना दुख दिखाते हो। दुख कोई दिखाने की बात है! एकांत में बैठ जाओ, रो लो। कोई मना नहीं कर रहा है, रेचन कर लो।
जिंदगी सोज बने साज न होने पाए
दिल तो टूटे मगर आवाज न होने पाए
आवाज क्या करनी! मगर दिल तो टूटते नहीं और तुम आवाज करते हो। तुम लोगों को यह बताना चाहते हो कि देखो, हम दिल तोड़कर बैठे हैं, अब तो आ जाओ। सहानुभूति दिखाओ, आंसू बहाओ। हमने दिल तक तोड़ दिया, अब और क्या चाहते हो? जरूर मोहल्ले-पड़ोस में से कोई न कोई आ जाएगा और सहानुभूति दिखाएगा। या तो वह खुद भी रुग्ण है, और या फिर सिर्फ शिष्टाचारवश आया है। लेकिन किसको रस

हो सकता है तुम्हारे दुख में? तुम्हारे नासूरों में किसको सौंदर्य का दर्शन करना है?
अपने तईं रखो। रेचन कर लो। ध्यान करो, एकांत में उनको उघाड़ लो, दीवालों से बात कर लो, पहाड़ों से बात कर लो, वृक्षों से कह दो, मगर आदमियों के सामने घाव मत उघाड़ो। क्योंकि अगर तुमने घाव उघाड़े और उनकी सहानुभूति तुम्हें मिली, तो तुम घावों को झूठा करने में लग जाओगे। तुम पक्का न कर पाओगे, कहां तक घाव सच्चे थे, और कहां झूठे हो गए। तुम घावों को बड़ा करने लगोगे। तुम घावों को रंगने लगोगे। क्योंकि इतने लोग आते हैं, अब जरा ढंग से ही दिखाना चाहिए। तुम कहानी को सजाने-संवारने लगोगे। तुम उसमें जोड़ने- घटाने लगोगे। और ऐसा नहीं कि दूसरे इस पर भरोसा करेंगे, तुम भी इस पर भरोसा करने लगोगे। बहुत बार दोहरायी गयी कहानी, चाहे झूठी ही हो, सच्ची हो जाती है।
नहीं, दुख की कहानी अब मत दोहराओ। डर है कि कहीं तुम्हें उन पर भरोसा न
आ जाए। कहीं ऐसा न हो कि दुख ही तुम्हारा व्यवसाय हो जाए, जैसा कि बहुत लोगों का हो गया है।
मैं तुम्हें सुखी देखना चाहता हूं। सुख की चर्चा करो। सुख के गीत गाओ। जिसके तुम गीत गाओगे, वह बढ़ेगा। जिसकी तुम चर्चा करोगे, वह फैलेगा। और जिसकी तुम बार-बार चर्चा करोगे, उसका तुम पर प्रभाव बढ़ेगा और तुम्हारी उस पर आस्था बढ़ेगी। तुम आयोजन कर रहे हो महासुख का, अगर तुम सुख की चर्चा करते हो। अगर तुम दुख की चर्चा करते हो, तो महादुख का आयोजन कर रहे हो।
अब तुम पूछते हो, "दमन की जिम्मेवारी किस पर?"
जैसे कि जिम्मेवारी मुझ पर होगी, क्योंकि मैंने कहा, दुख मत बताओ। चलो
यह भी सही, जिम्मेवारी हम ले लेते हैं। छोड़ो तो, किसी बहाने सही। यह भी ठीक, दमन के लिए मैंने कहा नहीं, लेकिन दूसरे के ऊपर दुख उछालना तुम्हारा रेचन है। मैं तुमसे कहता हूं, कचरा पड़ोसी के घर में मत फेंको, तुम कहते हो, तब हमारे घर में कचरा इकट्ठा हो जाएगा, तो फिर जिम्मेवार कौन! तुमसे कहा कब कि तुम कचरा मत फेंको? लेकिन कचराघर है, वहां फेंको। पड़ोसी के घर में नहीं फेंकना है। चलते, राह-चलते लोगों के ऊपर कचरा नहीं फेंकना है। क्योंकि तुम अगर पड़ोसी के घर में फेंकोगे, पड़ोसी तुम्हारे घर में फेंकेगा। लेन-देन की बात है। तो कचरा बदल जाएगा, छुटकारा कैसे होगा? यही हो रहा है। तुम दूसरों में दुख उंडेलते हो, दूसरे तुममें दुख उंडेलते हैं। बंद करो। यह नाता बुरा है। इससे एक बीमार समाज पैदा हुआ है।
जीवन में सदा स्मरण रखो, सुंदर के लिए प्रेम मांगो, असुंदर के लिए नहीं। सुख के लिए स्वागत मांगो, दुख के लिए नहीं। क्योंकि जिसके लिए तुम स्वागत मांगोगे, अगर स्वागत मिला, तो तुम फिर उसे बढ़ाओगे। स्वभावतः यह तो सीधा नियम है, गणित है। जब दुख के कारण इतना स्वागत मिलता हो, तो फिर तुम कफन बांधकर घूमोगे। तुम सिर में कफन बांध लोगे। जब दुख के कारण लोग इतना शहीद मानते हों तुम्हें, तो तुम सूली पर चढ़ जाओगे। तुम्हारे बहुत से शहीद इसीलिए सूली पर चढ़ गए हैं, क्योंकि उनको ख्याल है--
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे मेले
मरने को भी तुम तैयार हो, मेला जुड़ना चाहिए। धूम-धड़ाका हो, फुलझड़ी- फटाके हों, फूलमालाएं पहनायी जाएं, तुम मरने को तैयार हो। जिंदगी तुम्हें काम की नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारा दृष्टिकोण रुग्ण है। इसीलिए तो सारी पृथ्वी रोग से ग्रस्त है।
दुख के संबंध में चुप रहो। वह चुप्पी, तुम्हारा दुख में जो स्वार्थ है, उसको काट देगी। वह चुप्पी दुख से तुम जो मजा ले रहे थे, दुख में जो रस ले रहे थे, उसकी धारा को तोड़ देगी। उससे दुख मरेगा। तुम धीरे-धीरे दुखी न रह जाओगे।
सुख में नियोजन करो। हमेशा अपना लंगड़ा-लूलापन मत दिखलाओ। कुछ सृजनात्मकता दिखलाओ। लंगड़े हो, कोई हर्जा नहीं, चित्र तो बना सकते हो हाथ से। अगर किसी का प्रेम मांगना है, चित्र बनाकर। मूर्ति तो गढ़ सकते हो? अंधे हो, गीत तो गा सकते हो। बहरे हो, किसी को प्रेम से तो देख सकते हो। गलत के लिए मत मांगो। मत अपना कान दिखाओ कि मैं बहरा हूं। अपनी सुंदर आंख

दिखाओ। मत अपनी टांगों को दिखाओ कि टूटी हैं। उन्हें छिपा लो। लोग वैसे ही दुखी हैं, उन्हें टूटी टांगें क्या दिखाना! इससे प्रयोजन भी क्या है? टूटी टांगों का इतना विज्ञापन क्या? तुम्हारे हाथ तो ठीक हैं। मूर्ति बनाओ, कविता लिखो, सितार बजाओ। कुछ करो। सृजनात्मक के लिए मांगो।
इधर मेरे पास लोग आ जाते हैं। एक महिला एक पागल लड़के को लेकर आ गयी। उसने कहा, इसे आप ही सम्हालिए। जैसे कि कोई भेंट लायी हो। मैंने कहा कि कभी पागलखाना खोलेंगे, तो इसको बुला लेंगे। अभी जरा मैं दूसरे पागलों से उलझा हूं। इन पागलों पर भी ध्यान देंगे, पर अभी उपाय नहीं है। उसने कहा कि यह कैसा आश्रम? दुखियों का कोई सहारा नहीं है। मैंने कहा, दुख में मेरी उत्सुकता नहीं है। यह कठोर लगता है, लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं, दुख में मेरी उत्सुकता नहीं है।
दुखवादियों ने बड़े प्रचार किए हैं दुनिया में कि दुखी पर दया करो। मैं तुमसे कहता हूं, सुखी पर दया करो। तो दुनिया में दुख कम होंगे। इन नासमझों की शिक्षाओं की वजह से दुख बढ़े हैं। वे कहते हैं, अंधे-लूलों के हाथ-पैर दाबो। तो जिनको भी हाथ-पैर दबवाने हैं, वे अंधे-लूले होकर बैठे हैं।
एक लंगड़ा आदमी एक औरत से भीख मांग रहा था उसके द्वार पर। उस औरत ने कहा
कि देखो, तुम तो भले-चंगे हो, जरा सा पैर में मालूम होता है मोच लग गयी। आंखें तुम्हारी ठीक हैं, हाथ ठीक हैं। अंधे होते, तो मैं तुम्हें देती भी कुछ। यह लंगड़ा होने से क्या होता है? हजार काम कर सकते हो। आंखें तो साबित हैं। आंख है तो जहान है।
तो उसने कहा, देवी जी, पहले मैं अंधा भी हुआ करता था। तब लोग यह कहते थे, अंधे हो, इससे क्या होता है? अरे, हजार काम कर सकते हो! अंधे कई काम करते हैं। तब से मैं लंगड़ा हो गया। अब देखो तो, लोग यह समझाने लगे फिर।
तुम अगर चाहते हो कि दुनिया से दुख मिटे, दुख घटे, तो लोगों की ऐसी स्थिति मत बनाओ कि जिसमें उनको दुख में स्वार्थ का हित मालूम होने लगे। श्रेष्ठ को सत्कारो। सुंदर को स्वीकारो। सुख का गुणगान करो। दुख है, उसका इलाज करो, मगर स्वागत नहीं। दुख है, उसको मिटाने का उपाय करो, लेकिन सम्मान नहीं। दुख है, उसे सहानुभूति दो, लेकिन इतनी नहीं, कि लगे कि तुम प्रेम में पड़ गए हो। दुखी को यह पता होना चाहिए कि लोग शिष्टाचार, संस्कार, सभ्यता के कारण सेवा कर रहे हैं। उन्हें सेवा में कोई रस नहीं आ रहा है। मजबूरी में सेवा कर रहे हैं। करनी पड़ रही है, इसलिए सेवा कर रहे हैं।
जब घर में तुम्हारे कोई बच्चा बीमार हो, तो उसे साफ-साफ पता चल जाने दो
कि तुम्हारी बीमारी में कोई उत्सुकता नहीं है। तुम बीमारी को समाप्त करना चाहते हो। तुम सेवा कर रहे हो, क्योंकि बीमारी मिटे, इसलिए। लेकिन ज्यादा लाड़-प्यार मत बतलाओ, गले मत लगाओ, सिर मत सहलाओ, बच्चे को कहीं यह भ्रांति मत दे दो कि जब वह बीमार होता है, तब उसे प्रेम मिलता है। अगर यह एक दफा उसके मन में भाव आ गया कि जब मैं बीमार होता हूं तब प्रेम मिलता है, जब मैं स्वस्थ होता हूं तब कोई मेरी तरफ देखता भी नहीं, तुमने एक जहर का बीज बो दिया। अब यह बच्चा बीमार होना चाहेगा। अब जब-जब भी इसको प्रेम की कमी मालूम होगी जीवन में, यह बीमार पड़ जाएगा।
पूछो मनोवैज्ञानिकों से! वे कहते हैं, पचास से लेकर सत्तर प्रतिशत बीमारियां झूठी हैं। आदमी उनको पैदा कर रहा है। क्योंकि उन बीमारियों से कुछ मिलता है जो अन्यथा मिलता ही नहीं। जब तुम बीमार हो जाते हो, पास-पड़ोस के लोग तुम्हें देखने आने लगते हैं, जब तुम स्वस्थ थे, इनमें से कोई भी न आया। तभी आना था, ताकि स्वास्थ्य का रस पैदा होता। तब कोई न आया। जब तुम सुंदर दिखते हो, स्वस्थ दिखते हो, तो कोई नहीं कहता, अहा! कितने सुंदर! जरा तुम्हारी शकल पीली पड़ी और लोग मिलने लगे, कहने लगे, अरे! बड़े बीमार दिखायी देते हो। क्या हो गया? बीमार हो तो दफ्तर से छुट्टी मिल जाती है।
अगर मैं दुनिया बनाऊं, तो जब तुम स्वस्थ हो तब तुम्हें छुट्टी मिल जानी चाहिए। कि यह मौका है, गीत गाओ, नाचो, वृक्षों से मिलो, पहाड़ों पर जाओ। यह क्या, बीमार हुए कि छुट्टी! बीमार हुए तो कोई कह ही नहीं सकता कि छुट्टी नहीं देते। बीमारी पर दया होनी चाहिए।

मैं तुम्हें एक अलग ही जीवन-दृष्टिकोण दे रहा हूं। दृष्टिकोण पूरा यह
है कि बीमारी है, माना; होनी नहीं चाहिए। बीमारी है, माना; मिटाने का उपाय करेंगे। लेकिन इसके साथ प्रेम इत्यादि को पागना उचित नहीं है। दुनिया बहुत सुंदरतर हो सकती है।
जख्मे-दिल भी दिखा के देख लिया
बस तुम्हें आजमा के देख लिया
दागे-दिल से भी रोशनी न मिली
ये दीया भी जला के देख लिया
कितनी बार देख चुके हो, क्या मिला?
जख्मे-दिल भी दिखा के देख लिया
कितनी बार उघाड़े अपने जख्म और दिखाए, क्या मिला? जख्मे-दिल भी दिखा के देख लिया
बस तुम्हें आजमा के देख लिया
सभी को तो आजमा चुके हो रो-रोकर। अब कब तक आजमाते रहोगे?
दागे-दिल से भी रोशनी न मिली
कहीं घावों से रोशनी मिलती है? दिल में ही सही घाव!
दागे-दिल से भी रोशनी न मिली
ये दीया भी जला के देख लिया
अब समझो भी, जागो भी।

आखिरी प्रश्नः अंगूठी गोल है और अंत नहीं है उसमें। आपके लिए मेरे प्रेम का भी अंत नहीं है। कल पहली बार आपका प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला। आपकी किताबें अब तक पढ़ी थीं। प्रवचन से निष्पत्ति ली कि ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय, क्या सही है यह?

संदेह क्यों है? सही के लिए सदा बाहर से सहारा क्यों मांगते हैं हम?
कब अपने पर भरोसा करोगे? प्रेम जैसी गहन बात भी उठती है, उस पर भी लगता है, पता नहीं सही हो, न हो।
इसीलिए तो परमात्मा चूक रहा है। परमात्मा सामने भी खड़ा हो जाए तो तुम किसी न किसी और से जाकर पूछोगे कि खड़ा तो था, सही है, या नहीं? तुम्हें अपने पर भरोसा क्या बिल्कुल खो गया!
बिल्कुल सही है, प्रेम के अतिरिक्त कोई शास्त्र नहीं। लेकिन प्रेम के शास्त्र की पहली शर्त यही है कि संदेह गिराओ, आस्था जगाओ। और आस्था किस में? अपने में। जब तुम्हारी आस्था स्वयं में न होगी, तो मुझमें क्या होगी? आखिर तुम्हीं तो मुझ पर आस्था करोगे! अगर तुम्हारी अपने में ही आस्था नहीं, तो अपनी आस्था पर क्या आस्था होगी? अंततः तो तुम्हीं हो।
धीरे-धीरे अपने पैरों पर भरोसा करो। धीरे-धीरे चाहे भूल हो, चूक हो, भटको भी तो हर्ज नहीं। उस भटकाव से भी शिक्षण मिलेगा, अनुभव होगा। लेकिन धीरे-धीरे यह कोशिश करो कि जब जीवन में कोई निष्पत्ति मालूम पड़े, कोई सार मालूम पड़े किसी बात का, प्रयोग करो। अपनी भीतर की आवाज थोड़ी सुननी शुरू करो। वहां परमात्मा बोलता है। बाहर की आवाजें कितनी ही मधुर हों, उनसे मुक्ति न हो सकेगी। बाहर की आवाजों से मुक्ति तभी हो सकती है, जब वे तुम्हें तुम्हारी आवाज पर लौटा दें। इसलिए मैं तुमसे इतना कठोर भी हो जाता हूं कभी।
अब तुमने तो बड़ी प्रेम की बात कही है, "अंगूठी गोल है और अंत नहीं है उसमें। आपके लिए मेरे प्रेम का भी अंत नहीं है।"
तुमने तो बड़े प्रेम से प्रश्न पूछा है। फिर भी तुम्हें लगेगा कि मैं कठोर हूं। जरूरी है कि मैं कठोर रहूं। मैं तुम्हें तुम्हारे पर ही फेंक देना चाहता हूं। तुम आत्मनिर्भर बनो। मुझसे क्यों पूछते हो, "क्या सही है यह?" यह बात प्रेम की इतनी सही है, इस पर भी तुम्हें थोड़ा संदेह है। इसे जीवन में उतारो। मेरे कहने के कारण नहीं, तुम्हारे भीतर यह भाव उठा, इस कारण।

मुझे सुनो, समझो, लेकिन अंततः तो अपने भीतर के भावों को पकड़ो। मेरे पास तुम्हारे अंतर-भाव साफ होने लगें, बस काफी है। मैं तुम्हारे लिए कोई आदेश नहीं हूं। तुम मेरी तरफ मत देखो कि मैं तुमसे कहूं बाएं चलो, तो बाएं, दाएं चलो तो दाएं। इसी में तो खराबी हुई। लोग तुम्हें ऐसे ही तो चलाते रहे। और धीरे-धीरे तुम्हें अपने भीतर की वाणी सुनायी पड़नी ही बंद हो गयी। मेरा प्रयोजन बिल्कुल और है। मेरा उपयोग बिल्कुल और है। तुम मेरे साथ रहकर अपनी चाल पहचान लो। तुम मुझे सुनकर अपने को सुनना जान लो। मेरी आवाज धीरे-धीरे तुम्हें तुम्हारी आवाज से परिचित करा दे। जब तुम्हें अपने भीतर का सूत्र मिल जाए, फिर उसके सहारे चलो। चलने का एक ही उपाय है कि तुम उसे प्रयोग करो।
अब तुम्हें लगा, "ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।"
यह बात अगर समझ में आ गयी, तो और सब तरह का पांडित्य जो तुमने सीखा हो-- ढाई अक्षर के अलावा--उसे कचरेघर में फेंक आओ। सब पोथी-पत्रा बांधकर कचरेघर में रख दो। अब तो ढाई अक्षर बस वेद है।
तो पहला काम कि ढाई अक्षर के अलावा जो भी कूड़ा-करकट तुम्हारे भीतर हो, उसे विदा करो, सफाई करो घर की, जगह करो। फिर दूसरी बात है, कि वह जो ढाई अक्षर है प्रेम का, वह पोथी में लिखा अक्षर नहीं है। अक्षर शब्द का मतलब होता है, जिसका कभी क्षय न हो। जो कभी मिटे न।
बस प्रेम ही है जिसका कभी क्षय नहीं होता। कभी मिटता नहीं। प्रेमी मिट जाते हैं, प्रेम नहीं मिटता। प्रेम करने वाले विलीन हो जाते हैं, खो जाते हैं, प्रेम बना रहता है। प्रेमी बदलते जाते हैं, प्रेम की कथा चलती रहती है। पात्र बदलते रहते हैं, लीला जारी। प्रेम का कथानक शाश्वत है। ढाई अक्षर का अर्थ है, प्रेम करो, ऐसा प्रेम करो जिसका क्षय न हो। हालांकि तुम्हें तो जब भी तुम प्रेम करते हो तो ऐसा ही लगता है, अब इसका क्षय न होगा। और दूसरी घड़ी क्षय हो जाता है। तुम कह भी नहीं पाए कि क्षय कभी न होगा, कि क्षय हो गया। वस्तुतः तुमने कहा और क्षय हो गया। तुम्हारा कहना ही संदेह से निकलता है।
जब तुम किसी को कहते हो कि यह प्रेम सदा रहने वाला है, तभी जरा गौर से देखना, सदा में जरा नीचे उतरना, पैर डगमगाते पाओगे। सदा? फिर से विचार करो। सदा तुम कर सकोगे? तुम किसके आसरे पर यह भरोसा कर रहे हो? तुम्हारे आसरे पर? एक क्षण का तो ठिकाना नहीं है; अभी कुछ, अभी कुछ; अभी सुबह, अभी शाम; एक क्षण का तो ठिकाना नहीं है तुम्हारा! अभी क्रोध से जल रहे हो, अभी प्रेम से भर गए हो; अभी गीत उठता था, संगीत उठता था, अभी गाली निकल आयी है। तुम किसके आधार पर आश्वासन दे रहे हो?
नहीं, इतना बड़ा आश्वासन मत दो। कहीं यह आश्वासन बंधन न हो जाए। और यह आश्वासन टूटेगा, तो तुम्हारी आत्मा खंडित होगी।
तुमने तो अब तक जितने प्रेम जाने हैं, सभी का क्षय हो जाता है। पत्नी
का प्रेम जाना, बचा? मां का प्रेम जाना है, बचा? बेटे कहे चले जाते हैं कि हां मां, प्रेम करते हैं। लेकिन करते हैं? औपचारिकता रह जाती है। जाते हैं, पैर भी छू आते हैं, लेकिन मां आ जाए और दो-चार महीने साथ रह जाए, तो प्रेम का पता चल जाता है। जिस पत्नी को तुम प्रेम करते हो, मायके चली जाती है तो ऐसा नहीं लगता कि चलो, छुटकारा हुआ? एक दो दिन अब शांति से रहेंगे, झंझट मिटी! घर से भागते हो।
घर आते आदमियों के पैर मैं देखता हूं, उनमें वह गति नहीं होती, जो घर
से जाते वक्त होती है। घर से निकलते लोगों को देखता हूं तब फड़कते निकलते हैं। चले, झंझट मिटी। घर लौटते ऐसे लौटते हैं कि अब फिर फंसे। फिर वही झंझट। पति पत्नियों से बात करने में डरते हैं, क्योंकि बात में से बात निकलती है। फिर पता नहीं कहां ले जाए। बात ही नहीं चलाते। चुप्पी साधे रहते हैं। अखबार पढ़ते हैं, रेडियो सुनते हैं, टेलीविजन देखते हैं, हजार दूसरे काम करते हैं, पत्नी से आंख नहीं मिलाते, क्योंकि कुछ बात निकल आए! और बात में तो सदा फिर कांटे ही ऊगते हैं, कुछ सार तो लगता नहीं, विवाद खड़ा हो जाता है।

प्रेम? तुमने अपने बच्चों को प्रेम किया। अगर तुम्हारा बच्चा डाकू बन जाए, तुम प्रेम करोगे? राजनैतिक बन जाए तो करोगे। राजनेता हो जाए, अहा! सौभाग्य!! सब पुरखे प्रसन्न होंगे, तुम्हीं नहीं। स्वर्ग से पुरखे एकदम फूल बरसाएंगे कि अपना ही वंशधर, देखो मंत्री हो गया। लेकिन डाकू हो जाए, चोर हो जाए, बेईमान हो जाए, बगावती हो जाए, शराबी हो जाए, तो तुम्हें स्वीकार करने में डर लगने लगता है कि मेरा बेटा है। प्रेम? यह प्रेम भी कुछ स्वार्थ मालूम पड़ता है। यह प्रेम भी कुछ महत्वाकांक्षाओं से जुड़ा मालूम पड़ता है।
नहीं, यह ढाई अक्षर वाला प्रेम नहीं है। तो फिर जरा तलाश करो, अपने प्रेम में तलाश करो, तुम वहां कहीं भी ढाई अक्षर वाला प्रेम न पाओगे। तब तुम्हें सोचना पड़ेगा।
"ढाई आखर प्रेम का।"
तो तुम्हें प्रार्थना सीखनी पड़ेगी। तो तुम्हें फिर परमात्मा से प्रेम करना सीखना पड़ेगा। अक्षर से करोगे प्रेम, तो ही अक्षर होगा। प्रेम शब्द में ढाई अक्षर हैं--दो अक्षर हैं और एक मात्रा है, इसलिए ढाई। अंततः दोनों अक्षर खो जाते हैं, मात्रा ही रह जाती है। भक्त भी खो जाता है, भगवान भी खो जाता है, सिर्फ प्रेम रह जाता है। जब दोनों खो जाते हैं, तभी अक्षर बचता है।
जब तक दो हैं, तब तक तो थोड़ी कलह जारी रहती है। तब तक तो थोड़ा मान-मन्नौवल चलती है। रूठना-मनाना चलता है। जब तक दो हैं, तब तक तो डर है टूट जाने का। डर कहना ठीक नहीं, निश्चित ही है टूट जाना। दो को कब तक जोड़े रखोगे? द्वंद्व, द्वैत अक्षर में नहीं ले जा सकता।
किसी ऐसे प्रेम को खोजो जहां डूब जाओ, मिट जाओ, जहां तुम न रहो। जहां न मैं बचे, न तू बचे। जहां मात्रा भर बचे, बस प्रेम भर बचे। फिर अक्षर की उपलब्धि हुई; शाश्वत की, सनातन की उपलब्धि हुई।
ठीक सूत्र ख्याल में आया है। अब इसको खो मत देना। अब इसको जोर से पकड़ो। यह तुम्हारी जीवन-दृष्टि, जीवन की दिशा बन जाए।
जब तलक दिल में मुहब्बत न हुई थी पैदा
ये जमीं सादा थी, जन्नत न हुई थी पैदा
जिंदगी में कोई लज्जत न हुई थी पैदा
जेहन और फिक्र में अजमत न हुई थी पैदा
जब तलक दिल में मुहब्बत न हुई थी पैदा
मेरे अफकार के फूलों में बहार आयी न थी
मेरे अशआर में रंगीनी-ओ-रानाई न थी
मेरे तखईल में नुदरत न हुई थी पैदा
जब तलक दिल में मुहब्बत न हुई थी पैदा
ये जमीं सादा थी, जन्नत न हुई थी पैदा
प्रेम स्वर्ग है। स्वर्ग का द्वार है। पृथ्वी ही परमात्मा हो जाती है, अगर तुम पर प्रेम बरस जाए। प्रेम मार्ग है।
लेकिन प्रेम से लोग बचते हैं। कहते तो बहुत हैं, चर्चा तो बहुत करते हैं प्रेम की, लेकिन बचते हैं। क्योंकि प्रेम में मिटना पड़ता है। प्रेम महामृत्यु है। मिटने की तैयारी करो। सभी शास्त्र तुम्हें बचा लेते हैं, प्रेम तुम्हें मिटा देता है, इसलिए वही असली शास्त्र है। सभी शास्त्र किनारे-किनारे हैं, प्रेम मझधार है। जो बचना चाहता है, किनारों को पकड़े रहे।
लेकिन जिसने बचाया, वह मिट जाएगा। जो मिटने की तैयारी रखता हो, मझधार में आ जाए। और मजा यही है, सनातन धर्म यही है--एस धम्मो सनंतनो--कि जो मिटा, वही बचा। मझधार में जो डूबा, उसी ने असली किनारा पाया है।
प्रेम आग में उतरना है, अंगारों पर चलना है। प्रेम अपने को मिटाना है। मृत्यु भी छोटी मृत्यु है प्रेम के सामने। क्योंकि मृत्यु में भी शरीर ही जाता है। तुम, तुम्हारा मन तो सब बच जाते हैं। नए चोले, नए वस्त्रों में प्रवेश कर जाते हैं। प्रेम तुम्हारे मन को, तुम्हें डुबा ले जाता है। जो

प्रेम में मरा, फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं। जो बिना प्रेम के जीया, वह जीया ही नहीं।
जब तलक दिल में मुहब्बत न हुई थी पैदा
ये जमीं सादा थी, जन्नत न हुई थी पैदा
प्रेम तो स्वर्ग का सूत्र है। मगर करोगे तो। प्रेम हो जाओगे तो। ये शब्द न रह जाएं, ये किताबों में लिखे अक्षर न रह जाएं, ये जीवन में अक्षर का आविर्भाव बनें। और मुझसे मत पूछो कि ये सही हैं या गलत! मैं कौन हूं? करो और जानो। जीओ और जागो। परखो जीवन में। मेरे कहने से क्या होगा?
अगर मैंने कह दिया कि हां, ठीक है, इसलिए तुमने मान लिया, तो फिर तुमने शास्त्र बना लिया। फिर मैं तुम्हारा शास्त्र हो गया। फिर भी तुमने अंतर्वाणी न सुनी। फिर तुम किसी और से पूछ आए।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुमने बुद्ध से पूछा--धम्मपद से पूछा, जीसस
से पूछा--बाइबिल से पूछा, मोहम्मद से पूछा--कुरान से पूछा, या मुझसे पूछा। पूछते क्यों हो?
भरोसा करो। अपनी आवाज पर थोड़ा भरोसा करो। अपने पैरों पर थोड़ा भरोसा करो। यह डर छोड़ो। यह डर भी मन का है। और यही मन तो सारे शास्त्रों को पकड़ता है। यह मुझे भी पकड़ लेगा।
मैं जानता हूं, तुममें से जो डरे हुए हैं, वे मुझे भी शास्त्र बना लेंगे। भय सदा शास्त्र बना लेता है। और जहां शास्त्र बना, वहीं धर्म की कब्र बन गयी।
तुम मुझे शास्त्र मत बनाओ, तुम मुझे अनुभव बनाओ। मुझसे सुनो, जीवन में परीक्षा करो। तुम उलटा करते हो। मुझसे सुनो, समझो! जीवन में जाकर जीवन से पूछो, क्या यह सही है? जो सुना, क्या यह सही है? जीवन तुम्हें उत्तर देगा। जीवन कसौटी है। तुम अभी उलटा करते हो। जीवन आवाज देता है, तुम मुझसे पूछने आते हो, क्या यह सही है?
एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा, मुझे विवाह करना है, आप क्या कहते हैं? मैंने कहा, तू कर ही ले। क्योंकि जिसको नहीं करना, वह पूछने नहीं आता। तू कर ही ले।
उसने कहा, फिर आपने क्यों नहीं किया? मैंने कहा, मैं किसी से पूछने ही नहीं गया। पूछने जाता--तो मैं पूछने जाता ही नहीं, कर ही लेता। पूछने क्या जाना है! अपने से पूछना है। अब तू पूछने आया है, इसलिए मैं कहता हूं, कर ही ले।
वह राजी न हुआ। क्योंकि मैंने उसी पर फेंक दिया। वह चाहता था, मैं कुछ कहूं। करेगा तो वह अपनी ही। कौन ने कब किसी और की की है?
इसे तुम थोड़ा समझो, ये बेईमानियां, धोखे बंद करो।
करेगा तो वह अपनी ही। वह जिम्मेवारी भर मुझ पर छोड़ना चाहता था। मैं कहता, कर ले, जरूर कर ले, बिल्कुल ठीक है कर लेना; तो वह कहता, आप कहते हैं, इसलिए करता हूं। अगर उसको करना है, तो करेगा, कहेगा आप कहते हैं। अगर वह देखेगा कि नहीं, यह अपने को करना नहीं, तो किसी और से पूछेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने मुझसे कहा कि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि दफ्तर जाने का मन नहीं होता, तो क्या करना? तो मैंने कहा कि यह बड़ा मुश्किल है। तू सिक्का हाथ में लेकर फेंक लिया कर, तय कर लिया कर। अगर चित्त पड़ेगा तो जाएंगे, अगर पट्ट पड़ेगा तो नहीं जाएंगे। दूसरे दिन वह दफ्तर न गया। सांझ को मुझे दिखा, मैंने कहा, क्या हुआ? उसने कहा, सिक्का फेंका था। मगर दस बार फेंकना पड़ा, तब पट्ट आया।
तुम मुझसे पूछोगे, किसी और से पूछ लोगे, मतलब की जब बात आ जाएगी--दस बार फेंक लोगे, जब पट्ट आ जाएगा--तो अपने मतलब की बात पूरी हो गयी। करोगे तो तुम अपनी ही, फिर शास्त्रों को, सदगुरुओं को बीच में क्यों लेते हो? उनको बीच में लेने के कारण धोखा पैदा होता है।
मेरी सुनो, करो अपनी। जिंदगी से पूछो, क्या सही है? जिंदगी के वक्तव्य कभी झूठे नहीं होते। मैं भी तुमसे कह सकता हूं, मैं जानता हूं कि जिंदगी का भी यही वक्तव्य है--ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय। लेकिन इतने सस्ते में तुम्हें मिल जाएगा, तो तुम इसका मूल्य न समझ पाओगे।

जाओ, जिंदगी में खरीदो, अर्जित करो। जो अर्जन से मिलता है, उसका ही मूल्य गहरा बैठता है। वही रूपांतरित करता है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
छप्पनवां प्रवचन

अत्ताहि अत्तनो नाथो

अत्तानं चे पियं अांं रक्खेय्य तं सुरक्खितं।
तिण्णमांंतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो।। 136।।

अत्तानेमेव पठमं पतिरूपे निवेसये।
अथांंमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो।। 137।।

अत्तानंचे तथा कयिरा यथांंमनुसासति।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ताहि किर दुद्दमो।। 138।।

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।
अत्तना" व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।। 139।।

पहला सूत्र--

अत्तानं चे पियं अांं रक्खेय्य तं सुरक्खितं।

"यदि अपने को प्रिय समझे तो अपने को सुरक्षित रखे। पंडित को तीन पहरों में से किसी एक में अवश्य जागना चाहिए।"
महत्वपूर्ण सूत्र है। हीरे की भांति सम्हालकर रखना। जीवन की बहुत सी गुत्थियां सुलझ सकती हैं, इस एक छोटे से सूत्र से।
"यदि अपने को प्रिय समझे।"
साधारणतः हम समझते हैं, हम सभी अपने को प्रेम करते हैं। इससे बड़ी दूसरी भ्रांति नहीं। इसे सुनकर तुम चौंकोगे। क्योंकि तुम्हारे धर्मगुरु भी यही कहते हैं, तुम्हारे पंडित भी यही कहते हैं, दूसरों को प्रेम करो।
पड़ोसी को प्रेम करो। परमात्मा को प्रेम करो। एक बात उन्होंने मान ही रखी है कि तुम अपने को प्रेम करते हो। अब दूसरों को करो। वहीं चूक हो रही है। तुमने अभी अपने को ही प्रेम नहीं किया।
जीसस का प्रसिद्ध वचन है, पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम करो।
अपने जैसा! इसका अर्थ हुआ कि पड़ोसी को प्रेम करो, उसके पहले अपने को प्रेम करना होगा। और तुम्हें तो उलटा ही समझाया गया है। तुम्हें तो कहा गया है, अपने को प्रेम करना स्वार्थ है। अपने को प्रेम करना जैसे पाप है।
लेकिन जिसने स्वयं को प्रेम नहीं किया, वह दूसरे को प्रेम कर ही न पाएगा। जिसके स्वयं के जीवन में प्रेम की ज्योति न जली, उसका प्रकाश पड़ोसी तक कैसे पहुंच जाएगा? जो तुममें नहीं है, वह तुम दूसरे को न दे पाओगे।
हम वही देते हैं, जो हममें है। हम लाख कुछ और कहें, हम कहें कि प्रेम देते हैं, लेकिन हम देंगे घृणा। अगर वही है, तो तुम क्या करोगे? नाम बदल देने से थोड़े ही कुछ होता है। लेबिल चिपका देने से थोड़े ही प्रेम हो जाता है। तुम लाख कहो कि हम प्रेम देते हैं, लेकिन तुम दोगे क्रोध। क्रोध है, तो क्रोध ही दोगे।
बुद्ध का यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। जीसस के सूत्र ने जैसे मान ही लिया कि तुम अपने को प्रेम करते हो--अपने जैसा पड़ोसी को प्रेम करो। लेकिन बुद्ध एक-एक शब्द सोचकर कहते हैं।
वे कहते हैं, "यदि अपने को प्रिय समझे।"
यह बात अभी पक्की नहीं है, यदि की है। ऐसा है नहीं, हो सकता है। लेकिन
तब सारा जीवन-दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा। अपने को प्रेम करो, स्वार्थी बनो, तो ही तुम आत्मा को उपलब्ध हो सकोगे। और मजा यह है, विरोधाभास यह है कि अगर तुमने अपने को प्रेम किया, तो तुम दूसरे को प्रेम करोगे ही, अन्यथा तुम कर न पाओगे। जो है, वही बांटोगे।

राबिया के जीवन में प्रसिद्ध उल्लेख है। कुरान में वचन है कहीं-- शैतान को घृणा कर। उसने काट दिया। उसके घर मेहमान था एक फकीर, हसन। सुबह-सुबह उठाकर कुरान पढ़ रहा था। कुरान में संशोधन देखकर वह घबड़ा गया। मुसलमान सोच ही नहीं सकते। कुरान में, और संशोधन! वह आखिरी किताब है। जैसे हिंदुओं की जिद्द है कि हमारी पहली किताब है। उससे पहले किसी की किताब नहीं। ऐसे मुसलमानों की जिद्द है कि हमारी आखिरी किताब है। उसके बाद फिर कोई किताब नहीं। मोहम्मद आखिरी पैगंबर हैं। परमात्मा ने अपना आखिरी संदेश भेज दिया, अब इसमें कोई तरमीम और संशोधन की जरूरत नहीं, न सुविधा है। हसन तो घबड़ा गया। यह तो कुफ्र है! यह किसने लकीर काटी? यह किसने संशोधन किया? वह भागा, उसने राबिया को कहा, देख! तेरी किताब किसी ने अपवित्र कर दी। राबिया ने कहा, किसी ने नहीं, मैंने ही की है। और अपवित्र नहीं; अपवित्र थी, पवित्र की है। यह वचन मेरे बरदाश्त के बाहर हो गया। जब मैंने प्रेम जाना, तो अब घृणा शैतान को भी देनी हो तो कहां से दूं? यह बात मुझसे मेल नहीं खाती। प्रेम को जानकर, प्रेम में जीकर, प्रेम में पग गयी; अब तो मेरे पास प्रेम ही है। अब शैतान खड़ा हो कि भगवान खड़ा हो, मजबूरी है, प्रेम ही दे सकती हूं। अब तो मैं पहचान भी न कर पाऊंगी कि कौन शैतान है, कौन भगवान है। क्योंकि प्रेम की आंख ने कब भेद किया? प्रेम की आंख ने कब द्वंद्व जाना, कब द्वैत जाना? तुम भी अपनी किताब में सुधार कर लेना।
यदि तुमने अपने को प्रेम किया, तो यह शुरुआत तो स्वार्थ की है, लेकिन परार्थ के फूल इसमें खिल जाएंगे। इसलिए मैं तुम्हें सिखाता हूं स्वार्थ; परार्थ तो अपने से आता है। भूल वहीं हो गयी, स्वार्थ ही तुम न सीखे और परार्थ की बातें करने लगे। परार्थ ने संसार को बुरी तरह सताया। तुम खुद न बदले, दूसरे को बदलने चले गए। अभी इस योग्य न थे, अभी जीवन की कोई सुगंध न पायी थी और बांटने लगे। तुमने जगत को दुर्गंध से भर दिया। तुमने सोचा होगा सुगंध है, सुगंध से तो तुम परिचित ही नहीं हो। जो तुम्हारे भीतर था उसी को तुमने सुगंध मान लिया।
जगत में देखो चारों तरफ! लोग शांति की बातें करते हैं और युद्ध पैदा होते हैं। प्रेम की बातें करते हैं और घृणा का जहर फैलता है। सौंदर्य की बातें करते हैं और कुरूप होते जाते हैं। दया, करुणा और अहिंसा की चर्चा चलती है मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में और पृथ्वी पर घृणा और अहिंसा फैलती चली जाती है। और वही हैं फैलाने वाले लोग।
तुम जरा देखो तो, जरा आदमी की तरफ गौर तो करो! जिनके मुंह से शांति की बातें चल रही हैं, उन्हीं के हाथ में तलवार है। हालांकि वे बड़े कुशल हैं, वे कहते हैं, शांति की रक्षा के लिए। अब अगर शांति को भी रक्षा के लिए तलवार की जरूरत है, अगर शांति की रक्षा के लिए युद्ध की जरूरत है, तो छोड़ो बकवास शांति की। फिर युद्ध ही सत्य है। फिर छोड़ो ये सपने। फिर कम से कम जानकर चाहो कि युद्ध ही चाहते हैं। युद्ध की ही बात करो, युद्ध ही जीवन में हो। कम से कम एकरसता तो होगी। शायद उससे तुम कभी जाग जाओ।
यह धोखा जागने भी नहीं देता। इस धोखे में तुम पड़े रहते हो। हाथ तलवार चलाती रहती है, गरदनें काटती रहती है, जबान प्रेम और शांति की बातें करती रहती है। एक हाथ से कबूतर उड़ाते हो शांति के और एक हाथ से आदमी की गरदनें काटते जाते हो। जिस हाथ से कबूतर उड़ाए जा रहे हैं, उसी हाथ से बम बनाए जा रहे हैं। इस विरोधाभास को तो देखो!
हम सब कहते हैं, समझाते हैं--शुरू से ही जहर के बीज बोते हैं। घर में बच्चा पैदा हुआ, मां कहती है, मुझे प्रेम कर, मैं तेरी मां हूं। पहले नासमझ, उस बच्चे को यह तो समझा कि तू अपने को प्रेम कर। फिर मां से भी कर लेगा। मां तो दूर है। अत्तानं चे पियं--पहले तो अपने को कर।
कोई बच्चे को सिखाता ही नहीं कि अपने को प्रेम करो। सभी सिखा रहे हैं-- मां सिखा रही है, मुझे प्रेम कर, मैं मां हूं; बाप सिखा रहा है, मुझे प्रेम कर, मैं बाप हूं; भाई सिखा रहा है, मुझे प्रेम कर, मैं भाई हूं; गुरु सिखा रहा है, मुझे कर--सारी दुनिया उससे प्रेम मांग रही है। पहले कदम पर चूक हुई जा रही है। किसी ने यह देखा ही नहीं कि इसने अभी अपने को ही प्रेम नहीं

किया; अभी यह घर अंधेरा है, दीया जला नहीं; इससे तुम रोशनी मांगने लगे! अभी फूल खिला नहीं और तुम सुगंध का आग्रह करने लगे। खिलने तो दो।
अच्छी दुनिया होगी तो हम पहले बच्चे को सिखाएंगे, अपने को प्रेम कर। भूल सबको। पहले अपने पैर तो मजबूत कर ले, प्रेम की भूमि में जड़ें तो फैला ले, खिल तो जाने दे प्रेम के फूल, फिर तो तू बांटेगा; बोझिल हो जाएगा, बांटना ही पड़ेगा।
ध्यान रखना, प्रेम किसी पर हम दया करके नहीं करते। हम प्रेम से बोझिल होते हैं, तब करते हैं। जैसे मेघ घिर जाते हैं अषाढ़ में, वर्षा से भरे और बोझिल हो जाते हैं। तुम यह मत सोचना कि जमीन में पड़ी दरारें और जमीन में आ रही प्यास के कारण बरसते हैं। नहीं, रुक नहीं सकते, इसलिए बरसते हैं। इतने भरे हैं, इसलिए बरसते हैं। बिना बांटे न चलेगा। बांटेंगे न, तो बोझ रह जाएगा। बांटना ही होगा।
सूरज से किरणें बंट रही हैं, इसलिए नहीं कि तुम्हारी अंधेरी रात मिट जाए। क्या लेना-देना तुम्हारी अंधेरी रात से सूरज को? अंधेरे से सूरज की पहचान ही कहां, मिलना ही कब हुआ? अंधेरे को सूरज ने जाना कब? उसे कोई खबर भी नहीं है अंधेरे की। तुमसे क्या लेना-देना? तुमसे क्या संबंध?
नहीं, सूरज प्रकाश से भरा है, बांटता है। न बांटेगा तो दब मरेगा, अपने
ही बोझ से। मेघ न बरसेगा, तो क्या करेगा? गहन पीड़ा होगी, संताप होगा, चिंता होगी। पागल हो जाएगा। मेघ को बरसना ही पड़ेगा अगर स्वस्थ रहना है।
अगर तुम प्रेम से भरे हो, तो प्रेम देना ही पड़ेगा अगर स्वस्थ रहना है।
यह किसी पर दया नहीं है। यह अपने पर ही दया है। यह समझ है। इसका करुणा से कुछ लेना-देना नहीं है। इसलिए बुद्ध ने कहा है, जहां प्रज्ञा है वहां करुणा चली आती है छाया की तरह। जहां समझ है वहां करुणा चली आती है छाया की तरह। समझ असली बात है। करुणा वगैरह तो सजावट-शृंगार है। हो ही जाता है। "यदि अपने को प्रिय समझे।"
लेकिन कौन अपने को प्रिय समझता है? यह यदि बहुत बड़ा है। यह तुम्हारी छाती पर पत्थर जैसा रखा है। हजारों लोगों को गौर से देखने के बाद, निरीक्षण करने के बाद, उनके जीवन की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करने के बाद मुझे यह दिखायी पड़ा कि लोग अपने को घृणा करते हैं, प्रेम तो बड़ी दूर है। लोग सख्त नफरत करते हैं। लोग अपने से बेजार हैं, परेशान हैं। लोग अपने से छुटकारा चाहते हैं। इस छुटकारे को बहुत ढंग से तुम देख सकते हो, अगर तुम्हें ख्याल में आ जाए बात।
समझो। जब भी तुम दर्पण के सामने खड़े होते हो, तो क्या तुमने नहीं चाहा
कि नाक जरा लंबी होती! कि आंख जरा और मछली जैसी होती! कि ओंठ जरा और रंगीन होते! कि चेहरे पर जरा और सुर्खी होती! क्या चेहरा दिया है भगवान ने! शिकायत नहीं उठी? सुंदर से सुंदर आदमी को भी शिकायत उठती है। सुंदर से सुंदर आदमी भी स्वीकार नहीं कर पाता कि बस, यही होने की मेरी योग्यता थी, यही मेरी पात्रता थी। यह तुमने क्या बना दिया? कुछ न कुछ भूल मिल ही जाती है।
और मन की आदत है भूलों में उत्सुकता लेने की। एक दांत टूट जाए, तब देखो, जीभ वहीं-वहीं जाती है। लाख उपाय करो, समझाओ कि क्या फायदा! और दांत जब था तब कभी भी न गयी थी! अब दांत नहीं है, खाली जगह है, जीभ वहीं-वहीं जाती है। अभाव में मन को बड़ा रस है।
तो जो नहीं है, उसको मन देखता है; जो है, उसे नहीं देखता। तुम यह नहीं देखते कि तुम्हारे पास दो आंखें हैं। अंधे भी हो सकते थे। तुम अहोभाव से नहीं भरते कि हे प्रभु, तूने आंखें दीं! हमने कुछ किया तो न था, ऐसा कुछ पुण्य तो न कमाया था कि तू आंखें देता। न देता तो क्या करते? न देता तो किससे शिकायत करते? न देता तो कहां सिर पीटते? जिनको नहीं दी हैं, वे क्या कर रहे हैं? क्या कर लेंगे? कौन है वहां खाली आकाश में सुनने बैठा? तूने आंखें दीं!
लेकिन नहीं, उसका अहोभाव पैदा नहीं होता। मछली का आकार न दिया आंख में, और कवि तो मछलियों के आकार की चर्चा कर रहे हैं! दांत तूने दिए ऊबड़-खाबड़। मोतियों का हार न दिया। मोतियों जैसे चमक जाते अंधेरे में! कविताओं

में तो ऐसा ही लिखा है। ये कहां के गंदे, पीले, ऊबड़-खाबड़ दांत दे दिए कि हंसने तक में जी सकुचाता है? डरते हैं कि कहीं दांत दिखायी न पड़ जाएं। लोग हंसने को दांत निपोरना कहते हैं। लेकिन दांत दिए, इसके लिए धन्यवाद नहीं है। तुम्हारी कल्पना के न दिए, इसलिए शिकायत है।
यह दर्पण के सामने ही नहीं, यह तुम्हारी पूरी जिंदगी की कहानी है। कोई लंबा दिखायी पड़ गया, तुम अचानक छोटे हो गए। सिकुड़ गए। यह क्या किया? केवल पांच फीट? पांच फीट छह इंच? और दुनिया में छह-छह फीट के लोग घूम रहे हैं! यह कैसा छोटा बना दिया? कुछ भी है तुम्हारे पास, वह तुम्हें दिखायी नहीं पड़ता।
मैंने सुना है, एक ठिगना सा आदमी एक सर्कस के दफ्तर में पहुंचा। मैनेजर से मिलना चाहा, मिलने की सुविधा मिल गयी, क्योंकि ऐसे लोगों में सर्कस को उत्सुकता होती है। और उसने जो चिट्ठी लिखकर भेजी, उसमें उसने लिखा था, मैं दुनिया का सबसे बड़ा छोटा आदमी हूं। वह मैनेजर भी हैरान हुआ-- सबसे बड़ा छोटा आदमी! बुलाओ। देखा तो एक ठिगना आदमी खड़ा है। होगा मुश्किल से चार फीट। उसने कहा, तेरे को किसने ख्याल दिया सबसे बड़े होने का? उसने कहा, गौर से पढ़ो, छोटे आदमियों में सबसे बड़ा हूं। सबसे बड़ा छोटा आदमी। ठिगने और भी हैं, मुझसे भी ज्यादा। सभी ठिगनों को अगर तुम इकट्ठा कर लो, तो मैं उनमें सबसे बड़ा हूं।
यह आदमी बड़ा धार्मिक रहा होगा। इसकी दृष्टि देखो। इससे कुछ सीखो। इसने अपने छोटेपन में भी बड़प्पन खोज लिया। यह अपने को प्रेम कर सकेगा।
तुमने अपने बड़प्पन में भी छोटापन ही खोजा है, तो तुम घृणा करोगे। आखिर प्रेम की पात्रता तो होनी चाहिए। प्रेम तुम करोगे कैसे? तुमने अपनी निंदा ही की है। शरीर की ही नहीं, मन की भी, बुद्धि की भी। हर चीज की। और तुम्हें चारों तरफ से निंदा ही मिली है।
मां ने कहा, यह मत करना, यह करना गलत है। बाप ने कहा, वहां मत जाना, वहां जाना गलत है। वहां जाने का तुम्हारे भीतर मन था। अब तुम क्या करोगे? अगर जाते हो, तो उनके साथ दोस्ती टूटती है जिन पर जीवन निर्भर है। इतना महंगा सौदा करने योग्य नहीं मालूम होता। माना कि सिनेमा जाने की तबीयत थी और मंदिर जाने की कोई इच्छा न थी। लेकिन सिनेमा जाना इतना बहुमूल्य नहीं मालूम पड़ता है कि उनसे संबंध तोड़ लो जिन पर जीवन निर्भर है, जिनके ऊपर तुम निर्भर हो। सांसें जिनके सहारे चल रही हैं; पेट जिनके सहारे भर रहा है, छप्पर जिनके सहारे मिला है, उनको नाराज करना महंगा सौदा है। जाना तो सिनेमा था, गए मंदिर।
अब तुम अपने को दोष दोगे, भीतर-भीतर तड़फोगे कि मुझमें भी कैसी गंदी वासनाएं उठती हैं--सिनेमा जाने की। अब जब मुझमें गंदी वासनाएं उठती हैं और मंदिर जाने की तो उठती ही नहीं--जाता हूं तो भी नहीं उठतीं, जाता हूं तो भी भागने का मन रहता है कि कहां फंस गए--तुम निंदा न करोगे तो क्या करोगे! तुम्हारे भीतर निंदा उठेगी। तुम कहोगे, मैं बुरा हूं। सारी दुनिया भली मालूम पड़ती है। देखो, मंदिरों में लोग बैठे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं। एक मैं, पापी, सिनेमा जाना चाहता था।
तुम्हें पता नहीं, मंदिर में बैठे अधिक लोगों की यही हालत है। वे भी जाना चाहते थे। मगर उनके भी मां-बाप थे और सिखा गए। और अभी तक तड़फ रहे हैं। जाना कहीं और था, पहुंच कहीं और गए।
अब कठिनाई यह है कि अगर तुम मंदिर जाओ और सिनेमा जाना था, तो तुम्हारे
मन में अपराध-भाव पैदा होगा। तुम्हारे मन में निंदा आएगी कि मेरे भीतर कुछ बुरा स्वर है, कुछ शैतान की आवाज है, भगवान की कोई पुकार नहीं, मैं कुछ पापी हूं। अगर तुम सिनेमा चले जाओ, तो भी तुम शांति से सिनेमा न देख सकोगे। वहां बैठकर भी निंदा चलती रहेगी, यह मैंने क्या किया? यह मेरा कैसा भाव है? मंदिर क्यों न गया? यह मैंने जरा बड़ा महंगा सौदा कर लिया।
जीवन का सारा शिक्षण ऐसा है कि उससे आत्मनिंदा पैदा होती है। प्रेम
तो पैदा होना मुश्किल है। प्रेम की तो तभी संभावना है, जब तुम जैसे हो वैसे ही स्वीकार किए जाओ। जब तुम जैसे हो उसके लिए ही स्वीकार किए जाओ। जब तुम्हारा परिवार तुम्हें सिर-आंखों ले ले, जैसे हो वैसे ही। कोई तुममें

रूपांतरण करने की बात नहीं। तुममें बदलाहट का कोई सवाल नहीं। तुम अन्यथा होते, ऐसी कोई आकांक्षा नहीं।
लेकिन ऐसी दुनिया तो अभी पैदा नहीं हुई। ऐसा परिवार तो अभी जन्मा नहीं। अभी तो दूसरों की आकांक्षाएं तुम्हें चलाती हैं। फिर जिंदगीभर यही होता है। पत्नी पति को चलाती है, पति पत्नी को चलाता है। जब तक तुम बेटे थे, बाप तुम्हें चलाता था। फिर जब तुम बाप हो जाओगे, तो तुमने तरकीबें सीख लीं तब तक, तुम बेटे को चलाने लगोगे। लोग पुनरुक्ति करते हैं। लकीरें दोहराते हैं।
कभी-कभी गौर से देखना, जब तुम अपने बेटे को डांट रहे हो, जरा गौर से देखना, तुम्हारा बाप तुम्हारे भीतर से तो नहीं बोल रहा है! तुम पाओगे उसे बोलता हुआ। तुम सिर्फ कंप्यूटर हो। यह बाप तुम्हारे दिमाग में डाल गया यह शब्द, वही तुम बोल रहे हो। तुम वही दोहराए जा रहे हो--यंत्रवत। न तुमने अपने को प्रेम किया, न तुम दूसरे को स्वयं को प्रेम करने दोगे।
इस जगत की बीमारी सामूहिक है। यहां कोई एकाध आदमी बीमार होता, तो ठीक था। यहां सारे लोग बीमार हैं। यहां चमत्कार तो यह है कि कोई एकाध स्वस्थ हो जाए। इसलिए बुद्ध कहते हैं, यदि। यदि बड़ा है, छोटा नहीं है। भाषा का नहीं है, अस्तित्व का है।
"यदि अपने को प्रिय समझे।"
अगर तुम अपने को प्रेम करते हो, तो तुम्हारी जिंदगी बदल जाएगी। तुम्हारे जीवन में धर्म का सूत्रपात, धर्म का प्रारंभ होगा। तुम क्रांति से गुजर जाओगे। बड़ी से बड़ी क्रांति स्वयं से प्रेम है। क्योंकि तब तुम और ढंग से चलोगे, और ढंग से बैठोगे। तब तुम एक-एक छोटी-छोटी बात में जागे रहोगे।
जो अपने को प्रेम करता है, वह अपनी हिफाजत करता है। जो अपने को प्रेम करता है, वह अपनी सुरक्षा करता है। जो अपने को प्रेम करता है, वह अपने ऊपर ध्यान रखता है।
तुम्हारा ध्यान तो कहीं और है। लोगों को देखता हूं, धन पर उनका ध्यान है, अपने पर नहीं। धन को प्रेम करते होंगे। धन के लिए मर मिटेंगे, जान दे देंगे।
कहते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन को चोरों ने पकड़ लिया था और उन्होंने कहा
कि तू धर दे जो तेरे पास हो। चाबी भी, बैंक का एकाउंट भी, और नहीं तो तेरी जान ले लेंगे। बोल क्या करता है? उसने कहा, जरा सोचने भी तो दो भाई! अब विकल्प दो ही हैं। वे कह रहे हैं, समझा कि नहीं तूने? दो ही विकल्प हैं। या तो धन दे दे, या तेरे प्राण ले लेंगे। उसने कहा, जरा सोचने दो। वह जरा देर लगाने लगा सोचने में। चोरों ने कहा, जल्दी करो, सोचना क्या है? उसने कहा, तो तुम जान ही ले लो, क्योंकि धन तो बड़ी मुश्किल से कमाया है, और फिर बुढ़ापे में काम भी आएगा। जान ले लो, मुफ्त मिली है। कमाई भी नहीं। और धन गया और जान बच गयी, तो क्या करेंगे? जान गयी, धन बच गया, सब ठीक है।
इस पर तुम हंसना मत। यही तुम्हारी हालत है। जान बेचते हो, पैसे इकट्ठे करते हो। प्राण काट-काटकर बेचते हो बाजार में, आत्मा बेचते हो, दो-दो पैसे के लिए। फिर पैसे इकट्ठे करके मर जाते हो। आखिर तुम्हारी पूरी जिंदगी में करते क्या हो? कुछ इकट्ठा करते हो। खुद तो खोते चले जाते हो। वस्तुएं इकट्ठी कर लेते हो, बड़ा मकान बना लेते हो, तिजोड़ी भर लेते हो, नाम पर बड़ी जमीन का पट्टा लिखवा लेते हो। इस सबको तुम प्रेम कहते हो? तुम हत्यारे हो, तुम आत्मघाती हो।
जो लोग जहर खाकर मर जाते हैं, उनमें और तुममें कोई बुनियादी अंतर नहीं है। तुम धन खाकर मरते हो, वे जहर खाकर मरते हैं। तुम मकान खाकर मरते हो, वे जहर खाकर मरते हैं। फर्क अगर होगा तो इतना ही होगा कि वे थोड़े हिम्मतवर हैं, तुम कायर हो। तुम धीरे-धीरे मरते हो, वे इकट्ठा मर जाते हैं। तुम चिल्लर मरते हो--इकन्नी मरे, दुअन्नी मरे, चौअन्नी मरे--ऐसे मरते हो। सोलह आना पूरा करने में तुम सत्तर-अस्सी साल लगाते हो। वे रुपया का रुपया मर जाते हैं। सीधा का सीधा मर जाते हैं। उनमें और तुममें जो फर्क होगा, वह

कायरता का होगा, साहस का होगा; लेकिन मात्रा का ही होगा, गुण का नहीं हो सकता। मरते तो तुम भी हो।
ध्यान रखना, अगर तुमने अपने को प्रेम किया होता, तो तुम चाहे धन खोने
का मौका आता तो खोते, लेकिन अपने को बचाते। वही बुद्ध कह रहे हैं। अत्तानं चे पियं--जिसने अपने को प्रेम किया। तो वह अपने को सुरक्षित रखेगा।
अपनी जिंदगी पर फिर से तुम एक पुनर्विचार करना कि तुम अब तक क्या करते रहे हो? यह तुम्हारा किस ढंग का सौदा चल रहा है?
जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा।
उलटा लगेगा सूत्र बुद्ध से, उलटा नहीं है। एक ही मतलब है। कहने के ढंग अलग हैं। जीसस कहते हैं, जो अपने को बचाएगा।
तुम धन किसलिए इकट्ठा करते हो? तुम्हारा तर्क यही है कि अपने को बचाने
के लिए इकट्ठा करते हैं। मकान किसलिए बड़ा बनाते हो? इसीलिए कि अपने को बचाने के लिए। तिजोड़ी में अपने जीवन को नष्ट कर देने वाला भी यही तर्क को सोचकर चलता है। उसकी तर्क-सरणी भी यही है कि यह सुरक्षा का इंतजाम कर रहा है।
जीसस कहते हैं, जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा।
यह बचाने का ढंग न हुआ, यह तो खोने का ढंग हुआ। यह सुरक्षा झूठी है। असली सुरक्षा क्या है? तुम जिसे सुरक्षा कहते हो वह भी सुरक्षा नहीं है, क्योंकि वह आत्मा-घृणा पर खड़ी है। और बुद्ध जिसे सुरक्षा कहते हैं, वह बड़ी दूसरी सुरक्षा है।
जिस दिन घर से जाते थे, और सारथी ने कहा, यह क्या पागलपन करते हैं? इतना घर-द्वार, धन-संपत्ति, पत्नी, पिता, मां, सब भरे-पूरे परिवार को... कहां भाग जाते हैं? और इस सबके मालिक आप हैं! अकेले बेटे थे, इकलौते बेटे थे बाप के। यह संपत्ति को छोड़कर कहां जाते हो? पागल हो गए हो? बुद्ध ने कहा, संपत्ति की तलाश में जाता हूं। यह सुरक्षा छोड़कर कहां जाते हो? बुद्ध ने कहा, सुरक्षा की तलाश में जाता हूं।
वह बूढ़ा समझा होगा, लगता नहीं। उसने सोचा होगा, निश्चित पागल हो गया है। इससे ज्यादा सुरक्षित और कौन है? इन महलों में, इस सारे साम्राज्य में इससे ज्यादा सुरक्षित और कौन है? राजा का इकलौता बेटा। फूल इसके रास्ते पर बिछे रहते हैं। चारों तरफ वैभव है। चारों तरफ सुख-सुविधा है। कांटे इसने कभी जाने नहीं, यह पागल जा कहां रहा है? लेकिन बुद्ध कहते हैं, सुरक्षा की तलाश में। वहां पीछे, जिसको तुम महल कहते हो, बुद्ध ने कहा, वहां आग की लपटों के सिवा कुछ भी नहीं है। वहां आखिर में चिता ही बनेगी। वहां चिता की तैयारी चल रही है, भाग जाओ! जितने जल्दी हो, निकल जाओ!
तो जिसे तुम सुरक्षा कहते हो, बुद्ध उसे नासमझी कहते हैं। जिसे बुद्ध सुरक्षा कहते हैं, उसे तुम्हें समझना होगा, वह क्या है!
"यदि अपने को प्रिय समझे तो अपने को सुरक्षित रखे।"
यह सुरक्षा बैंक-बैलेंस की नहीं है। यह सुरक्षा आत्मधन की है। आत्मवान बने। अपना मालिक बने। दूसरे की मालकियत झूठी है, क्योंकि मौत उसे छीन लेगी। मौत से बचने के उपाय व्यर्थ हैं, क्योंकि मौत तुम्हारे सब उपाय तोड़ देगी।
मैंने सुना है, एक सम्राट ने मौत के डर के कारण एक महल बनाया। उसने ऐसा महल बनाया कि उसमें एक खिड़की भी न रखी। एक ही दरवाजा रखा बाहर-भीतर आने- जाने को। दरवाजे पर पहरे पर पहरे लगा दिए। पहरे पर पहरे लगाने पड़े, क्योंकि एक पहरेदार हो, उसका क्या भरोसा! धोखा दे जाए, दुश्मन से मिल जाए। पहरे पर पहरेदार, उस पर भी पहरेदार, ऐसे पंक्तिबद्ध पहरेदार रखे।
फिर वह अपने पड़ोसी सम्राट को महल दिखाने ले गया। वह बड़ा चकित हुआ पड़ोसी सम्राट। उसने कहा, सुरक्षा खूब की है। ऐसा ही महल मैं भी बनवा लूंगा। तुम्हारे कारीगर पहुंचा दो। जब वे महल के द्वार पर खड़े होकर बात कर रहे थे, एक भिखारी सामने बैठा था, वह हंसने लगा उनकी बातें सुनकर। जब पड़ोसी सम्राट ने कहा कि खूब सुरक्षा का इंतजाम कर लिया है, कोई खतरा नहीं है अब इस महल में--कोई भीतर जा नहीं सकता, खतरे का सवाल ही नहीं--वह भिखारी हंसने लगा। दोनों ने उसकी तरफ चौंककर देखा और कहा कि तुम हंसे क्यों? यह अभद्रता

है। उस भिखारी ने कहा, हो अभद्रता, लेकिन हंसे बिना न रह सका, और कुछ कहे बिना भी न रह सकूंगा। क्या तुम कहना चाहते हो? उसने कहा कि मैं यहां बैठा रोज देखता हूं--यहीं भीख मांगता हूं--इसी महल के बनने को मैं देखता रहा हूं, बस मुझे एक इसमें खतरा दिखता है कि दरवाजा इसमें एक है, इससे मौत घुस जाएगी। और कोई घुसे न घुसे। तुम ऐसा करो, भीतर हो जाओ, यह दरवाजा भी बंद करवा लो। फिर कोई भीतर न आ सकेगा।
उस राजा ने कहा, तू पागल हुआ है! अगर मैं भीतर हो जाऊं और यह दरवाजा भी बंद करवा लूं, तब तो मैं जीते-जी मर गया। यह तो कब्र हो गयी। तो उसने कहा, अब तुम मेरे हंसने का कारण समझ लो। कब्र तो यह हो ही गयी, एक दरवाजे वाली है, बस।
तुम कितनी ही सुरक्षा करो, मौत से कहां भाग पाओगे? अगर बहुत सुरक्षा की, तो यही मौत हो जाएगी। तुमने जिसे सुरक्षा समझा है अब तक, वह सिवाय मौत के और क्या है? तुमने उस सुरक्षा के नाम पर जीवन को बचाया कहां, गंवाया। बुद्ध किसे सुरक्षा कहते हैं? वे कहते हैं, भीतर के सत्य को जान लेने में सुरक्षा है। तुम कौन हो, इसे पहचान लेने में सुरक्षा है। तुम्हारा स्वरूप क्या है, उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाने में सुरक्षा है, जाग जाने में सुरक्षा है। क्योंकि जो उसके प्रति जागा, फिर उसकी कोई मौत नहीं। मौत तुम्हारी मूर्च्छा के कारण है। तुम्हें लगता है कि तुम मरते हो।
"पंडित को तीन पहरों में से किसी एक में अवश्य जागना चाहिए।"
बुद्ध पंडित की परिभाषा यही करते हैं--प्रज्ञावान। जो जागा हुआ है। पंडित की परिभाषा बुद्ध यह नहीं करते कि जो शास्त्र को जानता है, वेदज्ञ है। पंडित की परिभाषा है बुद्ध की कि जो जागा हुआ है।
कम से कम तीन पहरों में एक पहर तो जागो। कौन से तीन पहर हैं? मनुष्य की चेतना तीन हिस्सों में बंटी है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। आठ घंटे तुम जागे हो, और आठ घंटे तुम सपने देखते हो, और आठ घंटे तुम सोते हो। जरूरी नहीं कि तुम जब जागे हो तब तुम जागे हो। ऐसा होना चाहिए था। ऐसा हुआ नहीं है। अभी तो तुम जिसको जागरण कहते हो वह जागरण न के बराबर है, भीतर तो सपने चलते ही रहते हैं, नींद पकड़े ही रहती है।
तुम बैठे हो, कोई अचानक आकर पूछ लेता है, क्या कर रहे हो? तुम कहते हो, कुछ नहीं। मगर यह उत्तर तुम्हारा सही है? तुम सपना देख रहे थे। तुम्हें कहना चाहिए, मैं सो गया था, सपना देखता था। या जागा-जागा सपना देखता था। दिवास्वप्न देखता था। तुम कहते हो, कुछ नहीं। कुछ नहीं, तुम आत्मरक्षा करते हो। तुम कहते हो, सपने की बात कहना बेहूदी मालूम पड़ेगी। तुम कहते हो, कुछ नहीं। लेकिन तुम्हारे कुछ नहीं में तुम क्या छिपा रहे हो?
तुम जब भी खाली हो, तुमने कभी अपने को खाली पाया? जब भी तुम खाली हो, सपने घिर जाते हैं, भीड़ लग जाती है, बाजार भर जाता है। तुमने कितनी बार नहीं अपने को राष्ट्रपति बनते देखा सपनों में! कितनी बार नहीं तुम सम्राट बन गए! कितनी बार नहीं तुम साम्राज्ञियों से विवाह रचा लिए! कितनी बार क्या से क्या नहीं हो गए हो! जागते-जागते। सोए-सोए की तो बात छोड़ो, सोए-सोए का तो हिसाब ही अभी रखना मुश्किल है। अभी तो तुम जागे-जागे भी सोए-सोए ही हो।
तो बुद्ध कहते हैं, कम से कम जागृति को तो जागृति बनाओ, फिर आगे का आगे सोचेंगे। इतनी तो बुद्धि प्रदर्शित करो कि आठ घंटे जब तुम जागे रहते हो, तब कम से कम जागे रहो। एक पहर तो जागो। जागरण अगर जागरण हो जाए, आठ घंटे अगर तुम बिना स्वप्न के, एक पहर अगर तुम बिना स्वप्न के जाग लो--कोई मन में विचार न हो, कोई मन में धारणा न हो, कोई तरंगें न उठती हों--सिर्फ होश हो। चलो, तो जागे; बैठो, तो जागे; भोजन करो, तो जागे; भीतर स्वच्छ प्रकाश हो, जरा भी धुआं न हो, तो तुम अचानक हैरान हो जाओगे, तब तुम सपना रात में भी न देख सकोगे। रात और दिन से सपने का कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारी मूर्च्छा से लेना-देना है। तब तुम रात सोए भी रहोगे और जागे भी रहोगे। अभी तुम दिन में जागे भी हो और सोए हो।
कृष्ण का प्रसिद्ध वचन तुम्हें याद है, उसका विपरीत वचन भी ख्याल रखना, वह गीता में है नहीं। या निशा सर्वभूतानाम तस्याम जागर्ति संयमी।

जब सब सो जाते हैं तब भी संयमी पुरुष जागा हुआ है। रात में भी। ऊपर से तुम पाओगे कि वह सोया हुआ है। लेकिन शरीर ही सोता है संयमी का, चैतन्य नहीं सोता। चैतन्य का दीया जलता ही रहता है। ध्यान का दीया जलता ही रहता है। शरीर ही विश्राम करता है, शरीर को ही विश्राम की जरूरत भी है, क्योंकि शरीर ही थकता है।
ऐसा समझो, जब तुम्हें भूख लगती है तो शरीर को ही भूख लगती है, चेतना को थोड़े ही भूख लगती है। जब तुम भोजन करते हो, तो शरीर को ही भोजन मिलता है, चेतना को थोड़े ही भोजन मिलता है। शरीर भूखा होता है, भोजन चाहिए। शरीर श्रम करता है, थकता है, विश्राम चाहिए। यह शरीर का ही हिसाब है। शरीर बीमार होता है, औषधि चाहिए। औषधि तुम्हारे चैतन्य में थोड़े ही जाती है।
चैतन्य तो पार खड़ा है। श्रम में, विश्राम में; स्वास्थ्य में, बीमारी में; भूख में, प्यास में, भोजन में, सब तरफ पार खड़ा है। चैतन्य तो वह है जो देख रहा है। जब तुम्हें भूख लगती है, तो जिसको पता चलता है कि भूख लगी, वह चैतन्य है। जिसको भूख लगती है, वह शरीर है। जिसको पता चलता है कि भूख लगी है, वह चैतन्य है। जब पेट भर गया, तृप्ति हुई, तो जिसको पता चलता है तृप्ति हुई, वह चैतन्य है। और जिसकी तृप्ति होती है वह शरीर है। प्यास लगी, कंठ जलने लगा, जो जल रहा है वह शरीर है। जिसको पता चल रहा है, वह चैतन्य है। फिर प्यास को बुझा लिया, मिल गया झरना शीतल जल का, पी लिया दिल भरके, कंठ शांत हुआ, शीतल हुआ। जो तृप्त हुआ वह शरीर है, जिसने जाना वह चैतन्य है।
इसीलिए तो मुर्दे को भूख न लगेगी, कितने ही दिन रखे रहो। भूखा पड़ा रहेगा, लेकिन पता चलने वाला मौजूद न रहा। बेहोश आदमी पड़ा हो, प्यास लगी रहे, पता न चलेगा। प्यास तो लगी रहेगी, कंठ तो जलता रहेगा, लेकिन जिसको पता चल सकता है, वह मौजूद नहीं है, बेहोश है। शराब पीकर पड़ा है, चेतना और शरीर का संबंध टूट गया है--बीच में शराब आ गयी है--शराब ने अंधेरा कर दिया है। जो सेतु चेतना को शरीर से बांधते हैं, वे शिथिल हो गए हैं। वे खबर नहीं दे पाते हैं, वे असमर्थ हो गए हैं। जैसे टेलिफोन की लाइन बिगड़ गयी हो। इधर तुम बैठे हो फोन लिए, उधर तुम्हारा मित्र बैठा है फोन लिए, लेकिन कोई उपाय न रहा। शराब जैसे बीच के सेतु को बिगाड़ देती है।
इसीलिए तो जब किसी का आपरेशन करना हो तो बेहोश करना पड़ता है। बेहोश का मतलब कुल इतना है कि बीच के सेतु को बेहोश कर देते हैं। चेतना चेतना बनी रहती है, शरीर शरीर बना रहता है, दोनों जुड़े नहीं रह जाते। फिर तुम शरीर को काट डालो--नहीं कि पीड़ा नहीं होती, पीड़ा तो होगी ही, लेकिन पता जिसको चल सकता था, वह मौजूद नहीं है।
योगी रात की गहरी निद्रा में भी जागा है। इससे उलटा सूत्र भी ख्याल रखना चाहिए। तुम दिन की भरी दोपहरी में जागे हुए भी सोए हो।
तुम अपने को सोया-सोया पकड़ो। बार-बार झकझोरो। बार-बार याद दिलाओ--यह क्या कर रहे हो? तुम पाओगे, बार-बार झपकी लग जाती है।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, घड़ी को अपने सामने रख लो, सेकेंड के कांटे पर नजर रखो। और इतना ही करो कि सेकेंड का कांटा भूले न एक मिनट तक-- साठ सेकेंड तक। जब एक वर्तुल पूरा हो जाए, फिर कोई फिकर नहीं। लेकिन साठ सेकेंड भूले न, तुम देखते रहो, जागते रहो, जागते रहो, एक क्षण को भी बीच में अंतराल न पड़े। और शिष्य आकर कहते, बड़ा मुश्किल है।
तुम भी करना, तो पाओगे कि बड़ा मुश्किल है। दो-चार सेकेंड तक लगता है कि होश, फिर खो गए, पहुंच गए बाजार, खरीदने लगे सामान, तब अचानक ख्याल आया, अरे! दो-चार सेकेंड तब तक गुजर गए। फिर किसी तरह बांध-बूंधकर अपने को ले आए, दो- चार सेकेंड चले, फिर गए।
रुकते ही नहीं घर में तुम। यहां तो तुम रुकते ही नहीं, सदा कहीं और सदा कहीं और। तुम यात्रा पर ही हो। घर कभी आते ही नहीं। एक मिनट भी पूरे तुम होश से नहीं रह सकते हो। एक पहर जो रह जाए, उसको बुद्ध कहते हैं, वह पंडित। महावीर ने कहा है, अड़तालीस मिनट जो होश से रह जाए, वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा। अड़तालीस मिनट, लगता है बड़ी सरल बात है। अड़तालीस सेकेंड करोगे तब पता चलेगा। अड़तालीस मिनट! इतनी छोटी सी बात महावीर ने कही कि अड़तालीस मिनट जो जागा रह जाए, फिर उसके जिनत्व में कोई बाधा न रही। उसके

मोक्ष में फिर कोई बाधा नहीं है। लेकिन जागने का मतलब है सतत। एक क्षण को भी चूके न, गिरे न, भूले न, भटके न। अड़तालीस मिनट अड़तालीस जन्मों जैसे लगेंगे तुमको। तुम अड़तालीस मिनट में अड़तालीस से ज्यादा बार सो जाओगे। फिर झपकी खा जाओगे, फिर चौंकोगे, अरे!
लेकिन गुरजिएफ यह प्रयोग करवाता था लोगों को बताने के लिए--तुम अपनी भ्रांति छोड़ो कि तुम जागे हुए हो। इतना सा काम नहीं कर सकते। हम सोचते हैं, हम इतना काम कर रहे हैं, तो जागे हुए ही होंगे, यह हमारा तार्किक निष्कर्ष है। कार चलाकर घर आ गए, दुकान चला आए दिन भर, दफ्तर में सब काम किया, तो सोए-सोए कर रहे हैं? इतना काम कर रहे हैं तो जागे ही होंगे।
नहीं, यह निष्पत्ति गलत है। इतना काम तुम कर रहे हो रोबोट की तरह, यंत्र-मानव की तरह। तुम सीख गए हो करना, अब तुम्हें इसमें जागने की जरूरत नहीं। जब तुम ड्राइव कर रहे हो, तुम हजार बातें सोच रहे हो, ड्राइव थोड़े ही कर रहे हो। ड्राइव तो तुम्हारा यंत्रवत शरीर कर रहा है। वह तुम सीख गए, उसमें तुम कुशल हो गए। तो लोग सिगरेट पी रहे हैं, गाना गा रहे हैं, रेडियो सुन रहे हैं कार में और ड्राइव भी कर रहे हैं। तुमने कभी ख्याल किया, शरीर बिल्कुल यंत्र की तरह जहां मुड़ना है मोड़ लेता है, जहां बाएं जाना है बाएं चला जाता है, जहां दाएं जाना है दाएं चला जाता है। तुम अपने घर आ जाते हो। इस वजह से तुम सोचते हो, हम जागे हुए होंगे, अपने घर आ जाते हैं रोज-रोज। नहीं, इसको तुम बहुत होश मत समझना, यह सिर्फ कुशलता है। कुशलता होश नहीं है। इसलिए तो वैज्ञानिक कहते हैं, आज नहीं कल, हवाई जहाज से वे पाइलट को अलग कर लेंगे। यंत्र ही चला लेगा।
मैंने सुना है, पहला प्रयोग किया गया बिना पाइलट के हवाई जहाज चलाने का। जो यात्री सवार होने को थे, उनमें से एक यात्री जरा डरा हुआ था। पाइलट के साथ ही घबड़ाहट रहती है, बिना पाइलट के जा रहे हैं, पता नहीं उतरे कि नहीं उतरे। वह जरा डरा था। उसने जाकर एयरपोर्ट के अधिकारी को पूछा कि मुझे जरा आश्वस्त कर दो। जब बेल्ट बांधने हैं, तब कोई कहेगा कि बांध लो? जब खोलने हैं, तब कोई कहेगा कि खोल लो? कब सिगरेट पीना शुरू करनी है, कब बंद कर देनी, कोई कहेगा? उसने कहा, जरूर कहेगा, घबड़ाओ मत। लेकिन गौर से सुनना, क्योंकि अगर वहां से आवाज आयी, बेल्ट खोल दो और तुमने न सुना; तुमने पूछा, क्या? तो तुम समझ लेना तुम अपने ही से बात कर रहे हो। वहां कोई भी नहीं है, टेप है। वह यंत्रवत सब दोहरा देगा।
कहते हैं, जिस दिन यंत्र-मानव से हवाई जहाज चलने लगेगा, दुर्घटनाएं कम
हो जाएंगी। तुम हैरान होओगे। जहां-जहां यंत्र आ जाता है, वहां कुशलता बढ़ जाती है, यह तो तुम्हें भी पता होगा। आदमी से भूलें होती हैं, यंत्र से भूलें नहीं होतीं। इसलिए भूलें तुम से न होती हों, इस कारण तुम यह मत सोचना कि तुम बड़े जागे हुए पुरुष हो। यंत्र से तो भूलें होती ही नहीं। यंत्र तो पुनरुक्त किए जाता है। जो जानता है, उसको दोहराए चला जाता है।
इसलिए तो जब तुम पहले-पहले कार को चलाना सीखते हो तब मुश्किल आती है। असली मुश्किल कार के कारण नहीं आती। असली मुश्किल होश के कारण आती है। सीखना है तो थोड़ा सा होश रखना पड़ता है। नहीं तो सीखोगे कैसे?
इसलिए कृष्णमूर्ति कहते हैं, जिसको होश में रहना है, उसे सदा सीखते रहना चाहिए। लर्निंग! सीखते ही रहना चाहिए। उसे एक क्षण को भी ऐसा नहीं सोचना चाहिए, सीख लिया। जहां तुमने कहा, सीख लिया, वहीं होश गया। सीख लिए का मतलब, अब होश की जरूरत न रही, शरीर ही कर लेगा। टाइपिंग सीख ली, बात खतम हो गयी। ड्राइविंग सीख ली, बात खतम हो गयी। एक भाषा सीख ली, बात खतम हो गयी। अब तुम्हें कोई जरूरत नहीं हिसाब रखने की।
नींद में भी लोग बड़बड़ाते हैं। बिल्कुल व्याकरणयुक्त वाक्य भी बोल देते हैं। नींद में! इसका मतलब यह थोड़े ही कि वे जागे हुए हैं। नींद में भी तुम अपनी ही भाषा बोलते हो, दूसरे की थोड़े ही बोलने लगते हो। बेहोशी में भूल थोड़े ही करते हो कि सोए हैं, इसलिए किसी की भी बोलने लगे। अपनी ही बोलते हो।
मेरे एक मित्र जर्मनी में थे। वे वहां बीस साल थे। फिर बीमार पड़े।
जर्मन भाषा उन्हें ऐसी हो गयी जैसे मातृभाषा हो। अपनी भाषा तो भूल ही गए।

फिर बीमार पड़े। तो बड़ी मुश्किल खड़ी हुई। क्योंकि जब वे बीमारी में बेहोशी में बड़बड़ाते, तो वे जर्मन न बोलते। तो डाक्टर मुश्किल में पड़े कि वे क्या कहते हैं! तो किसी हिंदुस्तानी को खोजना पड़ा। बीस साल पहले की भाषा भी यंत्र में सुरक्षित है। बेहोशी में वापस सक्रिय हो गयी।
इसलिए तो तुम भूल नहीं पाते; एक दफा तैरना सीख लिया, सीख लिया; एक दफा कार चलाना सीख लिया, सीख लिया। वह हो गयी तुम्हारी, वह शरीर में उतर गयी। शरीर में जाकर शरीर के यंत्र में समाविष्ट हो गयी।
वही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है जो कभी ज्ञानी नहीं होता, सीखता
ही रहता है। वही व्यक्ति गुरु होने के योग्य है जिसका शिष्यत्व आत्यंतिक है। जो सीखता ही चला जाता है। जो मरते दम तक सीखता रहता है। जो आखिरी क्षण तक सीखता रहता है। क्योंकि सीखते रहो, तो ही तुम जागे रह सकते हो। इसलिए नालेज, ज्ञान, कीमत का नहीं है। लर्निंग, सीखना, कीमत का है।
"यदि अपने को प्रिय समझे तो अपने को सुरक्षित रखे। पंडित को तीन पहरों में से किसी एक में अवश्य जागना चाहिए।"
तो ही पंडित है। सुरक्षा का अर्थ समझना। सुरक्षा है स्वयं के जागने में। सुरक्षा है स्वयं के पहरेदार को जगा लेने में। सुरक्षा है भीतर के अंधेरे को भीतर के दीए से बुझा देने में, मिटा देने में। सुरक्षा है होश में, स्मृति में, ध्यान में। लेकिन यह सब संभव है तभी जब तुम अपने को प्रेम करो। और तुम्हें चारों तरफ से लोग खींच रहे हैं कि तुम अपने को प्रेम मत करो।
पत्नी कह रही है, मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारी पत्नी हूं। सात फेरे लगाकर ले आए थे, भूल गए? पत्नी कहती है कि अब तुम उतना प्रेम करते नहीं मालूम पड़ते जितना पहले करते मालूम पड़ते थे। याद करो वे पुराने दिन! पति कह रहा है, मुझे प्रेम करो, मैं पति हूं; और पति तो परमात्मा है। सब एक-दूसरे से कह रहे हैं प्रेम करो। कोई किसी की तरफ यह नहीं देख रहा है कि वहां प्रेम घटा भी है या नहीं। अगर वहां घटा ही नहीं है, तो कोई लाख उपाय करे, कैसे करेगा? ज्यादा से ज्यादा दिखावा कर सकता है।
इसीलिए तो संसार में प्रेम का दिखावा है, प्रेम नहीं। प्रेम का काफी प्रचार है, विज्ञापन है, प्रेम नहीं। जो नहीं है, उसको छिपाने के लिए खूब विज्ञापन भी करना पड़ता है। तो लोग एकदम प्रेम ही प्रेम की बातें करते हैं। होता तो इतनी जरूरत न थी बात करने की। फूल तो कुछ कहते नहीं कि सुगंध है। सुगंध ही बता देती है। तुम वही तो जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर अपने चारों तरफ कहते रहते हो, जो नहीं है। इस तरह तुम दूसरों को भी धोखा दे देते हो और डर है कि कहीं अपने को भी धोखा न दे लो। क्योंकि बार-बार दोहरायी गयी बातें सत्य जैसी मालूम होने लगती हैं। सब तरफ से आकांक्षा है तुम्हारी--प्रेम दो! और कोई तुमसे नहीं कहता कि प्रेम बनो। मैं तुमसे यही कह रहा हूं, प्रेम बनो। देना वगैरह पीछे हो जाएगा, अपने से हो जाएगा।
कोई नासेह कोई दोस्त है कोई गमख्वार
सबने मिल के मुझे दीवाना बना रखा है
कोई धर्मगुरु है, वह कह रहा है, ऐसा करो। कोई दोस्त है, वह कहता है, ऐसा करो। कोई सहानुभूति रखता है, हमदर्द है, वह कहता है, ऐसा करो। सब तरफ तुम खींचे जा रहे हो--ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। कोई नहीं कहता कि कैसे हो जाओ। वे जो तुमसे कह रहे हैं, ऐसा करो, उसमें उनका स्वार्थ होगा। तुम्हारे हित की कोई दृष्टि नहीं है।
कोई नासेह कोई दोस्त है कोई गमख्वार
सबने मिल के मुझे दीवाना बना रखा है
आदमी पागल हुआ जा रहा है। सभी आदमी करीब-करीब पागल हैं। खींचातानी इतनी है। ऐंचातानी इतनी है। कोई हाथ खींच रहा है, कोई पैर खींच रहा है। टुकड़े-टुकड़े आदमी हो गया है।
सम्हलो। अपने को प्रेम करो। छुड़ाओ यह हाथ। कहो कि पहले मुझे अपनी जड़ें जमा लेने दो। दूंगा तुम्हें छाया, लेकिन पहले जड़ें तो जमा लेने दो।
मेरे पत्तों को तो खिलने दो, मेरे फूल तो आने दो, मेरी शाखाएं तो फैलने दो

आकाश में। दूंगा जरूर तुम्हें छाया; रुकना, ठहरना, विश्राम करना, फल पकें तो खाना, लेकिन पहले मुझे जड़ तो जमाने दो।
तुम हो बीज की भांति, और कोई कह रहा है, छाया दो। तुम हो बीज की भांति, कोई कहता है, फल दो। तुम हो बीज की भांति, कोई कहता है, फूल कहां है, फूल लाओ। और उनकी बकवास में, उनकी बातचीत में तुम भी कोशिश में लग गए हो कि फूल कहां से लाऊं, चलो बाजार से ही खरीद लाऊं। उधार ही सही। प्लास्टिक के ही लगा लें। चलो धोखा दें छाया का। बातें करें कि देखो कैसी घनी छाया है, आओ विश्राम करो।
इस प्रवंचना से जागो। इसलिए बुद्ध कहते हैं--

अत्तानं चे पियं... ।

"यदि अपने को प्रिय समझो तो अपनी सुरक्षा करो।"
अक्सर तो ऐसा होता है, बीज बीज ही मर जाते हैं, खिल ही नहीं पाते।
आह उन तारों की खूंगस्ता तमन्नाए-नमूद
जो उभरते ही उफक से झिलमिला के रह गए
बहुत से तारे तो बस झिलमिलाते ही हैं और गिर जाते हैं। खून में डूबी हुई उनकी उभरने की आकांक्षाएं बस झिलमिलाकर ही समाप्त हो जाती हैं।
ऐसी ही दशा है आदमी की। सभी बड़ी अभीप्सा लेकर आते हैं--खिलेंगे, फूलेंगे, बिखरेंगे, सुगंध फैलाएंगे आकाश में, पंख फैलाएंगे, उड़ेंगे, मगर यह कुछ हो नहीं पाता। कभी-कभी हो पाता है। जिसको हो जाता है उसी को हम बुद्धपुरुष कहते हैं।
सभी को हो सकता था। लेकिन तुमने अपनी सुरक्षा न की। तुम सावचेत न हुए। तुम जागे नहीं। और करीब-करीब यह होश ऐसा नहीं है कि न आता हो, जिंदगी में बहुत बार तुम्हें लगता है कि कुछ करें। यह क्या हो रहा है? कहां गंवाए जा रहे हैं? यह किस अंधेरे में, किस स्याह रास्ते पर भटके चले जा रहे हैं! यह जिंदगी, क्यों हाथ से बिखरी चली जाती है? यह क्यों सब टूटा चला जा रहा है? ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें होश न आता हो। कभी-कभी यह होश भी आता है, लेकिन फिर-फिर तुम पुरानी आदत में संलग्न हो जाते हो।
मन आदत से जीता है। और होश आदत के विपरीत जीता है। होश को जगाना हो, तो आदत से ऊपर उठो। वहीं कठिनाई है, वहीं तपश्चर्या है। अन्यथा मरते वक्त तुम पाओगे, रोओगे! मरते वक्त अक्सर ही लोग रोते हैं। इसलिए रोते हैं, उनकी आंखें इसलिए गीली हो जाती हैं कि जिस जिंदगी में बहुत कुछ पा सकते थे, वहां कूड़ा-करकट इकट्ठा किया। और अब अगर छोड़ना भी चाहें उस कूड़े-करकट को, तो भी कोई सार नहीं। अब तो जिंदगी ही हाथ से जाती है।
हुआ एहसास पैदा मेरे दिल में तर्के-दुनिया का
मगर कब जब कि दुनिया को जरूरत ही न थी मेरी
मरते वक्त कौन संन्यस्त नहीं होना चाहता? मरते वक्त तो सभी संन्यस्त होना चाहते हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी को फांसी की सजा लगने वाली थी। उसको फांसी के तख्ते पर ले जाया जा रहा था। तख्ते पर खड़ा कर दिया गया था और सिपाहियों ने पूछा, तुम्हारी कोई आखिरी इच्छा? सिगरेट पीना चाहोगे? तो उसने कहा कि नहीं। शराब पीना चाहोगे? उसने कहा कि नहीं। उसने कहा कि बड़े पाक, बड़े पवित्र आदमी मालूम पड़ते हो! उसने कहा कि भूल में मत पड़ना, मैं शराब और सिगरेट छोड़ने की आखिरी कोशिश कर रहा हूं। अब तक सफल नहीं हो पाया, अब तो बस क्षणभर की देरी है और फांसी लगने को है। कहने को रह जाएगा। परमात्मा के सामने मौजूद होऊंगा, कह दूंगा कि सब छोड़कर आया हूं।
ऐसे धोखा न दे पाओगे। जिसे जिंदगी में पकड़ा, उसे तुम मौत में छोड़ने की बात मत करना, क्योंकि तब तो छुड़ा ही लिया जाएगा। जब छुड़ाया न जा रहा था, तब जिसने छोड़ा उसी ने छोड़ा। जब छुड़ा ही लिया गया, तब तुमने कहा कि चलो छोड़ देते हैं। तो तुमने अपने मन को समझाया। समझा लिया अंगूर खट्टे हैं।
"पहले अपने को ही उचित में लगाए और बाद में दूसरों को उपदेश दे। इस तरह पंडित क्लेश को प्राप्त नहीं होगा।"

अत्तानेमेव पठमं पतिरूपे निवेसये।

"पहले अपने को ही उचित में लगाए, बाद में दूसरों को उपदेश दे।"
क्योंकि जिंदगी स्वयं उपदेश न हो, तो सब उपदेश व्यर्थ हैं। जो मैं तुमसे कहूं, अगर वह मेरे भीतर न खिला हो, तो तुम्हारे भीतर खिलने की कोई संभावना नहीं है। जो मैं तुमसे कहूं, वह मैंने न जाना हो, तो मैंने तुम्हारा भी समय खराब किया, अपना भी समय खराब किया। और अक्सर अहंकार दूसरों को सुधारने की यात्रा पर निकल जाता है। अहंकार को गुरु होने की बड़ी आकांक्षा है।
मैंने सुना है, एक आश्रम में एक युवक आया। उसने कहा कि मुझे शिष्य बना लें, स्वीकार करें--गुरु को। गुरु ने कहा, बड़ा कठिन है। तपश्चर्या करनी होगी। अनुशासन में जीना होगा। उसने पूछा, क्या करना होगा? काम क्या है? तो गुरु ने कहा, पहले तो लकड़ियां काटनी होंगी जंगल से, सर्दी करीब आ रही है। फिर लकड़ियों का काम पूरा हो जाएगा तो चौके में बहुत काम है। वहां लगना होगा। फिर बगीचे को बोना है। खेत में काम लगा है, वहां सब लगना होगा। उसने कहा, अच्छा ठीक है, यह तो मैं समझ गया, गुरु का क्या काम है यहां? यह तो शिष्य का काम है। उसने कहा, गुरु का काम है कि बैठा रहे और लोगों को आदेश दे। तो उसने कहा, फिर ऐसा करो, मुझे भी गुरु ही बना लो।
गुरु होने की आकांक्षा स्वाभाविक है। इसीलिए तो हर आदमी सलाह दिए जाता है। ऐसी सलाहें हैं, जो अपने काम भी न आयीं। ऐसी सलाहें हैं, जो मुसीबत आएगी तो उसे याद भी न आएंगी। तुमने कभी अपने को पकड़ा है ऐसी सलाहें लोगों को देते, जिनका तुमने कभी खुद उपयोग नहीं किया? कोई क्रोधित हो जाता है, तुम कहते हो अरे, क्यों अपने जीवन को जहर में डाल रहे हो? मगर तुम जब क्रोधित होते हो, तब तुमने याद रखा? अक्सर तो ऐसा होता है कि जिनको तुम सलाह देते हो, वही तुम्हें सलाह देते हैं।
एक घर में कोई मर गया था। मैं गया। लोग रो रहे थे, कुछ लोग समझा रहे थे।
जो समझा रहे थे, उन्होंने मुझे बड़ा चौंकाया, क्योंकि जिन्होंने मौत को समझ लिया वही समझा सकते हैं। मैंने बड़े गौर से उनकी बातें सुनीं। वे कह रहे थे, आत्मा तो अमर है, क्या रोते हो! अरे, यह तो चोला बदल गया। यह तो शरीर है, जराजीर्ण वस्त्र की भांति। गीता का उल्लेख कर रहे थे। उपनिषदों के वचन दोहरा रहे थे। मैंने कहा निश्चित ही ये लोग ज्ञानी हैं।
फिर कुछ महीने बाद उनके घर में कोई मर गया। तो मैं वहां गया, वे रो रहे थे। और चकित तो मैं तब हुआ कि वे जिनके घर में समझाने गए थे, वे उनको समझा रहे थे और वही बातें समझा रहे थे कि आत्मा तो अमर है, अरे क्या रोते हो! ऐसे हम एक-दूसरे को दे रहे हैं, वह जो हमारे पास नहीं है। इससे थोड़ा सावधान रहना।
"पहले अपने को उचित में लगाए, बाद में दूसरों को उपदेश दे। इस तरह पंडित क्लेश को प्राप्त नहीं होगा।"
कहीं ऐसा न हो कि दूसरों को समझाने में ही समय व्यतीत हो जाए। तुम बिना समझे ही विदा हो जाओ। तो बहुत क्लेश को उपलब्ध होओगे।
और मजा यह है कि दूसरों ने तुम्हारी सलाह से कोई सलाह न ली। संसार में
जो चीज सबसे ज्यादा दी जाती है, वह सलाह है। और जो सबसे कम ली जाती है, वह भी सलाह है। कोई लेता किसी की सलाह! देने वाले को देने का मजा आता है, लेने वाला सकुचाता है कि कहां फंस गए, कब छुटकारा हो। कोई किसी की सलाह लेता है? सुन लेते हैं लोग शिष्टाचारवश। लिहाज से। अन्यथा कौन किसकी सलाह लेता है! मत दो। कोई जरूरत नहीं। समय खराब मत करो।
तुझे क्यों फिक्र है ऐ गुल दिले-सदचाके-बुलबुल की
तू अपने पैरहन के चाक तो पहले रफू कर ले
अपने कपड़े तो पहले सुधार लो। अपने फटे-पुराने कपड़ों को तो पहले रफू कर लो। फिर तुम दूसरों को समझाने जाना। शायद तुम्हारे रफू किए हुए कपड़े ही दूसरों के लिए भी समझ और संदेश बन जाएं। जिंदगी से बड़ा और कोई संदेश नहीं। जिसने जीया, उसके जीवन से ही सलाह मिलनी शुरू हो जाती है। और उसी से लोग लेते भी हैं। कोई उससे नहीं लेता जो खुद जीने से वंचित रह गया है।

"मनुष्य अपने को वैसा बनावे, जैसा वह दूसरों को अनुशासन करता है। अपना भलीभांति दमन करे। अपना दमन ही कठिन है।"
वैसा अपने को बनाओ, जैसा तुम चाहते हो दूसरे हों। तुम चाहते हो दूसरे सत्यवादी हों, सत्यवादी हो जाओ। क्योंकि दूसरे भी यही चाहते हैं। तुम चाहते हो दूसरे क्रोध न करें, तुम क्रोध न करो। तुम चाहते हो दूसरे प्रेमवान हों, तुम प्रेमवान हो जाओ। इसे तुम सूत्र समझ लो। बड़ा बहुमूल्य सूत्र है। इससे तुम धर्म की कसौटी कर लोगे। तुम जो चाहते हो कि दूसरे करें, दूसरे हों, वैसे ही तुम होने लगो, वही तुम्हारे जीवन का शास्त्र है। कहीं और खोजना नहीं है। अपने भीतर इतना ही देखो कि मेरी क्या आकांक्षा है--कैसे लोग हों? तुम नहीं चाहते पड़ोसी तुम्हारे घर में कचरा फेंके, तुम न फेंको। कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था। एक सज्जन--लखनवी--लखनऊ जा रहे हैं ट्रेन में। बैठे हैं सीट पर, सामने की सीट पर पैर फैलाए। और पूरे समय पान चबा रहे हैं और फर्श पर पीक डालते जा रहे हैं। दो-चार लोगों ने कहा भी उनको कि भई, यह क्या कर रहे हो? मगर वे कुछ जिद्दी, झगड़ैलू स्वभाव के। उन्होंने कहा, क्या कर रहे हैं! किसी के बाप का डब्बा है? तुम करो, तुम्हें करना है। नहीं करना है, मत करो। टिकिट दी है, मुफ्त में नहीं बैठे हैं! झगड़ा-फसाद न हो, लोग चुप रहे।
फिर स्टेशन आ गयी लखनऊ की तो वे उतरे। कुली को अपना सामान लेने भेजा। कुली को क्या पता! उसने उनका बिस्तर नया का नया फर्श पर से घसीट दिया, तो वह ऐसा रंगीन हो गया जैसे किसी ने आधुनिक चित्रकला की हो। बड़े नाराज हुए। कहा कि बड़ा नालायक है तू! तो एक आदमी ने डिब्बे से झांककर कहा कि बड़ा यह नहीं है, बड़ा तो वह था जो नीचे पीक फैला गया। यह तो छोटा नालायक है। अब कुछ कहते न बना!
ख्याल रखो, जो तुम चाहते हो दूसरे तुम्हारे साथ करें, वही उनके साथ करो। बस इतना सा सार-सूत्र है। और जो तुम चाहते हो कि दूसरे हों और तुम प्रसन्न होओगे, वैसे ही हो जाओ, ताकि दूसरे प्रसन्न हो सकें। इतना सरल है। कहीं वेद में, कुरान में, बाइबिल में खोजने की जरूरत नहीं है। इस छोटी सी लकीर को हृदयस्थ कर लो और इसी के अनुसार चलने लगो। तुम भटक न पाओगे। मोक्ष तुमसे बच न पाएगा। और परमात्मा कहीं भी छिपा हो, उसे अपना घूंघट उठाना ही पड़ेगा।
"मनुष्य अपने को वैसा बनावे जैसा वह दूसरों को अनुशासन करता है। अपना भलीभांति दमन करे।"
दमन शब्द बुद्ध के समय में बड़ा समादृत शब्द था। फ्रायड के बाद उस शब्द
के अर्थ बदल गए हैं। दमन का वह अर्थ नहीं था जो अंग्रेजी में रिप्रेशन या सप्रेशन का है। दम का अर्थ था शांत। जो अपने भीतर की वासनाओं को शांत कर ले--दबा न दे। अब तो दमन का अर्थ होता है, दबा दे। बुद्ध का अर्थ था, दम को उपलब्ध हो जाए। दम का अर्थ है, शांत हो जाए।
दोनों में बड़ा फर्क है। तुम्हारे भीतर क्रोध उठा, तुम उसे दबा दो। शांत तुम नहीं हो गए, अशांति तुमने प्रगट न की। दबा ली। जहर का घूंट पीकर रह गए। छाती में समा ली। किसी को पता भी न चलने दी। कानों-कान खबर न होगी, किसी को पता न चलेगा, ऊपर-ऊपर तुम मुस्कुराते रहे--लिपी-पुती झूठी हंसी-- भीतर क्रोध को दबा लिया। लेकिन यह निकलेगा। यह निकलेगा। यह कहीं न कहीं निकलेगा। यह प्रतीक्षा करेगा किसी कमजोर क्षण की। किसी ऐसे पर निकल पड़ेगा जहां निकालने में तुम्हें कुछ महंगा सौदा न मालूम पड़ेगा। मालिक पर दबा लिया था, नौकर पर निकल जाएगा। बड़े पर दबा लिया था, छोटे पर निकल जाएगा। तगड़े से दबा लिया था, कमजोर पर निकल जाएगा।
मगर यह बुद्ध का दमन न हुआ। बुद्ध कहते हैं, समझो, जागो। जब क्रोध उठे
तब होश को सम्हालो। दबाओ मत क्रोध को, झूठी हंसी भी मत लाओ, लेकिन होश को सम्हालो। जैसे यह होश सम्हलता है, क्रोध तिरोहित हो जाता है। दबाना नहीं पड़ता। दबाने को कुछ पाया ही नहीं जाता।
जिसने जागकर देखा, उसकी हालत ऐसी होती है, जैसे मैं तुमसे कहूं, घर में अंधेरा है, यह दीया ले जाओ और जरा टटोलकर घर में देख आओ, अंधेरा कहां है। तुमने अगर मेरी मान ली, तो तुम खाली के खाली हाथ लौटोगे। क्योंकि दीया

लेकर अगर अंधेरे को देखने गए, तो अंधेरा मिलेगा ही नहीं। अंधेरा मिलता है अगर अंधेरे में जाओ। दीया लेकर गए तो अंधेरा कहां है?
बुद्ध के दमन का अर्थ है, होश लेकर अगर गए तो दमन करने को कुछ बचता ही नहीं। शांत हो जाता है। कभी जागकर क्रोध करो। होशपूर्वक क्रोध करो। तय करके कि क्रोध करेंगे, करो और उस वक्त होश में रहो कि देखो कर रहे क्रोध--यह रहा क्रोध! तुम अचानक पाओगे, सब जान निकल गयी, क्रोध नपुंसक हो गया। पैर टूट गए, वहीं गिर पड़ा चारों खाने चित्त। उठ नहीं सकता। उठा नहीं सकते। क्रोध के प्राण तुम्हारी मूर्च्छा में हैं।
इसलिए बुद्ध के दमन को तुम फ्रायड का दमन मत समझना। पच्चीस सौ साल पुरानी भाषा है। अर्थ भाषा के रोज बदलते रहते हैं। शब्द बड़ी यात्रा करते हैं। शब्दों की बड़ी कथाएं हैं। शब्द भी ऐसे ही बदलते रहते हैं जैसे कपड़े बदलते रहते हैं, फैशन बदलता रहता है।
पिछले किसी दिन मैंने मजाक में कहा--किसी सिंधी गुरु की चर्चा कर रहा था--तो मैंने कहा, एक तो सिंधी, और गुरु! किसी सिंधी को नाराजगी आ गयी होगी। उसने चिट्ठी लिखकर भेजी कि आप क्या सिंधियों के खिलाफ हैं? मैंने कहा, मैं खुद ही सिंधी हूं। यहां सभी सिंधी हैं।
वे बहुत चौंके। उनको पता नहीं शब्द का इतिहास। हिंद शब्द सिंध शब्द
से बना। जब पहली दफे परसियन हिंदुस्तान आए तो सिंध शब्द का उच्चारण न कर सके। उनकी भाषा में स का ह उच्चारण है। तो उन्होंने सिंध नदी को हिंद नदी कहा। और सिंध नदी के आसपास बसे सिंधियों को हिंदी कहा। उसी से हिंदुस्तान बना। और जब परसियन इस शब्द को परसिया ले गए और वहां से यूनान पहुंचा, तो यूनान में वह ह का उच्चारण न कर सके। उनकी भाषा में ह के लिए जगह न थी। उन्होंने उसका उच्चार इंद किया, इंद से इंडिया बना। मगर सबका जन्म सिंधी से।
तो मैंने कहा, यहां सभी सिंधी हैं, तुम इतने नाराज क्यों हुए? और मैं
तो प्रशंसा किया। मेरा मतलब यह था कि एक तो सिंधी, और गुरु! सिंधी होने से काफी गुरु है, अब और गुरु होने की क्या जरूरत है? यह तो डबल गुरु हो गया, महागुरु हो गया, गुरु-घंटाल जिसको कहते हैं!
शब्द बड़ी यात्रा करते हैं। अगर शब्दों की कहानी में तुम जाओ तो बड़ी रोचक है उनकी कथा। समय के साथ बदलते जाते हैं। आदमियों के साथ बदलते जाते हैं। कभी जो अच्छे थे वे बाद में बुरे भी हो जाते हैं। बड़ा चमत्कार होता है। कभी जो अच्छे थे बुरे हो जाते हैं, जो बुरे थे वे अच्छे हो जाते हैं। अंग्रेजी का शब्द है डेविल। वह कभी बड़ा अच्छा शब्द था। वह संस्कृत के दिव धातु से बना है, जिससे देवता बनता है। लेकिन कथा है कि वे जिसको डेविल कहते हैं--वह बिलजेबब--वह भी देवता था कभी। फिर ईश्वर के खिलाफ बगावत की तो उसे दुनिया में फेंक दिया। था तो वह देवता ही, इसलिए डेविल। मगर अब किसी को डेविल कह दो तो वह नाराज हो जाए। और किसी को देवता कहो तो बड़ा प्रसन्न हो। दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। दोनों दिव से आए हैं। जिससे डेविल आया, उसी से डिवाइन। कोई फर्क नहीं है। मगर बड़ा फर्क हो गया। ऐसा रोज होता रहा है। सदा होता रहा है। समय की धारा बदलती है, शब्द बदल जाते हैं।
बुद्ध, महावीर, पतंजलि जब दमन का उपयोग करते हैं, उस समय में बड़ा आदृत शब्द था। बड़ा आदृत शब्द था। बड़ा बहुमूल्य शब्द था। उसका अर्थ था, जिसकी सब वासनाएं शांत हो गयीं। जिसकी सब वासनाएं सो गयीं, क्योंकि वह जाग गया। जब तुम जागते हो, वासनाएं सो जाती हैं। जब वासनाएं जागती हैं, तुम सो जाते हो। दोनों साथ-साथ नहीं जाग सकते। दोनों एक साथ घर में नहीं हो सकते।
फ्रायड ने दमन का जो अर्थ लिया वह बड़ा और था। उसका संबंध ईसाइयत से है। ईसाइयत ने दमन सीख लिया। जीसस जिन सूत्रों की बात किए, ईसाइयत उनको समझ न सकी। जीसस तो उन सूत्रों को ले गए भारत से। उनके रोपे उन्होंने लगाए, लेकिन वे रोपे लग न पाए। बड़ा कठिन होता है। एक जीवन की धारा होती है, उसमें तुम कहीं से कुछ ले आओ।
जैसे भारत से आम का पौधा ले जाओ, इंग्लैंड में लगाओ, लग नहीं पाता। किसी तरह लग भी जाए, तो फल न आ पाएंगे। किसी तरह फल भी आ जाएं, तो उन आमों में वही स्वाद न होगा जो यहां होता है। सूरज चाहिए, गर्मी चाहिए, तब आम

पकते हैं। फिर कोयल भी चाहिए। न कोई कुहू-कुहू करे तो भी आम नहीं पकता। फिर एक खास हवा चाहिए, खास माहौल चाहिए। सभी चीजें जुड़ी हैं, संयुक्त हैं।
तो जीसस ले तो गए, लेकिन जो बुद्ध के लिए दमन था, वह जब ईसाइयत में पहुंचा तो वह फ्रायड का दमन हो गया। क्रोध शांत हो जाए यह तो भूल गए लोग, क्रोध को शांत कर लें यह याद रह गया। दबा लो, शांत कर लो, सीधी बात हो गयी। जगाना तो कठिन था स्वयं को, दबाना बड़ा आसान मालूम पड़ा।
तो फिर फ्रायड का जन्म होना निश्चित हो गया। क्योंकि यह इस दमन ने सारी मनुष्यता को ज्वालामुखी पर बिठा दिया। जो-जो दबाया वही-वही आदमी के रक्त-मांस-मज्जा में समा गया। ईसाइयत ने कामवासना इतनी दबायी, इतनी दबायी कि फ्रायड को ऐसा लगने लगा कि आदमी सिर्फ कामवासना है।
यह थोड़ा सोचने जैसा है। इसमें फ्रायड का कसूर कम, इसमें ईसाइयत का कसूर ज्यादा है। यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम मवाद को इतना दबाते गए, इतना दबाते गए, कि वह पूरे शरीर में फैल गयी। फिर कोई चिकित्सक आया, उसने जगह-जगह से तुम्हारे शरीर को जांचा, हर जगह मवाद पायी। तो उसने कहा, आदमी में खून तो है ही नहीं, मवाद ही मवाद है। ऐसा ही ठीक फ्रायड को अनुभव में आया। जहां से आदमी को टटोला, वहीं कामवासना पायी, वहीं देवता, कामदेवता को बिराजे पाया। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, सब जगह कामवासना है। सारा जीवन कामवासना है।
कल मैं एक मजाक पढ़ रहा था। एक यहूदी मजाक है कि मनुष्य-जाति के इतिहास
को पांच यहूदियों ने प्रभावित किया है। छा गए हैं यहूदी। हैं बड़े बुद्धिमान लोग। बड़े प्रतिभाशाली लोग। तो पहला यहूदी--मोजिज। उसने कहा कि सब खेल, सब बात आदमी की खोपड़ी में है, मस्तिष्क में है, सिर में है। आल इज इन द हेड। फिर आया जीसस। जीसस भी यहूदी है। उसने कहा, आल इज इन द हार्ट। सब आदमी के हृदय में है। फिर आया कार्ल मार्क्स। उसने कहा, आल इज इन द स्टमक। सब आदमी के पेट में है। और फिर आया फ्रायड। उसने कहा, आल इज जस्ट ए लिटिल लोअर दैन स्टमक। जरा और नीचे। क्योंकि सब आदमी की कामवासना में है। और फिर आया पांचवां यहूदी--अलबर्ट आइंस्टीन। उसने कहा, आल इज रिलेटिव। सब सापेक्ष।
फ्रायड ने जो पाया कि पेट से जरा नीचे, बस कामेंद्रिय में सब है, उसका कारण फ्रायड की भूल नहीं। फ्रायड को जो लोग उपलब्ध थे, उनके जीवन में कामवासना दबते-दबते खून में मिल गयी, इकट्ठी फैल गयी। उसने ईसाइयों का परीक्षण किया। वही बीमार होकर उसके पास आ रहे थे। उसने रुग्ण लोगों को देखा। और जब भी कोई मानसिक-रूप से रुग्ण होता है, तो कामवासना से भरा होता है। उसने स्वस्थ आदमी देखा ही नहीं। उसका कसूर नहीं, स्वस्थ आदमी पाना मुश्किल हो गया है।
काश, उसने कोई बुद्ध जैसा पुरुष देखा होता। तो वह पाता कि खून में, रग-रग, रेशे-रेशे में राम ही राम है। काम मिलता ही नहीं। वह चकित होता। यहां तो काम का कुछ पता ही नहीं चलता। यहां तो काम रूपांतरित हो गया। वहां उसे क्रोध मिलता ही नहीं। करुणा मिलती। वहां कुछ उलटा ही मिलता। वहां आदमी अपने चरम-शिखर पर मिलता। आदमी के चरम स्वास्थ्य की दशा मिलती। आदमी न मिलता, भगवान मिलता। भगवत्ता मिलती।
बुद्ध का अर्थ है, शांति, गहन शांति। तुम जागो, सब वासनाएं सो जाती हैं।
"मनुष्य अपने को वैसा ही बनावे जैसा वह दूसरों को अनुशासन करता है। और अपना भलीभांति दमन करे। अपना दमन ही कठिन है।"
कठिन है, बहुत कठिन है। क्यों? क्योंकि आदतें बड़ी प्रबल हैं। जन्मों- जन्मों की हैं। और मन कहता है, आदत से चलो। क्योंकि आदत सुगम है। जो सदा किया है, वह करना सुगम है। क्रोध कितनी बार किया तुमने? करुणा कभी की थी, यह तो तुम भूल ही गए।
एक भिखारी एक दरवाजे पर खड़ा था। और उसने जोर से आवाज दी कि कुछ मिल जाए; कुछ न हो तो रोटी ही मिल जाए, कितने जमाने हो गए रोटी नहीं खायी, स्वाद ही भूल गया है। वह घर था मुल्ला नसरुद्दीन का। वह बाहर आया, उसने कहा, रोटी का वही स्वाद है जो पहले हुआ करता था। तू फिकर मत कर। मगर रोटी दी वगैरह

नहीं। वही स्वाद है, उसने कहा, जो पहले हुआ करता था, तू घबड़ा मत। भिखारी कह रहा था, रोटी का स्वाद भी भूल गए हैं, इतने दिन से भूखे हैं।
तुम जरा गौर करो। तुम्हें करुणा का स्वाद याद है? कब से नहीं की? कभी
की थी, यह भी याद नहीं रही। तुम्हें प्रेम का स्वाद याद है? काम का होगा।
कब से नहीं किया प्रेम? लौटोगे पीछे तो कहीं हाथ रखने की जगह न मिलेगी। अंधेरा-अंधेरा दिखता है। कहीं कोई दीया जलता नहीं मालूम होता। किया भी कभी? कुछ याद नहीं आती।
तो स्वभावतः मन कहता है, जो करते रहे हो, वही करो। अनजान, अपरिचित रास्तों पर मत चल पड़ो, भटक जाओगे। सुगम है कोल्हू के बैल की तरह बंधी हुई लकीर में चलते रहना। जाना हुआ परिचित रास्ता है। मन की आदत है--न्यूनतम प्रतिरोध। लीस्ट रेसिस्टेंस। नए में जाओगे तो संघर्षपूर्ण होगा।
अगर पहाड़ से उतर गए, राजपथ से उतर गए, पहाड़ी रास्ते पर झाड़-झंखाड़ होंगे, कांटे की झाड़ियां होंगी, रास्ता बनाना होगा, सीमेंट का कोई पटा हुआ रास्ता तो मिलेगा नहीं। पटे हुए रास्ते पर चलो, जहां सब चलते हैं वहां चलो, जहां भीड़ चलती है वहां चलो; सुविचारित--राह के किनारे मील के पत्थर लगे हैं, तीर बता रहे हैं कहां जा रहे हो--जहां सब हिसाब-किताब है, नक्शा हाथ में है, वहां चलो।
लेकिन वह तो वही है जो तुम चलते रहे हो। वह तो आदतों का रास्ता है। उस
पर तो क्रोध है, काम है, घृणा है, वैमनस्य है, ईर्ष्या, लोभ, मोह-मत्सर सब है, लेकिन वहां भगवत्ता का तो कहीं कोई पता नहीं है। इसलिए कठिन है। मगर कठिन से घबड़ाना मत, क्योंकि कठिन से ही ऊर्ध्वगमन होता है।
हुआ करती हैं दुश्वारी से ही आसानियां पैदा
बड़े नादान हैं मुश्किल को मुश्किल समझते हैं
नासमझी मत करना। कठिन है माना, पर कठिन को कठिन मत समझना। कठिन की चुनौती को स्वीकार करना। लाख आदतें तुम्हें उलझाएं, बुलाएं, आमंत्रित करें, सुगम का निमंत्रण दें, प्रलोभन दें, तुम चुनौती स्वीकार करना कठिन की। तुम चुनौती स्वीकार करना शिखर की। बहुत दिन रह लिए घाटियों में, अंधेरों में, अब उठना है सूर्यमंडित शिखरों की तरफ, स्वर्ण-कलशों की तरफ। कठिन होगा, खतरनाक होगा, लेकिन वह मनुष्य ही क्या जिसने कठिन का निमंत्रण स्वीकार न किया! वह मनुष्य ही क्या जिसने शिखरों की तरफ आंखें न उठायीं, आंखें चुरायीं कि कहीं चढ़ना न पड़े, और जो नीचे ही देखता रहा! वह धीरे-धीरे जमीन का कीड़ा हो जाएगा, सरकने लगेगा, चारों हाथ-पैर से चलने लगेगा। वह खड़े होने का अधिकार खो देगा। खड़े होने का अधिकार उसे ही है जो ऊपर देखे।
मंसूर को सूली लगी। किसी ने पूछा कि तुम इतने प्रसन्न क्यों मालूम हो रहे हो? वह ऊंचे तख्ते पर लटकाया गया था। उसने कहा, मैं इसलिए प्रसन्न हो रहा हूं कि कम से कम मेरी सूली के बहाने तुमने जरा ऊपर तो आंख उठाकर देखा। चलो मेरी मौत हुई, कोई हर्जा नहीं, तुम्हारा जीवन तो जरा ऊपर देखा। तुम तो सदा जमीन में ही सरकते रहे, नीचे ही आंखें गड़ाकर चलते रहे।
एक बार चुनौती स्वीकार करो, फिर कठिन कठिन नहीं रह जाता।
रुकते हैं कहीं दीवारों से, थमते हैं कहीं जंजीरों से
इजहारे-जुनूं पर आमादा जब कैदिए-जिंदां होते हैं
जब एक बार आमादा हो गए, जब स्वतंत्रता की आकांक्षा ने प्रबलता से पकड़ लिया, जब कारागृह से बाहर होने की चुनौती स्वीकार कर ली--
रुकते हैं कहीं दीवारों से, थमते हैं कहीं जंजीरों से
फिर कोई जंजीर रोकती नहीं। तुम रुके हो, क्योंकि तुम रुकना चाहते हो। जंजीर नहीं रोके है। एक बार तुम जंजीर तोड़ना चाहो, फिर कोई रोक नहीं सकता, तुमने ही ढाली है। अपनी आदतों की ढाली हुई जंजीर है। अपने ही संस्कारों का ढाला हुआ कारागृह है। घबड़ाओ मत। शुरू में जो बहुत कठिन मालूम होता है, चल-चलकर सरल हो जाता है।
और एक बार पगडंडी पर चलने का आनंद आ जाए, अकेले चलने का आनंद आ जाए, फिर भीड़ की दुर्गंध में कौन चलना चाहता है? फिर भीड़ के पसीने और धूल से लथपथ शरीरों के पास कौन रुकना चाहता है? एक बार एकांत का रस आ जाए, एक बार

पगडंडी की स्वतंत्रता, खुला आकाश मिले, फिर तुम हैरान होओगे कि कैसे चल सके इतने दिन तक भीड़ के धक्कम-धुक्का में? कैसे? कैसे यह संभव हुआ था? तुम भरोसा न कर सकोगे।
बुद्ध ने कहा है, जब जागा तो यह भरोसा न आ सका, इतने दिन कैसे सोया रहा?
यह हुआ कैसे संभव? पहले क्यों न जागा? जाग इतनी मधुर है।
इसलिए शुरू-शुरू में जो अंधेरा भी मालूम पड़े, घबड़ाना मत।
ये तीरगी तो आरिजी है मत डरो
यहां से दूर, कुछ परे पे सुबह का मुकाम है
बस पास ही आती होगी सुबह। और ध्यान रखना, जब सुबह पास आती है, तो रात बड़ी गहरी और अंधेरी और काली होने लगती है। स्याह होने लगती है। जब रात सघनतम घनी काली होती है, तभी सुबह करीब होती है। घनी काली अंधेरी रात से ही सुबह का जन्म है। अंधेरी रात दुश्मन नहीं है, गर्भ है। कठिनाई, दुश्मन मत मान लेना।
आशियां फूंका है बिजली ने जहां सौ मर्तबा
फिर उन्हीं शाखों पे तरहे-आशियां रखता हूं मैं
आदतें बार-बार गिराएंगी। बिजलियां बार-बार नीड़ को फूंक देंगी। घबड़ाना मत, फिर-फिर रखना उसी शाख पर। फिर दुबारा रखना अपना नीड़। बिजलियों से हार मत जाना। कठिनाइयों से डर मत जाना।
बुद्ध तो सिर्फ सूचक-संकेत देते हैं, "अपना दमन कठिन है।"
वे यह कहते हैं, सरल मत मान लेना पहले से। सरल मानकर चलोगे तो जल्दी ही लौट आओगे। इसलिए कठिन है, ऐसा पहले जानकर ही चलना। ताकि लौटने का कोई कारण न रह जाए।
"मनुष्य आप ही अपना स्वामी है... ।"
यह बुद्ध का श्रेष्ठतम वचन है।

अत्ताहि अत्तनो नाथो।

परमात्मा को इंकार किया है बुद्ध ने। क्योंकि मनुष्य को इतनी महिमा
दी है बुद्ध ने कि परमात्मा को वे स्वीकार न कर सके। इसे तुम समझने की कोशिश करना।
बुद्ध को सदा ऐसा लगा, मनुष्य अंतिम है। मनुष्य की महिमा अंतिम है। बुद्ध को ऐसा लगा, अगर मनुष्य अपने को जान ले तो वह जान लेना ही परमात्मा है। कहीं और परमात्मा नहीं है, जिसके सामने सिर झुकाए। कहीं कोई परमात्मा नहीं है, जिसके सामने बंदगी करे। कहीं कोई परमात्मा नहीं है, जिसकी स्तुति करे। बुद्ध ने मनुष्य को चरम गौरव दिया है।
"मनुष्य आप ही अपना स्वामी है... ।"

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया

"... भला कोई दूसरा उसका स्वामी कैसे हो सकता है?"
स्वतंत्रता मनुष्य की परम है। उसके ऊपर कोई मालिक नहीं।
"अपने को ही भलीभांति दमन कर लेने से वह दुर्लभ स्वामी प्राप्त हो जाता है।"
वह तुम्हारे भीतर ही छुपा है। कहो उसे परमात्मा, कहो उसे आत्मा, या जो चाहे; जो तुम्हारा सुख हो वही कहो, लेकिन तुम्हारे भीतर छुपा है। तुम जाग जाओ, इंद्रियां सो जाएं, वासनाएं सुप्त हो जाएं। तुम उठ जाओ अंधेरे से इंद्रियों के पार, जैसे सुबह सूरज उगता है क्षितिज के पार। तुम अपने मालिक हो जाते हो।
आदमी ने परमात्मा को गढ़ा है, वह भी आदमी का धोखा है!
मेआर एक गढ़ा हविशे-इख्तियार ने
अल्लाह कहके उसको लगी खुद पुकारने
मेआर एक गढ़ा हविशे-इख्तियार ने
अल्लाह कहके उसको लगी खुद पुकारने

आदमी संसार को ही नहीं बनाता है, परमात्मा को भी बना लेता है। लेकिन
वह भी आदमी की ही बनायी हुई मूर्ति है। वह मेआर, वह आदर्श आदमी का ही बनाया हुआ है। और उसके पीछे भी कब्जा करने की आकांक्षा है
हविशे-इख्तियार ने
मालिक होने की आकांक्षा है। परमात्मा पर कब्जा कर लेने की आकांक्षा है।
बुद्ध कहते हैं, यह दूसरे पर कब्जा करने की आकांक्षा ही तो संसार है। कभी पत्नी पर करना चाहा, कभी पति पर, कभी धन पर, कभी पद पर, लेकिन सदा दूसरे पर। अब तुमने परमात्मा गढ़ लिया--
मेआर एक गढ़ा हविशे-इख्तियार ने
अब तुमने परमात्मा गढ़ लिया। सबसे किसी तरह छूटे तब तुमने एक परमात्मा
गढ़ लिया, अब उस पर कब्जा करना है, अब उसको पाना है। अपने को कब पाओगे? पाने वाले को कब पाओगे? यह तो दूसरे की ही तलाश चलती रही। धर्म में भी, संसार में भी।
बुद्ध कहते हैं, उसी को पा लो, जो पाने चला है। इस मूलस्रोत को पा लो। परमात्मा को पाकर भी क्या होगा? आखिर तुम और ही रहोगे। भिन्न ही रहोगे। दो रहेंगे तो द्वंद्व ही रहेगा।
नहीं, बुद्ध कहते हैं, यह सब पाने की दौड़ गलत है।
मोती बनने से क्या हासिल जब अपनी हकीकत ही खो दी
कतरे के लिए बेहतर था यही कुल्जुम न सही दरिया होता
बूंद है, सागर न बनती, सरोवर बन जाती। सागर न बनती, सरिता बन जाती। मोती बनने से क्या हासिल?
मोती बनने से क्या हासिल जब अपनी हकीकत ही खो दी
तुम कुछ और मत बनो। मोती भी बन गए कुछ और बनने में, तो कुछ हासिल नहीं।
तुम अपना स्वभाव बनो। तुम अगर बूंद हो पानी की, न सही सागर, सरोवर बनो, मगर अपने स्वभाव में ही डूबो। स्वयं में डूबो।

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।

कोई और पराया तुम्हारा नाथ नहीं।

अत्तना" व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।
वह जो अत्यंत दुर्लभ स्वामित्व है, सम्राट हो जाना है, अपनी मालकियत है, अगर तुम ठीक-ठीक शांत हो जाओ, वासनाएं शांत और क्षीण हो जाएं, तो तुम्हारे भीतर है तुम्हारा साम्राज्य। किसी से मांगने नहीं जाना, किसी से जीतने नहीं जाना, कोई आक्रमण नहीं करना है। प्रतिक्रमण करना है। अपनी तरफ लौटना है। रिटर्निंग टू द सोर्स। वापस आना है स्रोत की तरफ। जहां से चले थे वहां आना है। प्रारंभ को पा लेना ही अंत को पा लेना है।
मनुष्य के इस सत्य को बुद्ध ने जैसी महिमा दी वैसा कोई कभी न दे सका। इसलिए बुद्ध अगर मनुष्य-जाति को इतने प्यारे हैं, तो अकारण नहीं। जीसस के लिए परमात्मा है पाने को। कृष्ण के लिए भी परमात्मा है पाने को, राम के लिए भी परमात्मा है पाने को। बुद्ध ने मनुष्य को ही परमात्म-रूप दिया। बुद्ध ने कहा, बस तुम ही हो पाने को। खोजी की ही खोज करनी है। यात्री में ही यात्रा है। मंजिल कहीं और तुमसे अलग नहीं, तुम्हारे भीतर छिपी है।
ऐ दोस्त! मेरी सुस्तरवी का गिला न कर
मेरे लिए तो खुद मेरी मंजिल सफर में है
अगर मैं धीमे भी चल रहा हूं, तो शिकायत मत करो।
मेरे लिए तो खुद मेरी मंजिल सफर में है
यात्रा में ही मेरी मंजिल है। मेरे होने में ही मेरा सत्य है। मेरे होने में ही मेरी सत्ता है।

अत्ताहि अत्तनो नाथो!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
सन्तावनवां प्रवचन

‘न-होना’ है जीवन

पहला प्रश्नः कल आपने कहा कि ईश्वर को अस्वीकार कर भगवान बुद्ध ने मनुष्य को बड़ी से बड़ी गरिमा से मंडित किया। यही दलील तो नास्तिक भी ईश्वर के खिलाफ पेश करते हैं। फिर दोनों में फर्क क्या है? और क्या ईश्वर को अस्वीकार कर मनुष्य का अहंकार और भी अंधा नहीं होगा?

फर्क बारीक है। समझना चाहोगे, तो ही समझ सकोगे। सहानुभूतिपूर्वक समझोगे, तो ही समझ सकोगे। फर्क मोटा और स्थूल नहीं है।
इसीलिए तो हिंदुओं ने बुद्ध को भी नास्तिक कहा। नास्तिक कहकर भी बुद्ध की महिमा को अस्वीकार करना कठिन था। इसलिए अवतार भी स्वीकार किया। फर्क बड़ा बारीक है। मान भी न सके, इंकार भी न कर सके। बुद्ध को स्वीकार भी न कर सके, क्योंकि बात प्रगट ही नास्तिकता की मालूम होती है। लेकिन बुद्ध की महिमा को, प्रतिभा को, उनकी गरिमा को, उनके प्रकाश को अस्वीकार भी कैसे करें! हिंदू इतने अंधे भी न थे। तो अवतार भी स्वीकार किया।
बड़ी कठिनाई पड़ी होगी हिंदू-प्रतिभा को। सदा आसान होता है किसी को स्वीकार कर लेना, या अस्वीकार कर देना। लेकिन जब दोनों के बीच में कोई कड़ी आ जाती है, जहां अस्वीकार करते भी नहीं बनता, स्वीकार करते भी नहीं बनता, तो उसका अर्थ है कि बड़ी सूक्ष्म बात रही होगी। तय करना मुश्किल था कि बुद्ध हां कहते हैं कि नहीं कहते हैं। और हिंदू जैसी जाति को मुश्किल पड़ा, जो कि सूक्ष्म को समझने में सदियों से श्रम कर रही है।
नास्तिक जब कहता है, ईश्वर नहीं है, तो उसे मनुष्य से कोई प्रयोजन नहीं है। उसे इतना ही प्रयोजन है कि ईश्वर न हो। क्योंकि ईश्वर के होने से नियंत्रण पैदा होता है--वासना पर, तृष्णा पर, जीवन की अंधी दौड़ पर। स्वच्छंदता नहीं रह जाती। नास्तिक जब कहता है, ईश्वर नहीं है, तो वह यह कहता है, मनुष्य स्वच्छंद है। अब जो करना हो करो! न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। न कोई नियंता है, न कहीं कोई है जिसके सामने किसी दिन उत्तर देना पड़े। उत्तरदायी होने का कोई सवाल नहीं है। मरने के बाद सभी मिट जाते हैं। चार्वाक ने कहा है, घी भी उधार लेकर पी लो। पीने से मत चूको। चुकाना कहां है? चुकाना किसको है? मरने के बाद कोई हिसाब है किसी का? सब मिट्टी में मिल जाते हैं। और धर्म केवल पुरोहितों का पाखंड है। नासमझों को फंसाने को। नासमझों को चूसने को, शोषण करने को।
चार्वाक की यह भाषा नास्तिक बार-बार बोलते रहे। यही भाषा फिर कार्ल मार्क्स ने बोली--कि धर्म अफीम का नशा है। कोई ईश्वर नहीं है। लेकिन जोर ईश्वर के न होने पर है।
और ईश्वर नहीं है, तो फिर मनुष्य एक पशु है। परमात्मा को काट दो, तो मनुष्य पशु हो जाता है। फिर मनुष्य और पशु में फर्क क्या करोगे? फर्क इतना ही है कि पशु अपनी वृत्तियों में जीता है, मनुष्य वृत्तियों के पार उठता है।
मगर पार उठने की जगह न रही, जब ईश्वर न रहा। आकाश न रहा, जहां उड़ सको।
फिर जमीन ही रही सरकने को कीड़े-मकोड़ों की तरह। फिर आदमी और कुत्ते में फर्क क्या है? कुत्ता कुत्ता है, आदमी आदमी है। अभी फर्क है, अगर ईश्वर है।
ईश्वर है तो फर्क यह है कि कुत्ता कुत्ता ही रहेगा, आदमी ईश्वर हो सकता है।
विकास की संभावना है।
जब नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है, तो वह यह कहता है, हो चुकी बकवास, कोई विकास नहीं है, न कोई संभावना है। हमें शांति से जीने दो। हम जो करते हैं हमें करने दो। हटाओ यह पाप-पुण्य की बाधा। हम पर शर्तें मत लगाओ। हमारी पाशविकता को स्वच्छंद होने दो।
इसीलिए जब नीत्से ने कहा, ईश्वर मर गया है, तो तत्क्षण उसने दूसरा वाक्य भी उसमें जोड़ा कि अब मनुष्य स्वतंत्र है जो करना चाहे। गाड इज डेड एंड नाउ मैन इज फ्री टु डू व्हाट सो एवर ही लाइक्स टु डू। अब कोई ऊपर कोई

आंख देखने वाली नहीं है। और कोई नहीं है जिसके सामने तुम्हें खड़े होकर उत्तर देना पड़े। कोई निर्णायक नहीं है। तुम अकेले हो। यह आकाश सूना है। घर का कोई मालिक नहीं है, करो जो करना है।
नास्तिक का जोर है, ईश्वर न हो, ताकि मनुष्य पशु हो सके स्वच्छंदता से।
बुद्ध ने भी कहा, ईश्वर नहीं है, पर उनका जोर ईश्वर के नहीं होने पर नहीं है। उनका जोर मनुष्य के ईश्वर होने पर है। वे यह कहते हैं कि ईश्वर हो कैसे सकता है, मनुष्य ही ईश्वर है--अत्ताहि अत्तनो नाथो--यह आदमी ही ईश्वर है। अब तुम और कहां ईश्वर खोजते हो? बुद्ध कहते हैं, यह कहीं और खोजना, बचने का उपाय है। मत रखो आकाश में ईश्वर। अंतर-आकाश में, भीतर तुम्हारे, तुम्हारे होने में छिपा है।
बुद्ध ईश्वर को इंकार करते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि ईश्वर का होना तुम्हारा स्वयं के ईश्वरत्व का इंकार बन जाए। ऐसा बन गया है। बन गया था। रोज बनता रहा है। लोग ईश्वर को पूज आते हैं और छुटकारा पा जाते हैं। पूजा छुटकारा है कि चलो झुका लिया सिर, अब झंझट मिटी। अब जो करना है, करें। ईश्वर के सामने लोग जाकर वे ही प्रार्थनाएं कर आते हैं, जो करना चाहते हैं। उनकी ही आज्ञा मांग आते हैं। हिंसा करना हो तो हिंसा के लिए आशीर्वाद मांग आते हैं।
हिटलर को भी आशीर्वाद देने वाले चर्च थे, जिनमें उसके जनरल प्रार्थना करते। चर्चिल को भी इंग्लैंड का चर्च आशीर्वाद दे रहा था, प्रार्थना कर रहा था। भारत और पाकिस्तान में युद्ध हो जाए तो भारत के साधु-संन्यासी भी आशीर्वाद देने लगते हैं राज्य को।
युद्ध और हिंसा के लिए भी तुम्हारे परमात्मा से तुम प्रार्थना करने लगते हो। तुम्हारा परमात्मा झूठा है, तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। तुम परमात्मा को भी स्वयं के शैतान बनने में सहारा बना लेते हो।
जब बुद्ध ने कहा, कोई ईश्वर नहीं है, तब बुद्ध ने तुमसे प्रार्थना छीनी, परमात्मा नहीं। इसे थोड़ा समझो।
बुद्ध ने तुमसे प्रार्थना छीनी कि बहुत हो चुकी बकवास, तुम परमात्मा
को अपने ही काम में लगा रहे हो। नास्तिक परमात्मा को हटाना चाहता है, ताकि स्वच्छंद हो सके। तुम परमात्मा के आधार पर स्वच्छंद हो रहे हो। क्या-क्या नहीं किया आदमी ने परमात्मा के नाम पर, सोचो तो जरा! ऐसा क्या है जो आस्तिकों ने नहीं किया परमात्मा के नाम पर? अगर गौर से देखोगे तो नास्तिकों के नाम पर पापों की कथा बहुत कम है। उन्होंने घी उधार मांगकर पी लिया होगा, लेकिन यह भी कोई बड़ा पाप हुआ! लोगों को आग में तो नहीं जलाया। उन्होंने मजा-मौज कर लिया होगा, नाच लिए होंगे शराब पी कर; जरा आस्तिकों के पाप का तो हिसाब रखो!
मुसलमानों ने कितने ईसाई मारे, कितने हिंदू मारे? ईसाइयों ने कितने मुसलमान मारे? हिंदू कैसे आग से भर जाते हैं, जब मारने का ज्वार आता है? कैसे अंधे हो जाते हैं? मंदिर-मस्जिद ने लड़ाया आदमी को। मंदिर-मस्जिद ने जोड़ा कहां? सब युद्ध मंदिर-मस्जिद के नाम पर हुए। पृथ्वी लाशों से पटी, खून से भर गयी। यह सब धर्म के नाम पर हुआ है और आस्तिकों ने किया है।
अगर नास्तिक और आस्तिक के पापों का हिसाब लगाया जाए, तो नास्तिक का पलड़ा हलका है। बहुत हलका है। हां, व्यक्तिगत रूप से उसने कभी घी उधार मांग लिया होगा, यह भी कोई बात हुई! इसका भी कोई हिसाब रखोगे? व्यक्तिगत रूप से किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गया होगा, शराब पीकर नाच लिया होगा, ठीक है। मगर किसको दुख पहुंचाया? किसकी छाती में छुरा भोंका? अगर थोड़े-बहुत सुख उसने पा भी लिए होंगे, अगर परमात्मा कहीं है तो क्षमा करेगा। आस्तिक को क्षमा न कर पाएगा।
नास्तिक ने ईश्वर को इंकार करके थोड़ी सी स्वच्छंदता चाही। आस्तिक ज्यादा चालाक है। ज्यादा होशियार है। नास्तिक ईमानदार है। आस्तिक बेईमान है। उसने कहा कि छुटकारा क्या पाना, तुम्हीं से प्रार्थना कर लेते हैं। वहां से कोई उत्तर तो आता नहीं है, तुम्हीं अपना उत्तर बना लेते हो। वहां कोई बोलने वाला तो है नहीं, तुम्हीं जाकर मंदिर में प्रार्थना कर आते हो,

तुम्हीं अपनी प्रार्थना पर सिर हिला लेते हो। तुम्हीं धूप-दीप जला लेते हो। तुम्हीं बलि के बकरे चढ़ा देते हो। आदमी तक चढ़ाए तुमने, मगर यज्ञ के नाम पर चढ़ाए, तो धार्मिक हो गयी बात। हत्याएं कीं, खून बहाया, लेकिन यज्ञ के नाम पर बहाया, तो कृत्य पवित्र हो गया।
आस्तिक ने ज्यादा चालाकी की बात की। उसने कहा, परमात्मा को क्यों हटाना, परमात्मा का सहारा ही ले लो। अपनी पाप की यात्रा में उसके कंधे का सहारा ले लो, उसके कंधे पर सवार हो जाओ। आस्तिक ने वही किया, जो उसे करना था।
बुद्ध ने ये दोनों बातें देखीं। बुद्ध ने नास्तिकता को हामी नहीं भरी। बुद्ध चार्वाक के उतने ही विपरीत हैं, जितने यज्ञवादी पुरोहितों के। लेकिन बुद्ध ने देखा कि यह तो ईश्वर के नाम पर स्वच्छंदता चलती है। उन्होंने ईश्वर को इंकार किया। इंकार में जोर नहीं है। जोर इस बात में है कि मनुष्य की महिमा अपरिसीम है। उसके ऊपर किसी परमात्मा को भी रखने की जरूरत नहीं, परमात्मा मनुष्य के भीतर छिपा है। उसे प्रगट होना है।
बुद्ध ने एक नयी आस्तिकता की भाषा दी जगत को। उसे समझो। परमात्मा कहीं है नहीं रेडिमेड। तैयार बैठा नहीं तुम्हारे लिए कि गए और कब्जा कर लिया। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है। तुम्हें निर्मित करना होगा, सृजन करना होगा। तुम्हारे ही अंतःगृह में, तुम्हारे ही अंतर्तम में जलाकर दीए को, प्रकाश को, रोशनी को, जागृति को, होश को, ध्यान को, तुम्हें परमात्मा को जन्म देना होगा। तुम्हें परमात्मा की मां बनना होगा। तुम्हें गर्भ बनना होगा।
यही मतलब है, जब बुद्ध कहते हैं, मनुष्य के ऊपर कोई भी नहीं। वे यह कहते हैं, मनुष्य के भीतर सब है, ऊपर नहीं। और मनुष्य को अगर ऊपर जाना है, तो भीतर जाना है। भीतर जाकर ही मनुष्य ऊपर जाएगा। स्वयं को पाकर ही मनुष्य सत्य को पाएगा। अपनी आत्यंतिक सचाई को पहचानकर ही परमात्मा से मिलन होगा। और यह मिलन, कहीं बाहर किसी मंदिर के द्वार पर होने को नहीं है। किसी स्वर्ग, किसी भौगोलिक-स्थिति में होने को नहीं है। यह एक अंतर-दशा में होगा, अंतर-आकाश में होगा।
बुद्ध ने बाहर से परमात्मा को इंकार दिया, भीतर रखने को। मंदिर से हटाया, ताकि तुम्हारे भीतर विराजमान कर सकें। बुद्ध से बड़ा आस्तिक संसार में कभी हुआ नहीं, होगा भी संदिग्ध है। बुद्ध की आस्तिकता इतनी गहन है, इतनी हिम्मत और साहस से भरी है कि उन्होंने ईश्वर को भी इंकार कर दिया। यह ईश्वर के विरोध में नहीं, यह ईश्वर के प्रेम में उठा कदम है। यह देखकर कि ईश्वर के नाम पर जो हो रहा है, वह ईश्वर को बिना हटाए न रुकेगा। ईश्वर को हटा लो, सब उपद्रव का जाल बंद हो जाएगा। और मनुष्य को उन्होंने विधि दी कि कैसे ईश्वर को निर्मित करो। ईश्वर सृजन है तुम्हारा।
इसे थोड़ा समझो। इसकी सूक्ष्मता का थोड़ा स्वाद लो। प्रत्येक व्यक्ति
को अपने ईश्वर को निर्मित करना है। तुम्हीं हो मूर्तिकार, तुम्हीं हो मूर्ति, तुम्हीं हो वह पत्थर जिसकी मूर्ति बननी है। तुम्हीं हो वह छैनी जिससे मूर्ति बननी है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। मनुष्य सब कुछ है। सितार भी वही, संगीतज्ञ भी वही, स्वर-ध्वनि भी वही। तुम्हारे भीतर सब है; संयोजन देना है, ठीक-ठीक व्यवस्था जुटानी है। टूटे खंडों को पास लाना है, अखंड बनाना है। मूर्ति छिपी है अनगढ़ पत्थर में, अनगढ़ को काटना-छांटना है, व्यर्थ को अलग करना है। असार से सार का भेद करना है। और परमात्मा प्रगट हो जाएगा। परमात्मा का आविर्भाव होगा।
और तुम्हारा परमात्मा जब प्रगट होगा, तब वह तुम्हारा होगा। और जो अपना नहीं, वह भी क्या है! वह तुम्हारी ही सांसों में रमा होगा। वह तुम्हारे ही हृदय की धक-धक होगा। वह तुम्हारे ही प्राणों की ज्योति होगा। जो अपना है, वही थिर है।
अगर तुमने परमात्मा को दूसरे की तरह पा लिया, छूट जाएगा। सब दूसरे छूट जाते हैं। सिर्फ अपना होना नहीं छूटता। इसलिए बुद्ध कहते हैं, अपने को ही पा लेना बस एकमात्र पा लेना है। धन पा लोगे, छूट जाएगा। मंदिर, मकान बना लोगे, छूट जाएगा। यश, प्रतिष्ठा, छूट जाएगी। सब छूट जाएगा। इसी तरह तुमने

अगर परमात्मा को भी पर की तरह पाया, दूसरे की तरह पाया, छूट जाएगा। जो पर है, वह तुम्हारा स्वभाव नहीं हो सकता। बुद्ध ने परमात्मा को तुम्हारा स्वभाव कहा।
अब इसे समझो। नास्तिक चाहता है, ईश्वर न हो, ताकि तुम स्वच्छंद हो जाओ। बुद्ध चाहते हैं, ईश्वर हटे, ताकि तुम धार्मिक हो जाओ। ताकि तुम स्वतंत्र हो जाओ। ताकि तुम्हारी महिमा पर कोई सीमा न रह जाए, कोई बाधा न हो। सब पत्थर हट जाएं। तुम्हारी मुक्ति परिपूर्ण हो जाए।
तो बुद्ध ने हजारों लोगों को आस्तिक बना दिया, बिना ईश्वर के। और तुम ईश्वर को पकड़े बैठे हो और आस्तिक नहीं हो पाए। बड़ी गहरी कला बुद्ध ने मनुष्य को सिखायी।
फिर बुद्ध जब कहते हैं, ईश्वर नहीं है, तो वे किसी सिद्धांत की बात नहीं कह रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि ईश्वर नहीं है, ऐसा मेरा कोई सिद्धांत है। वे इतना ही कहते हैं, जब सत्य को जाना, तो स्वयं को देखा, ईश्वर को नहीं।
कुछ भी नहीं हैं ये कुफ्रो-ईमां दोनों
कुछ भी नहीं हैं ये गबरो-मुसलमां दोनों
जब राजे-हकीकत से उठाया पर्दा
रोने लगे हो-हो के पशेमां दोनों
न तो धार्मिक की बात सच है, न अधार्मिक की बात सच है। न हिंदू की, न मुसलमान की। जब पर्दा उठता है सत्य से, तो दोनों रोने लगते हैं। क्योंकि यह तो कुछ और ही है जो देखा। इसको तो कभी सोचा भी न था। सपने में भी इसकी झलक न मिली थी।
जब बुद्ध ने कहा, ईश्वर नहीं है, तो उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा, जिस ईश्वर की तुम चर्चा कर रहे हो, वह तुम्हारी कल्पना का प्रक्षेपण है। वह तुमने ही बनाया है।
अगर घोड़े ईश्वर बनाएंगे तो घोड़े की शकल में बनाएंगे। आदमी की शकल में
तो कभी नहीं बना सकते। अगर आदमी की शकल में बनाएंगे तो शैतान को बनाएंगे, क्योंकि आदमी ने घोड़ों को सिर्फ सताया। किया क्या है? अगर घोड़े ईश्वर बनाएंगे, तो घोड़े की शकल में बनाएंगे, सुंदरतम घोड़ा बनाएंगे, कोई चेतक। राणा प्रताप का घोड़ा। आदमी की शकल में तो नहीं बना सकते, राणा प्रताप को भी स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि राणा प्रताप भी चेतक पर ही चढ़े रहे, छाती तो चेतक की ही रौंदी। आदमी तो घोड़े स्वीकार नहीं कर सकते।
इसीलिए तो दुनिया में इतनी ईश्वर की धारणाएं हैं, क्योंकि इतने तरह
के आदमी हैं। अब तुम अगर नीग्रो से कहो कि तू गोरे भगवान को बना ले, कैसे बनाएगा? गोरा शैतान हो सकता है, भगवान कैसे हो सकता है! गोरे ने सिर्फ सताया है, छाती पर चढ़ा रहा। नीग्रो तो काला ही भगवान बनाएगा। गोरा तो नहीं बना सकता। जरा गोरे से कहो कि काला भगवान बना लो, वह सोच भी नहीं सकता। नीग्रो को तो पास नहीं बैठने देता, काले भगवान के चरण छुएगा? गोरे का भगवान गोरा होगा। काले का भगवान काला होगा।
इसीलिए तो श्याम बस गए भारत के मन में। श्याम भारत का रंग है। इसलिए श्याम ने जैसा लुभाया, किसी ने नहीं लुभाया। जैसी उनकी बांसुरी ने पास बुलाया, किसी ने नहीं बुलाया। वह भारत का रंग है। वह हमसे मेल खाता है, तालमेल खाता है। प्रत्येक जाति अपनी ही शकल में तो अपने भगवान को बनाती है। चीनी से कहो कि तुम जरा लंबी नाक वाले भगवान को बना लो, नहीं बना सकता। चपटी ही नाक होगी। गाल की हड्डियां उठी ही हुई होंगी। चीनी का भगवान चीनी होने को है।
इसे तुम जरा गौर से देखो तो तुम्हें यह समझ में आ जाएगा कि हमारा भगवान हमारी ही कल्पना का विस्तार है। उसे हम अपने ही रंग-रूप में बनाते हैं। वह हमारी ही सुंदरतम छबि है। जैसा हम चाहते हैं कि हम होते, वैसा हमारा भगवान होता है।
बुद्ध कहते हैं, जब सत्य का पर्दा उठता है, तब तुमने जितने भगवान सोचे थे, वे कोई भी नहीं पाए जाते। और अगर तुम्हारा ही कोई भगवान वहां मिल जाए, तो समझना कि अभी सत्य का पर्दा नहीं उठा, तुम किसी आत्म-सम्मोहन में खो गए

हो। तुमने किसी निद्रा में स्वप्न देखा है। अगर राम बचें, कृष्ण बचें, तो समझ लेना, कोई सपना देख रहे हो। यह तो तुम्हारी ही धारणा है। यह तो तुम्हारा ही जाल है। पर्दा अभी उठा नहीं। जब पर्दा उठता है, तो मनुष्य ने जो भी सोचा है, वह कुछ भी काम नहीं आता। आ नहीं सकता। क्योंकि जिसे तुमने जाना नहीं, उसे तुम सोचोगे कैसे पहले से? और जान लेने के बाद तो सोच ही नहीं सकते, क्योंकि वह सोचने से बहुत बड़ा है। बहुत बड़ा है। सोचना बहुत छोटा है।
ऐसा ही समझो कि तुमने कहानी सुनी है मेंढक की, जो कुएं में था। और फिर सागर का एक मेंढक आ गया। उस कुएं के मेंढक ने स्वाभाविक पूछा, कहां से आते हो मित्र? सागर से आता हूं, उसने कहा। सागर? कितना बड़ा है? सागर के मेंढक ने चारों तरफ देखा, कैसे बताए! क्योंकि यह कुएं का मेंढक, कुएं में ही पैदा हुआ, कुएं में ही बड़ा हुआ। उसने कहा, जरा मुश्किल पड़ेगा समझाना। आप यहीं कुएं में ही रहे हैं सदा? उसने कहा, सदा से रहा हूं। इससे तो छोटा ही होगा सागर? उसने कहा कि नहीं।
तो कुएं का मेंढक छलांग लगाया। एक तिहाई कुएं में छलांग लगायी, इतना बड़ा? हंसने लगा सागर का मेंढक, उसने कहा कि नहीं। मुश्किल है बताना। उसने दो तिहाई कुएं में छलांग लगा दी; इतना बड़ा? उसने कहा कि नहीं, इतने से काम न चलेगा। उसने पूरे कुएं में छलांग लगा दी, लेकिन सागर के मेंढक ने कहा कि नहीं, इतना बड़ा, इससे भी काम न चलेगा, बहुत बड़ा है। इस कुएं से हम पैमाना न बना सकेंगे। हम इसके आधार पर, इसके मापदंड से नाप न सकेंगे।
तो फिर कुएं के मेंढक ने कहा, निकल झूठे, बाहर! इससे बड़ा कोई सागर न कभी हुआ है, न हो सकता है।
ऐसा आदमी का विचार का कुआं है। उसी में हम पैदा होते, उसी में बड़े होते। उसी में जीते। बुद्ध सागर से आते हैं। सागर को देखकर हमारे कुएं में आते हैं। हम उनसे पूछते हैं, हमारे ईश्वर जैसा ही है सत्य? बुद्ध कहते हैं, नहीं! इससे काम न चलेगा। बस इतना ही मतलब है बुद्ध जब ईश्वर को इंकार करते हैं। वे कहते हैं, इस कुएं से मापदंड न बनेगा। तुम जो कुछ भी कहोगे, तुम्हारी भाषा जो कहेगी, मुझे न ही कहना पड़ेगा। नहीं, नहीं, नहीं। नेति- नेति ही करते जाना पड़ेगा।
उपनिषदों ने नेति-नेति की प्रशंसा की है। लेकिन फिर उपनिषद के भक्त
भी डर गए, जब किसी आदमी ने वस्तुतः नेति-नेति कहा। उपनिषद तो सिर्फ बात करके रह गए थे, बुद्ध ने वस्तुतः कहा, नेति-नेति। नहीं, नहीं। यह रूप भी नहीं। वह रूप भी नहीं। तुमने जितनी भी बातें परमात्मा के संबंध में कही हैं, सब नहीं।
स्वभावतः आदमी को धक्का लगा। हमको इतना तो इंकार मत करो। कुछ तो कहो। इससे हजार गुना बड़ा होगा, लाख गुना बड़ा होगा, करोड़ गुना बड़ा होगा, लेकिन कुछ तो कहो। हमारे मापदंड को स्वीकार तो करो। करोड़ गुना बड़ा होगा, तो भी आदमी निश्चिंत हो जाएगा। वह कहेगा, कोई हर्ज नहीं, मापदंड तो अपने हाथ में है। एक कदम चलना अपने हाथ में है। एक-एक कदम चलकर हजार मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
लेकिन बुद्ध ने कहा, इस कदम से पहुंचना हो ही नहीं सकता, यह कदम ही गलत है। कल्पना का कदम ही गलत है। चाहे तुम उसे प्रार्थना कहो, चाहे भक्ति कहो। चाहे तुम उसे पूजा-अर्चना कहो। कल्पना का कदम गलत है।
कल्पना से जागना है। यह तो कल्पना में सो जाना है। यह कल्पना में सोने
से तुम सपने देख लोगे, सुंदर सपने, मनभावन, खूब रस-भरे सपने, पर जब भी आंख खुलेगी--रोने लगे हो-हो के पशेमां दोनों।
कुछ भी नहीं हैं ये कुफ्रो-ईमां दोनों
धार्मिक, अधार्मिक; काफिर और मुसलमान।
कुछ भी नहीं हैं ये गबरो-मुसलमां दोनों
जब राजे-हकीकत से उठाया पर्दा
जब सत्य से पर्दा उठाया, घूंघट हटाया! रोने लगे हो-हो के पशेमां दोनों

वे रोएंगे। सिर्फ बुद्ध नहीं रोएंगे। बुद्ध के पीछे चलने वाला नहीं रोएगा। क्योंकि वह कोई आकांक्षा लेकर ही नहीं चल रहा है। वह कोई अपेक्षा लेकर ही नहीं चल रहा है। वह तो शून्य का दर्शन करने चला है। उसने कोई आकार बनाया ही नहीं।
बुद्ध से ज्यादा बड़ा निराकारवादी नहीं हुआ। बुद्ध से बड़ा निर्गुणवादी नहीं हुआ। आस्तिक हैं, जो कहते हैं, परमात्मा है, निराकार है। वे गलत भाषा बोल रहे हैं। अगर है, तो आकार आ गया। सिर्फ नहीं ही निराकार हो सकती है।
इसलिए कहता हूं, बातें जरा सूक्ष्म हैं। बुद्ध ने कहा, परमात्मा नहीं है। अगर इसको हम आस्तिक की भाषा में रखें, इसका अर्थ होगा, परमात्मा निराकार है। लेकिन नहीं कहा निराकार, नहीं। क्योंकि अगर कहो परमात्मा निराकार है, और परमात्मा भी कहे चले जा रहे हो, तो निराकार और परमात्मा में मेल नहीं बैठता। परमात्मा का तो आकार हो गया, जैसे कहा, है।
तुमने कहा, वृक्ष है, आकार हो गया। तुम कहो, वृक्ष है और निराकार है, तब तुम मूढ़ता की बातें कर रहे हो। तुमने कहा, सूरज है, आकार हो गया। जहां है आया, वहां आकार आया। जहां है आया, वहां गुण आया। फिर तुम कहो कि परमात्मा है और निर्गुण है, तो तुम विरोधाभास बोल रहे हो। इधर हां कहते हो, इधर न कहते हो। इतना उपद्रव करने की क्या जरूरत?
बुद्ध की निष्ठा बड़ी साफ है। जब उन्हें परमात्मा को निराकार कहना है,
वे कहते हैं, परमात्मा नहीं है। अब तुम समझ पाओगे। नहीं का अर्थ है, निराकार।
बुद्ध का नहीं और नास्तिक का नहीं बड़े अलग-अलग हैं। बुद्ध के नहीं में अस्वीकार नहीं है, बुद्ध के नहीं में निराकार है। नास्तिक के नहीं में अस्वीकार है। दो में से एक ही बच सकता है। यह वचन है, परमात्मा निराकार है। बुद्ध को लगता है, अगर परमात्मा को बचाते हैं, तो निराकार खोता है। अगर निराकार को बचाते हैं, तो परमात्मा खोता है। बुद्ध ने परमात्मा को खोना पसंद किया, निराकार को खोना पसंद नहीं किया। क्योंकि निराकार ही भगवत्ता का आत्यंतिक स्वरूप है। ऐसे बुद्ध ने परमात्मा को बचाया।
अब तुम्हें बात जरा उलझी मालूम पड़ने लगेगी। क्योंकि तुम तो दो और दो चार वाली दुनिया में रहते हो। काश, सत्य इतना गणित जैसा साफ-सुथरा होता। नहीं है इतना साफ-सुथरा। बुद्ध ने निराकार की घोषणा की है। न बुद्ध के अनुयायी समझ सके, न बुद्ध के विरोधी समझ सके ठीक-ठीक कि यह आदमी क्या कह रहा है! बुद्ध सिर्फ नेति-नेति की भाषा बोल रहे थे।
बुद्ध चाहते थे, प्रार्थना रुके। परमात्मा रुके तो प्रार्थना रुकती है। परमात्मा रहे, तो प्रार्थना जारी रहेगी। बुद्ध चाहते थे, ध्यान हो। परमात्मा रहे तो ध्यान होना मुश्किल। परमात्मा हटे तो ही ध्यान हो सकता है।
प्रार्थना और ध्यान का अंतर। प्रार्थना--सदा किसी के सामने। ध्यान-- सदा एकांत में। प्रार्थना में हाथ जुड़े हैं किसी के चरणों में, ध्यान में कोई भी नहीं है। अकेले, अकेले तुम हो। परम एकाकी तुम हो। शुद्ध एकांत है। कोई भी नहीं और। कोई विचार नहीं, कोई तरंग नहीं। अगर परमात्मा का भी विचार है, तो बुद्ध कहते हैं, ध्यान खंडित हो गया।
मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं, आप कहते हैं ध्यान करें, किस पर ध्यान करें? ये प्रार्थना की बात पूछ रहे हैं, ये ध्यान समझे ही नहीं। किस पर? तो तुम प्रार्थना की पूछ रहे हो। तुम पूछ रहे हो, किसकी प्रार्थना करें? माना, अगर प्रार्थना की मैं कहता, तो मुझे बताना चाहिए, किसके सामने प्रार्थना करो, किसकी प्रार्थना करो। ध्यान का अर्थ ही बड़ा अलग है। ध्यान का अर्थ है, बस तुम अकेले रह जाओ, वहां कोई भी न हो। और यह मजा है,
जब वहां कोई भी नहीं होता, तब तुम भी नहीं रह जाते। पहले तो ध्यान लगता है, अकेला होना। लेकिन मैं के बचने के लिए तू का बचना जरूरी है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम तभी तक मैं कह सकते हो, जब तक किसी तरह पास में कगार पर तू बचा हो। किनारे पर तू खड़ा हो, तब तुम मैं कह सकते हो। जब कोई तू न बचे, उस घड़ी में मैं कैसे कहोगे? मैं बिल्कुल अर्थहीन होगा। मैं का अर्थ

होता है, जो तू नहीं। अब जब तू ही नहीं है, तो मैं कैसे होगा? पहले तू जाता है, फिर मैं चला जाता है।
ध्यान का मार्ग है, पहले तू को छोड़ दो। तू को छोड़ना है, तो परमात्मा छोड़ना पड़ेगा। फिर मैं अपने से छूट जाएगा। प्रार्थना का मार्ग है, पहले मैं को छोड़ दो, तू को पकड़ लो, परमात्मा को। और जब मैं छूट जाएगा, तो तू कैसे बचेगा?
वे अलग-अलग रास्ते हैं। बुद्ध का रास्ता ध्यान का है।
किब्रियाई तेरी बदनाम हुई जाती है
बंदगी तुझ पे इक इलजाम हुई जाती है
ऐ दुआ मांगने वाले! तेरी हरदम की दुआ
अब खुदा के लिए दुश्नाम हुई जाती है
प्रार्थना, पूजा, आदमी किए चला जाता है। यह आदमी की पूजा और प्रार्थना आदमी की ही पूजा और प्रार्थना है। तुम कहते हो, परमात्मा की पूजा करने गए थे। गए तो तुम थे। पूजा तुम्हारी ही होगी। तुमसे होगी, तुम्हारी होगी। तुम्हारा गुणधर्म तुम्हारी पूजा पर फैल जाएगा। तुम्हारी बीमारी के रोगाणु तुम्हारी पूजा में होंगे। तुम्हारी पूजा तुम्हारी पूजा है। तुम मंदिर तक अपने रोगाणु छोड़ आए। तुम जरा अपनी पूजा को भी देखो। तुम पूजा में मांगोगे क्या? तुम प्रार्थना में करोगे क्या? तुम वही करोगे जो तुम हो। स्वयं से अन्यथा तो कुछ किया नहीं जा सकता।
परमात्मा के सामने जब तुम हाथ फैलाते हो, तुम मांगते क्या हो? संसार
ही मांगते हो। तुम्हारे हाथ ही संसारी हैं। तुम जब परमात्मा की प्रार्थना करने लगते हो, तुम्हारी प्रार्थना खुशामद जैसी होती है। इसलिए तो प्रार्थना को स्तुति कहते हैं--कि तू महान है, कि तू पतित-पावन है। यह तुम किस पर मक्खन लगा रहे हो!
तुमने मक्खन लगाना सीखा संसार में। यहां तुमने देखे लोग, जिनके अहंकार को जरा फुसलाओ--मक्खन लगाओ, मालिश करो--फिर जो भी तुम करवाना चाहो, करवा लो। गधों को घोड़े कहो, वे प्रसन्न हो जाते हैं। जब रास्ते पर तुम बिना प्रकाश की साइकिल से पकड़ जाओ, पुलिस वाले को इंस्पेक्टर कहो, वह छोड़ देता है।
वही आदमी भगवान की खुशामद कर रहा है, वह सोचता है कि ठीक है, समझा-बुझा लेंगे। लेकिन असली मंशा उसकी थोड़ी देर बाद जाहिर होती है, वह कहता है, नौकरी नहीं मिल रही। अब वह यह कह रहा है, इतनी प्रार्थना की तेरी और नौकरी नहीं मिल रही है, अब तेरी प्रार्थना में संदेह पैदा हुआ जा रहा है। अब तेरी इज्जत का सवाल है। अब बचा अपनी इज्जत, लगवा नौकरी। कि लड़का बीमार है, ठीक नहीं हो रहा है। और मैं इतनी तेरी पूजा कर रहा हूं। और तू क्या कर रहा है? तुम्हारी प्रार्थना में भी शिकायत है। अगर शिकायत न हो, तो प्रार्थना
ही नहीं होती। प्रार्थना की क्या जरूरत है?
किब्रियाई तेरी बदनाम हुई जाती है
बंदगी तुझ पे इक इलजाम हुई जाती है
तुम जब भी प्रार्थना करते हो, उसमें कहीं इलजाम होता है। शिकायत होती है। तुम ढांकते हो अच्छी भाषा में उसे, लेकिन अगर गौर से देखो, तो तुम यह कह रहे हो--लो, अब हम तो कर चुके स्तुति, अब तुम करके दिखाओ। अब हमने अपना कर दिया, अब तुम करो। अब अगर तुमसे न हो सके, तो कैसे तुम सर्वशक्तिमान! कैसे तुम सर्वज्ञाता! कैसे तुम सर्वव्यापक!
ऐ दुआ मांगने वाले! तेरी हरदम की दुआ
अब खुदा के लिए दुश्नाम हुई जाती है
तुम्हारी पूजा और प्रार्थना के शब्द अपशब्द हो जाते हैं। दुश्नाम हो जाते हैं।
बुद्ध ने कहा, प्रार्थना को हटाओ। बहुत हो चुकी प्रार्थना, कुछ होता नहीं। परमात्मा तो दूर, आदमी आदमी नहीं हो पाता। परमात्मा की खोज तो मुश्किल है, आदमी को आदमी ही नहीं मिल पाता। यह परमात्मा जोड़ना था। जोड़ता तो नहीं, बीच में तोड़ने की तरह खड़ा हो गया है, पत्थर की तरह खड़ा हो गया है।

क्या फर्क है हिंदू और मुसलमान में? कौन सा फर्क है? क्या फर्क है हिंदू और ईसाई में? बस परमात्मा की धारणा का फर्क है, और तो कोई फर्क नहीं है। कोई पूरब की तरफ हाथ जोड़ता है, कोई पश्चिम की तरफ हाथ जोड़ता है। ऐसी छोटी बातों पर सिर खुल जाते हैं। बड़ी क्षुद्र बातों में। धर्म ने क्षुद्र बातें सिखा दीं। यह तो परमात्मा के साए में बीमारियां पलीं।
बुद्ध ने कहा, हटाओ यह साया! आदमी को साफ-साफ होने दो। यह तो धर्म की आड़ में अधर्म पला। अगर आदमी की कोई ईश्वर की धारणा न हो, तो तुम्हारे और दूसरे के बीच क्या फासला होगा? तुमने कभी दो तरह के नास्तिक देखे? बुद्ध को यह बात समझ में आ गयी। दो तरह के तुमने नास्तिक देखे? तुमने नास्तिकों को कभी लड़ते देखा? तुमने नास्तिकों के कोई संप्रदाय देखे? क्या कारण है कि नास्तिक का कोई संप्रदाय नहीं?
नहीं पर संप्रदाय बन ही नहीं सकता। नहीं दो ढंग की तो हो ही नहीं सकती। तुम कहो मेरी नहीं अलग, तुम्हारी नहीं अलग। हमारी नहीं हिंदू, तुम्हारी नहीं मुसलमान। तो पागलपन मालूम होगा। हां में फर्क हो सकता है। रूप, आकार में फर्क हो सकता है, निराकार में तो फर्क नहीं हो सकता।
इसलिए नास्तिक तो सारी दुनिया में एक हैं। होना तो आस्तिक को एक चाहिए था। नास्तिक लड़ते, समझ में आता। ईश्वर-विहीन अंधकार में भटकते हुए लोग, वे तो लड़ते दिखायी नहीं पड़ते। आस्तिक लड़ता है। और एक आस्तिक दूसरे आस्तिक की पीठ में छुरा भोंकता है।
बुद्ध को यह बात दिखायी पड़ी। उन्होंने कहा, ईश्वर के नाम से भला नहीं हुआ। नुकसान हुआ। हटा लो। आदमी को आदमी नहीं मिल पा रहा।
बात इतनी सी है, ऐ वाइजे-अफलाकनशीं
क्या मिलेगा उसे यजदां जिसे इन्सां न मिला
भगवान कैसे मिलेगा? आदमी से मिलना नहीं हो पा रहा है! बस इतनी सी बात है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर को हटा लिया। और बुद्ध ने कहा, इस ईश्वर को हटाने से लाभ होगा। हानि तो कुछ भी नहीं। और फिर भीतर ईश्वर को प्रतिष्ठित किया। तुम्हारा मंदिर अगर तुम्हारे भीतर हो, तो लड़ाई-झगड़े पैदा नहीं होंगे। तुम्हारा मंदिर अगर बाहर बना तो मस्जिद से अलग हो जाएगा। लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाएंगे।
बुद्ध ने कहा, अब वक्त आ गया है कि मंदिर आदमी के भीतर बने। वक्त आ गया
है कि अब आदमी मंदिर बने। अब ईंट-पत्थर के मंदिर से काम न चलेगा।
"आपने कल कहा कि ईश्वर को अस्वीकार कर भगवान बुद्ध ने मनुष्य को बड़ी
से बड़ी गरिमा से मंडित किया।"
निश्चित ही। मनुष्य को भगवान बनाया। मनुष्य को भगवान होने की संभावना दी। मनुष्य को कहा, भगवान कहीं और नहीं, तेरे ही बीज में छिपा है। उसे प्रगट होना है। ठीक भूमि दे, जल सींच, सुरक्षा कर, सूरज की किरणों को पड़ने दे, मेघ बरसें तो छिप मत, खुला रख--अनुकूल समय पर, सम्यक ऋतु में तेरा फूल खिलेगा। तू मिटेगा। भगवान होगा।
इसीलिए तो भगवान बुद्ध कहते रहे हैं कि भगवान नहीं है। फिर भी उनको प्रेम करने वाले लोग उन्हें भगवान कहते गए। और बुद्ध ने एक भी जगह इनकार नहीं किया कि मुझे भगवान मत कहो।
यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह आदमी कहता है, कोई ईश्वर नहीं है, कोई भगवान नहीं है। और इसके शिष्य इसे भगवान कहकर बुलाते रहे और इसने एक बार भी न कहा कि मुझे भगवान मत कहो। बुद्ध ने भगवान को मनुष्य की अंतिम संभावना बनाया। वह मनुष्य का पूरा खिल जाना है, मनुष्य का प्रफुल्ल हो जाना है। छिपाओ मत आड़ों में।
चलीं इस चमन में आंधियां कि जमीन ता-ब-फलक गयी
मैं वह बदनसीब गुबार हूं, जो इक आस्तां में छिपा रहा
जब आंधियां आती हैं--और ऐसी आंधियां आती हैं, बुद्ध ऐसी ही आंधी हैं--
जब कि जमीन आकाश को छू लेती है!
चलीं इस चमन में आंधियां कि जमीन ता-ब-फलक गयी
ऐसा तूफान उठा, ऐसा बवंडर उठा कि जमीन की धूल आकाश को छू ली।
मैं वह बदनसीब गुबार हूं, जो इक आस्तां में छिपा रहा

और मैं एक ड्योढ़ी में छिपा रहा। एक जरा सी धूल का टुकड़ा, सीढ़ी की आड़ में पड़ा रहा। आंधी से बचा लिया।
जब बुद्ध जैसा व्यक्ति पृथ्वी पर आता है, तो आंधी लेकर आता है। उसके साथ तुम आकाश में उठ सकते थे। लेकिन बहुत थोड़े लोगों ने उस आंधी के प्रति अपने को खुला छोड़ा। और जब आंधी आती है, तो तुम्हारी सब धारणाओं को तोड़ जाती हैं। आंधी तुम्हारी धारणाओं की फिकर करती है? तुम्हारे घर-घूलों की? तुमने रेत के जो घर बना रखे हैं, उनकी चिंता करती है? आंधी आती है, सब पोंछ जाती है। आंधी ही क्या जो तुम्हारे रेत के घर-घूले न मिटा पाए! हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सबको पोंछ जाती है। जब आंधी आती है, तो वेद, कुरान, बाइबिल, सबको उड़ा जाती है। जब आंधी आती है, तो सिर्फ थोड़े से हिम्मतवर उस आंधी के ऊपर सवार हो जाते हैं और आकाश को छू लेते हैं।
बुद्ध ने ईश्वर को इंकार किया, ताकि तुम ईश्वर हो सको। बुद्ध ने ईश्वर
की बात नहीं उठायी। बात क्या करनी है! होने की बात है, करने की थोड़े ही बात है! होकर देख लो। बुद्ध ने द्वार खोला और कहा, आओ, भगवान होकर देख लो! आओ, आकाश होकर देख लो! बात कब तक करते रहोगे? बहुत हो चुकी बात।
यही मैं तुमसे कहता हूं, न भगवान की पूजा की जरूरत है, न भगवान का गुणगान करने की जरूरत है। कितना तो कर चुके। कब समझोगे? द्वार खोलता हूं, आओ, भगवान ही हो जाओ! इससे कम पर राजी भी क्या होना! क्या गिड़गिड़ाए चले जाना! उठो, अपनी गरिमा को सम्हालो! उठो, अपनी गरिमा की अभिव्यक्ति करो! उठो, अभिव्यंजना होने दो!
डर स्वाभाविक है। प्रश्न में पूछा गया है, "यही दलील तो नास्तिक भी ईश्वर के खिलाफ पेश करते हैं।"
दलील के शब्द यही होंगे, दलील यही नहीं। शब्दों पर मत जाओ। शब्द तो कभी-कभी एक ही जैसे होते हैं, फिर भी अर्थ अलग हो जाता है। प्रेम में वही शब्द कहा जा सकता है, क्रोध में वही शब्द कहा जा सकता है। प्रशंसा में वही शब्द कहा जा सकता है, निंदा में वही शब्द कहा जा सकता है। सचाई से वही शब्द कहा जा सकता है, व्यंग्य में वही शब्द कहा जा सकता है।
शब्द पर मत जाओ। मूढ़ों को भी महापंडित कहते हैं! शब्द में व्यंग्य भी
हो सकता है। शब्द वही है। शब्द पर मत जाओ। थोड़ा झांककर देखो, शब्द में अर्थ को तलाशो। चार्वाक ने कहे हैं वही शब्द। बुद्ध भी वही शब्द कहते हैं। मार्क्स भी वही शब्द कहते हैं। लेकिन बड़े फर्क हैं।
राहुल सांकृत्यायन ने--एक बौद्ध पंडित ने--जो कि साथ ही साथ कम्युनिस्ट भी थे, इस बात की पूरे जीवन चेष्टा की कि बुद्ध और मार्क्स में तालमेल है। बुद्ध वही कहते हैं जो मार्क्स। बुद्ध जैसे मार्क्स की भविष्यवाणी हैं। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की पूर्वघोषणा। मगर राहुल सांकृत्यायन का दृष्टिकोण बुनियादी रूप से गलत है। गलत ही नहीं, खतरनाक है, भ्रामक है।
बुद्ध वही नहीं कहते हैं जो मार्क्स कह रहे हैं। मार्क्स का वक्तव्य सामान्य नास्तिकता का वक्तव्य है। बुद्ध का वक्तव्य परम आस्तिकता का वक्तव्य है। ऐसी आस्तिकता जहां परमात्मा के होने से भी बाधा पड़ती है। ऐसी आस्तिकता जहां आस्था ही काफी है, जहां आस्था के लिए कोई सीढ़ी नहीं चाहिए। इसे ख्याल में लो। अगर तुम परमात्मा है, इसलिए झुकते हो, तो तुम्हारा झुकना पूरा नहीं है। अगर परमात्मा न होगा तो फिर तुम न झुकोगे। अगर परमात्मा है, इसलिए झुकते हो, तो तुम्हारा झुकना वास्तविक नहीं है। यह ऐसे ही हुआ कि रास्ते से निकलते थे, देखा पुलिस वाला नहीं है, तो तुमने कार जहां चाही वहां मोड़ दी। पुलिस वाला होता, तो तुम बाएं चलते। पुलिस वाला नहीं, तो जहां चाहे वहां मोड़ दी।
मेरे एक मित्र हैं, कवि हैं। इंग्लैंड में कुछ शोध-कार्य करते थे। एक रात किसी मेहमान के घर से लौटते थे टैक्सी में। दो बजे रात की बात। सर्द रात, बर्फ पड़ रही। राहों पर कोई नहीं, दूर-दूर तक सब निर्जन। लेकिन वह टैक्सी-ड्राइवर एक चौराहे पर आकर रुक गया, क्योंकि अभी प्रकाश की बत्ती रुकने को कह रही थी।

तो मेरे मित्र ने कहा, यहां रुकने की क्या जरूरत है? ठिठुरे जा रहे हैं। चलो भी! न कोई पुलिस वाला है, न कोई देखने वाला है, न कोई है जिससे कि टक्कर हो जाए। उस टैक्सी वाले ने कहा, फिर आप कोई और टैक्सी पकड़ लें। यह सवाल पुलिस वाले का नहीं है, निष्ठा का है। यह सवाल इसका नहीं कि कोई है या नहीं, नियम का है।
तुम अगर परमात्मा के कारण नैतिक हो, तुम्हारी नीति बड़ी कमजोर है, लचर है। तुम अगर नैतिक हो, परमात्मा हो या न हो, तो तुम्हारी नीति बहुमूल्य है। मजनू हैं, मगर ख्वाहिशे-लैला नहीं करते
हम इश्क तो करते हैं, तमन्ना नहीं करते
बुद्ध ने आस्था दी। आस्था के लिए कोई जगह न दी जहां तुम जगह पर रख लो उसे। बुद्ध ने सिर्फ आस्था का शुद्ध-भाव दिया। श्रद्धा दी। श्रद्धा के लिए कोई आधार न दिया। निराधार-श्रद्धा दी। बुद्ध ने कहा, झुको तो जरूर, लेकिन कोई है नहीं जिसके लिए झुको। झुकने में मजा है। बुद्ध ने कहा, झुकना इतना अहोभाव है, झुकना इतना परम आनंद है कि झुको, यह मत पूछो किसके लिए झुकते हो। अगर तुम किसी के लिए झुकते हो, तो तुमने झुकने का मजा जाना ही न। स्वाद न जाना। झुकना अपने आप में इतना पर्याप्त है, अब और किसी सहारे की जरूरत नहीं। सहारा क्यों मांगते हो? नाचो।
इसका अर्थ ठीक से समझना। इसका अर्थ हुआ कि बुद्ध ने साधन को साध्य बना दिया। बुद्ध ने कहा, मार्ग ही मंजिल है। यात्रा ही गंतव्य है। खोजी में ही खोज का आखिरी बिंदु छिपा है, कहीं और नहीं। यही क्षण शाश्वत है, सनातन है। बुद्ध अपने को क्षणवादी कहते थे। वे कहते थे, क्षण ही बस है। अगले क्षण को मत मांगो। यह क्षण काफी है। इस क्षण का आनंद काफी है। इस क्षण का नृत्य, संगीत काफी है। तुम इसको जीओ, भोगो।
कठिन है। क्योंकि हमें लगता है कि बिना सहारे हम कैसे चलेंगे। हालांकि तुम बिना सहारे ही चलते रहे हो। सहारा सिर्फ भ्रांति है। बुद्ध ने सिर्फ भ्रांति छीनी है तुमसे। और अगर एक बार भ्रांति गिर जाए, तो तुम्हें अपने पैरों पर भरोसा आ जाए। और अपने पर भरोसा आया, तो परमात्मा पर भरोसा आया।
ऐसा समझो, जिसे अपने पर भरोसा न आया, उसे कैसे परमात्मा पर भरोसा आएगा। जिसने अभी अपने पर भी भरोसा नहीं लाया, वह जिस पर भी भरोसा लाएगा, उस पर भी संदेह बना रहेगा। तुम्हारे भीतर संदेह है, अपने पर संदेह है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमारी आप पर पूरी श्रद्धा है। मैं कहता हूं, ठहरो, जल्दी न करो। तुम्हारी अपने पर श्रद्धा है? वे कहते हैं, अपने पर तो नहीं है। तो फिर मैंने कहा, तुम मुझ पर कैसे करोगे? तुम्हीं करोगे न? तुम्हें अपने पर श्रद्धा नहीं है, तो अपनी श्रद्धा पर कैसे श्रद्धा होगी। वह तुम्हारी ही श्रद्धा है न! तुम भीतर डगमगा रहे हो, संदेह से भरे हो, तुम घबड़ाकर कहते हो, हम आप पर श्रद्धा करते हैं, पूरी श्रद्धा करते हैं। यह टिकेगी नहीं। यह ज्यादा देर न चलेगी। तुम गलत आश्वासन में पड़ जाओगे। व्यर्थ की उलझन पैदा होगी।
सत्य को देखो, सचाई को देखो। पहले वहां पैरों का डगमगाना समाप्त होना चाहिए। जिस दिन वहां तुम खड़े हो जाओगे--सुदृढ़--उस सुदृढ़ता से एक और ही तरह की श्रद्धा का जन्म होगा। उस श्रद्धा की जड़ें होंगी तुम्हारे जीवन में। उसमें बल होगा। सामर्थ्य होगा। उस श्रद्धा में आश्वासन होगा। कुछ हो सकता है।
अभी तुम जो श्रद्धा कर रहे हो, और कहते हो, मैं सब आपके ऊपर छोड़ता हूं, मेरी आप पर बड़ी श्रद्धा है, तुम आज नहीं कल मुझे दोष दोगे। तुम कहोगे, हमने तो सब छोड़ दिया था, कुछ हुआ नहीं। आपने कुछ किया नहीं। तुम छोड़ कैसे सकते हो पूरा? पूरा छोड़ने के लिए तो पूरी श्रद्धा चाहिए। और मजा यह है, जिसको अपने पर पूरी श्रद्धा है, छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जहां श्रद्धा है, वहीं सत्य के सुमन खिलने लगते हैं।
बुद्ध ने तुम्हारे आसपास से जो भी सांयोगिक धर्म है, वह हटा दिया। जो बिल्कुल सारभूत धर्म है, उतना ही बचाया। उन्होंने जो भी अनावश्यक था, वह हटा दिया। उन्होंने कहा, अनावश्यक का जंगल खड़ा हो गया है। उसमें तुम भटके

चले जा रहे हो। अनावश्यक को हटा दो, आवश्यक को बचा लो। जिसको हटाया न जा सके, बस उसको बचा लो। जिसको काटना भी चाहो तो न काट सको, बस उसको बचा लो। जो तुम्हारा स्वभाव है, वही बच जाए तो सब बच गया।
फिर पूछा है, "और क्या ईश्वर को अस्वीकार कर मनुष्य का अहंकार और भी अंधा नहीं होगा?"
हो सकता है। आदमी पर निर्भर है। तुम पर निर्भर है। तुम ईश्वर के होने
को अहंकार बना सकते हो, तो ईश्वर के न होने को तो बना ही सकते हो। ईश्वर के होने से लोग अकड़कर चल रहे हैं कि हम ईश्वर पर भरोसा करते हैं, हम ईश्वर के मानने वाले। मंदिर जाते आदमी को देखो! दूसरों की तरफ ऐसे देखकर जाता है कि सब नरक जा रहे हैं। वह मंदिर जा रहा है!
कहते हैं, मोहम्मद एक युवक को लेकर मस्जिद गए। जब नमाज पढ़कर वापस लौटने लगे--अभी लोग सोए थे, गरमी के दिन थे, रात देर तक न सो सके थे, लोग बिस्तरों पर पड़े थे, राह पर--उस आदमी ने कहा कि देखो हजरत, ये पापी अभी तक सो रहे हैं!
ये पहली दफे गए थे खुद हजरत! मोहम्मद वहीं रुक गए। उन्होंने कहा, यह मुझसे भूल हो गयी कि मैं तुझे मस्जिद ले गया। तेरी नमाज तो बेकार गयी, मेरी नमाज खराब हो गयी। मुझे फिर जाना पड़ेगा।
उस युवक ने पूछा, मतलब? कहा, मतलब यह कि तू सोया रहता, जैसा तू रोज सोया रहता था, तो कम से कम इन लोगों को पापी तो नहीं समझता था। आज तूने एक दफा नमाज क्या पढ़ ली, सारा जगत पापी हो गया! तू मुझे छोड़, हाथ जोड़े तेरे। अब कल से मत उठना। कम से कम और लोग पापी तो नहीं दिखायी पड़ते थे। यह तो बड़ा अहंकार हो गया।
मोहम्मद--कहते हैं--वापस गए, रोए, फिर से प्रार्थना की और कहा, मुझे क्षमा कर दो, इस गलत आदमी को मैं उठा लाया। मैंने तो सोचा था प्रार्थना में डूबेगा, यह तो अहंकार में डूब गया।
तो तुम भगवान से जब अहंकार में डूब गए--ठीक है, प्रश्न बिल्कुल ठीक है-- भगवान न होगा, तो कहीं और अहंकार में न डूब जाओ। तुम पर निर्भर है। तुम औषधि को जहर बना लेते हो चाहो तो, चाहो तो जहर औषधि हो जाती है। सब तुम पर निर्भर है।
मैंने सुना, एक आदमी मरना चाहता था। तो रात जहर खरीदकर आ गया। पी लिया जहर। चिट्ठी लिखकर टेबिल पर रख दी कि मैं मर रहा हूं, क्षमा किया जाऊं। जो भला-बुरा किसी से कहा हो, माफ कर देना। सुबह घर के लोग इकट्ठे हुए, देखा चिट्ठी रखी है, छाती पीट-पीटकर रोने लगे। उनकी रोने की आवाज सुनी, वह आदमी जग गया।
तो पहले तो लोगों ने उसकी काफी लानत-मलामत की कि यह तुमने क्या करने
की सोची? फिर खुश हुए कि चलो मिलावटी जहर था। जहर भी शुद्ध आज मिलना कहां संभव है! शुद्धता के दिन गए। तो जहर भी, मरना भी हो तो मुश्किल है। खैर, भागी पत्नी, पड़ोस की दुकान से मिठाई खरीद लायी--खुशी में कि पति बच गया, मिठाई खिला दी। वे हजरत मर गए। मिठाई में जहर था। मिलावट थी। मुराद पूरी हुई। जो जहर से न हो सकी, वह मिठाई से हो गयी।
करोगे क्या? आदमी सब चीज में मिलावट किए जाता है। औषधि का जहर बना लेता है, जहर की औषधि बना लेता है, करोगे क्या?
तुम्हारा प्रश्न उचित है। डर है। लेकिन डर बुद्ध के वचनों के कारण नहीं है, डर आदमी की बेईमानी के कारण है। अब इसके लिए बुद्ध क्या करें? बुद्ध ने तो अहंकार छोड़ने के लिए ही उपाय बताया। बुद्ध ने तो यह कहा, जब भगवान ही नहीं है, तो तुम क्या खाक होओगे? बुद्ध ने यह कहा कि भगवान तक को इंकार कर रहा हूं, अब तुम कहां बचोगे? तुम किस ओट में बचोगे? यहां भगवान भी नहीं है, तुम अपने होने के सपने छोड़ो। तुम्हारा होना क्या!
इसलिए बुद्ध ने आत्मा शब्द का उपयोग भी करने से अपने को रोका। अनात्मा! अनत्ता! वे कहते हैं, तुम भी नहीं हो। न भगवान है वहां ऊपर, न तुम हो यहां भीतर। वहां जाने दो भगवान को, यहां जाने दो तुमको। तब जो बच रहेगा, बुद्ध उसकी कोई बात नहीं करते। वे कहते हैं, उसका तो स्वाद ही लो, जो बच रहेगा। वहां तू न रहे, भगवान न रहे; यहां मैं न रहे, भक्त न रहे। यह मैं-तू

का झमेला न रहे। फिर जो बच रहेगा, वही निर्वाण है। वह परमशून्य अवस्था, जहां कोई शब्द नहीं उठता, कोई तरंग नहीं उठती, वह परम निर्विकार दशा, वही समाधि है।
बुद्ध ने तो अहंकार से छुटकारे के लिए ही कहा। बुद्ध ने तो कहा कि तुम्हारा अहंकार अगर भगवान के साथ बंध जाए, तो वह ऐसे ही है जैसे कि अपने डब्बे को रेलगाड़ी के पीछे जोड़ दिया। डब्बा शायद अपने आप न भी चल पाता हो, अब भगवान के नाम से चलेगा। वह तो ऐसे ही है जैसे कि कार बिगड़ जाती है तो बस के साथ अटका दी। तुम्हारा अहंकार तो जगह-जगह अटकता है। टूट-फूट जाता है। छोटा है--बड़ा छोटा है। उसको महा-अहंकार के साथ जोड़ दिया--भगवान के साथ। फिर तुम उसके ईंधन से चलने लगे।
बुद्ध ने कहा, छोड़ो। वह भी नहीं है। तुम भी नहीं हो। यहां होना असत्य है। यहां न-होना सत्य है। यहां है झूठा है। यहां नहीं सत्य है। यहां आकार भ्रांति है, निराकार यथार्थ है। इसलिए बुद्ध शून्यवादी हैं।
नहीं, अगर तुम बुद्ध को समझोगे, तो अहंकार को बचने का कोई उपाय नहीं है।

दूसरा प्रश्नः जब मैं शुरू-शुरू आपके पास आयी थी तब ऐसा लगता था, मैं किसी विशेष पात्रता के कारण आपके पास पहुंच पायी हूं। लेकिन अब दिनों-दिन अपनी अपात्रता का बोध हो रहा है। और आपकी असीम करुणा का भी। ओशो, मेरा अहोभाव स्वीकार करें और मुझे आशीर्वाद दें।

पात्रता का बोध अपात्रता है। अपात्रता का बोध पात्रता है। जिसने समझा
कि मैं पात्र हूं, उसका अहंकार सघन होगा। जिसने समझा कि मैं अपात्र हूं, उसका अहंकार पिघलेगा, बहेगा। इसलिए कभी-कभी पापी पहुंच जाते हैं और पुण्यात्मा नहीं पहुंच पाते। पुण्य भी पाप से बदतर हो जाता है, अगर उससे अहंकार सजने लगे। और अक्सर सजता है।
कल रात ही मैं एक कहानी कह रहा था। एक ब.ूढी औरत मरी। देवदूत आए। वह बड़ी घबड़ा रही थी और कंप रही थी मर कर। आत्मा उसकी सिकुड़ रही थी। और घबड़ा रही थी, क्योंकि उसको पक्का था कि नरक ले जाएंगे। कभी कुछ ऐसा किया ही नहीं था कि स्वर्ग ले जाने की कोई बात उठती। पाप की प्रतीति थी, अपात्रता का बोध था।
देवदूतों ने कहा, तू अपने को इतना अपात्र समझती है, तो हमें तुझे स्वर्ग ले जाना ही पड़ेगा। हम तुझसे यह पूछते हैं कि तूने जीवन में कोई भी एकाध अच्छा काम किया हो। उसने कहा कि कुछ याद नहीं आता कि मैंने कभी अच्छा काम किया हो। बुरे बहुत किए। उनकी तोशृंखला, मेरा पूरा जीवन भरा है। हां, एक बात है। एक दफे एक भिखारी को एक गाजर मैंने भेंट दी थी। उन्होंने कहा, कोई फिकर नहीं।
वह गाजर प्रगट हुई और देवदूतों ने कहा कि तू पकड़ ले गाजर को, यह तुझे स्वर्ग ले जाएगी। इतना काफी है। परमात्मा की कृपा अपार है। इतना काफी है। वह बूढ़ी चढ़ने लगी स्वर्ग की तरफ, गाजर उठने लगी ऊपर। और भी जो इधर-उधर छिपी खड़ी आत्माएं थीं, भूत-प्रेत थे, वे भी उसके पैर पकड़ लिए, वे भी चलने लगे। लेकिन गाजर का बल ऐसा था कि बूढ़ी को वजन का पता ही न चले। कतार बड़ी होने गली। उधर बूढ़ी स्वर्ग पहुंचने लगी, क्यू जमीन तक लग गया। जब वह स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंची, उसको अकड़ आयी, पात्रता का ख्याल आया। उसने कहा कि अरे, तो पहुंच गयी मैं भी स्वर्ग! उसने नीचे झांककर देखा, वहां कतार लगी हुई थी। उसने कहा, हटो, यह गाजर मेरी है। ऐसा कहने में हाथ छूट गए। धड़ाम से! वह तो गिरी ही, सत्संगी भी गिरे।
तो इसीलिए तो गुरु जरा सोचकर चुनना। जब गुरु गिरेगा, सब सत्संगी भी साथ गए। गाजर मेरी है! अपात्रता का बोध तो स्वर्ग की तरफ ले आया, पात्रता के बोध ने स्वर्ग के द्वार से भी लौटा दिया। आदमी इसी तरह जीता है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपके पास आ गए, जरूर जन्मों- जन्मों में कोई पुण्यकर्म किए होंगे। आकर भी दूर जाने की कोशिश कर रहे हैं। कह रहे हैं, गाजर मेरी है। आकर भी अहंकार को भर रहे हैं। पर अनजाने चल

रहा है यह सब खेल। यह होश में नहीं हो रहा है, नहीं तो कौन करे? यह बेहोशी में चल रहा है। शराब पीए हैं। अहंकार शराब है।
तो स्वभावतः जब मेरे पास कोई प्राथमिक रूप से आता है, तो वह यही सोचता हुआ आता है कि हम पात्र हैं, योग्य हैं। हमने यह किया, वह किया। और जब मैं तुम्हें स्वीकार कर लेता हूं संन्यासी की तरह, तब तो तुम्हारा अहंकार छलांगें भरने लगता है।
इस भ्रांति में मत पड़ना। मैं सभी को स्वीकार करता हूं। मैं अस्वीकार करता ही नहीं किसी को। इसलिए पात्रता-अपात्रता का भेद ही मत करना। तुम यह मत सोचना कि तुमको स्वीकार किया है। जो भी आता है उसी को स्वीकार करता हूं। इसलिए इस हिसाब में तो पड़ना ही मत। हां, और हैं गुरु, जो कहते हैं पहले पात्र होना चाहिए। मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं, पात्रता-अपात्रता का हिसाब ही नहीं रखता। मेरा कोई गणित नहीं है, मैं कोई व्यवसायी नहीं हूं, कोई सौदा नहीं है। तुम आ गए, काफी है।
अगर तुम अपात्र हो और आ गए, और भी अच्छा। क्योंकि अपात्र का अर्थ है, अहंकार सघन नहीं है। बहुत कुछ हो सकता है। पात्रों से खतरा है।
तो मेरे पास कोई आ जाते हैं, वे कहते कि हम बीस साल से हठयोग कर रहे हैं। कोई कहता है, हम उपवास कर रहे हैं, प्राणायाम कर रहे हैं। तो उनकी आंखों में मैं देखता हूं कि पात्रता बहुत घनी है। मुझसे संबंध न हो पाएगा। उनकी गाजर बड़ी है। और उनका भाव भारी है। वे इस द्वार से खाली लौट जाएंगे। मेरे पास आने का एक ही उपाय है और वह यही है कि तुम समझना शुरू करो कि तुम नहीं हो। क्योंकि इसी भांति तुम अपने पास आओगे। मेरे पास होने का प्रयोजन क्या है--कि तुम अपने पास आ सको। मेरा तो बहाना है। आना तो तुम्हें अपने पास है। जितना मैं मजबूत होगा, उतना ही तुम अपने से दूर रहोगे। मैं तुम नहीं हो। जहां तक मैं है, वहां तक तुम भटके हो। वहां तक तुमने किसी और को अपना होना समझा है। इधर मैं गिरा कि तुम्हें अपनी वास्तविकता से मिलन हुआ। पहली दफे तुम्हारा आमना-सामना होगा--अपने से। पहली दफा आंख में आंख डालकर देखोगे तुम स्वयं की।
तो ठीक है, "जब शुरू में आना हुआ था, तो मैं किसी विशेष पात्रता के कारण आपके पास पहुंची हूं, ऐसा लगता था।"
वह भ्रांति थी। उसे मुझे तोड़ना ही पड़ेगा। और शुभ है कि वह टूटने लगी। "लेकिन अब दिनों-दिन अपनी अपात्रता का बोध हो रहा है।"
शुभ हो रहा है। लेकिन मेरी ये बातें सुनकर कि अपात्रता पात्रता है, अब
इस बोध से अकड़ मत जाना।
आदमी का मन बड़ा ही चालबाज है। अभी मैंने कहा कि अपात्रता पात्रता है,
अब तुम अकड़कर मत बैठ जाना रीढ़ सीधी करके, कुंडलिनी जाग्रत मत कर लेना कि अरे, तो मैं पात्र हो गयी! तो अच्छा हुआ कि अपात्र अपने को समझ लिया, पात्र हो गयी। बस तो फिर स्वर्ग के द्वार से गाजर छूटी।
अब तुम सोच-समझकर चलना। मैं लाख कहूं कि तुम पात्र हो, तुम अपनी अपात्रता को और-और गहरा समझते जाना।
और पूछा है, "अपात्रता का बोध हो रहा है। आपकी असीम करुणा का भी।" जैसे-जैसे अपात्रता का बोध होगा, वैसे-वैसे मेरे प्रेम का और करुणा का बोध भी होगा। क्योंकि तुम भरने लगोगे। वहां तुम खाली हुए कि भरे। भरे रहे कि खाली रहे।
वर्षा होती है। मेघ बरसते हैं। पहाड़ों पर भी, खाई-खड्डों पर भी। पहाड़
तो खाली रह जाते हैं। सब पानी बरसता है, बह जाता है। खाई-खड्डे भर जाते हैं। जो खाली थे, वे भर जाते हैं। पहाड़ तो पहले ही से भरे हैं, अकड़कर खड़े हैं। पत्थर ही पत्थर भरे हैं। उनकी शान देखो! अकड़े खड़े हैं आकाश में। खाली रह जाते हैं, रिक्त रह जाते हैं। भीगते भी नहीं। और खाई-खड्डे, जिनकी कोई अकड़ नहीं, भर जाते हैं। झीलें बन जाती हैं।
तो तुम अगर खाई-खड्डे की तरह मेरे पास रहे, तो निश्चित भर जाओगे। और अगर तुम पहाड़ों की तरह अकड़े रहे और तुमने समझा कि हम भरे हुए हैं, तो तुम खाली रह जाओगे।

मैं बरसता रहूंगा। न मैं फिक्र करता खाइयों की, न पहाड़ों की। दोनों पर बरसता हूं। कोई हिसाब भी नहीं रखता। हिसाब रखकर कौन बादल कब बरसा है? इसलिए ख्याल रखना, कहीं अब ऐसा न हो, रीढ़ को जरा सीधी मत करना। झुके बैठे हो, झुके ही बैठे रहना, और झुक जाना कि सिर जमीन से लग जाए। तो और भी और, और भी और करुणा का, प्रेम का, प्रसाद का अनुभव होगा।
तुम झोली तो फैलाओ। तुम मांगते भी हो और झोली भी नहीं फैलाते। तुम जल
के किनारे खड़े हो, अंजुली भी नहीं बनाते। झुकते भी नहीं। प्यासे के प्यासे रह जाते हो। अब नदी छलांग लगाकर तुम्हारे गले में न उतर जाएगी। थोड़ा झुको। जलधार के करीब आओ, अंजुली बनाओ। जितना झुकोगे, उतना पाओगे। अगर बिल्कुल झुक जाओ तो नदी में डूब जाओगे। इतने डूब जाओगे कि नदी तुम्हारे ऊपर से बह जाएगी। लेकिन सब तुम्हारी शून्यता पर निर्भर है। इसलिए ऐसा कुछ भाव खड़ा मत करना जिससे तुम्हारी शून्यता मिटती हो।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि तुम्हारे मिटने से जो संगीत पैदा होगा, वैसा संगीत, वैसा अनाहत नाद तुम्हारे होने से पैदा होने वाला नहीं है।
दिल मेरा तोड़कर कहा उसने जबाने-राज में
साज में नग्मे कहां हैं जो शिकस्ते-साज में
मेरे दिल को तोड़कर उसने बड़ी भेद भरी आवाज में कहा--
साज में नग्मे कहां हैं जो शिकस्ते-साज में
वीणा में वे स्वर कहां, जो वीणा के टूटने पर प्रगट होते हैं! निश्चित
ही वीणा के टूटने पर जो स्वर प्रगट होते हैं, वे सुने नहीं जा सकते। वे इतने स्थूल नहीं हैं। वे केवल अनुभव किए जा सकते हैं। उसको झेन फकीरों ने एक हाथ की ताली कहा है। दो हाथ की ताली तो तुमने सुनी है। एक हाथ की ताली सुनी?
जब झेन फकीरों के पास, कोई गुरु के पास कोई शिष्य जाता है, पूछता है, क्या करूं? तो वह कहता है, एक हाथ की ताली सुनो। अनाहत नाद।
दो हाथ की ताली तो आहत नाद है। आहत का मतलब, दो की टक्कर से पैदा हुआ। टक्कर से जो पैदा हुआ, वह हिंसा से पैदा हुआ। जो टक्कर से पैदा हुआ, वह थोड़ी देर पहले नहीं था, थोड़ी देर बाद नहीं हो जाएगा। वह शाश्वत नहीं हो सकता। एक हाथ की ताली सुनो। अब एक हाथ की ताली जिसने सुन ली, वह बजती ही रहेगी। न उसका कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है। वह शाश्वत है। उसको हमने अनाहत नाद कहा है।
मुझे मौका दो कि तुम्हारी वीणा को बिल्कुल तोड़ दूं। मुझे मौका दो कि तार-तार उखाड़ दूं। मुझे मौका दो कि तुम्हारी वीणा टुकड़े-टुकड़े हो जाए, क्षार-क्षार हो जाए। तुम उसे जोड़ भी न पाओ। तुम्हारा अहंकार गिर जाए।
दिल मेरा तोड़कर कहा उसने जबाने-राज में
साज में नग्मे कहां हैं जो शिकस्ते-साज में
और जिसे तुम अपना होना समझते हो, यह तो न-होने में डूब जाएगा। इसे बचाओ मत। इसे जिसने बचाया, उसने खोया। जिसने खोया, बस उसने बचाया। यह तो तुम्हारा होना, आज नहीं कल मौत ले जाएगी, बहा ले जाएगी, बाढ़ आ ही रही है। आ ही गयी है, घड़ीभर की देर है।
जिसे तुम जीवन कहते हो, यह तो हाथ से छूटा-छूटा है। मैं तुम्हें एक और जीवन बता रहा हूं। अभी तुमने होने को जीवन समझा है। मैं तुम्हें न-होने को जीवन बता रहा हूं। तुम मरने के पहले मरना सीख जाओ। इसके पहले कि मौत मिटाए, तुम मिट जाओ, स्वेच्छा से। तो फिर तुम्हें मौत न मिटा सकेगी।
जो मौत के आने के पहले मर गया, मिट गया, उसे मौत मिटा कैसे सकेगी? मौत आएगी, खड़ी रह जाएगी। कोई उपाय न पाएगी। यह साज तो पहले ही टूटा पड़ा है। इसे तो तुमने अपने हाथों तोड़ दिया है। और जो तुमने अपने हाथों तोड़ा है, तुम उस टूटने के पार बच जाओगे। तोड़ने वाला तो बच ही जाएगा। समस्त साधना न-हो जाने की साधना है।
जिंदगी यह है कि जिस रेत पर जलते थे कदम
अब वही बिस्तरे-आराम हुई जाती है
जिंदगी यह है कि सोया था मुसाफिर थककर

सो के उठा है तो अब शाम हुई जाती है
जिसको तुम जिंदगी कहते हो, वह ऐसे ही गुजरती है। और जिस रेत पर पैर जलते थे, जहां घबड़ाहट और बेचैनी होती थी, जिस मिट्टी से तुम बचकर चलते थे, जिस धूल से अपने को सम्हालकर चलते थे, कीचड़ पैर न लग जाए, उसी कीचड़ में बिस्तर हो जाएगा।
जिंदगी यह है कि जिस रेत पे जलते थे कदम
अब वही बिस्तरे-आराम हुई जाती है
मिट्टी में मिल जाना होगा।
जिंदगी यह है कि सोया था मुसाफिर थककर
सो के उठा है तो अब शाम हुई जाती है
थकान ही तुम्हारी पूरी जिंदगी की कहानी है। थक-थककर, थक-थककर मिट जाते हो। इससे जागो।
एक और होने का ढंग है, न-होना। बड़ा गहरा ढंग है। जैसे परमात्मा है, उस ढंग से हो जाओ। बुद्ध जिस ढंग से कहते हैं, परमात्मा नहीं है, तुम भी उसी ढंग से नहीं हो जाओ। नहीं परमात्मा के होने का ढंग है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे पूछते हैं, परमात्मा कहां है? मैं कहता हूं, अनुपस्थिति उसके उपस्थित होने का ढंग है। उसने बड़ी होशियारी से बड़ी मतलब की बात चुन ली है। उपस्थित होता, तो कभी न कभी अनुपस्थित होना पड़ता। जो होता है, उसे मिटना पड़ता है। उसने पहले ही से हिसाब रखा। उसने न-होने को चुना। वह है, और ऐसे है जैसे न हो। उसकी मौजूदगी गैर-मौजूदगी है। वह तुम्हें सब तरफ से घेरे है, और फिर भी तुम्हें उसका स्पर्श पता नहीं चलता। बड़ा कुशल है। सब तरफ से छुआ है, सब तरफ से तुम्हें पिरोया है, सब तरफ से तुम्हारे भीतर-बाहर जा रहा है, श्वास-श्वास में आ-जा रहा है, फिर भी तुम्हें पता नहीं चलता। कैसे प्यारे कदम हैं, आवाज भी नहीं होती! अनाहत नाद है। एक हाथ की ताली है। तुम भी ऐसे ही हो रहो।
मेरे पास अगर तुम मिटना सीख लो, तो तुम सब पा लोगे। मेरे पास अगर तुम
मर जाओ, तो तुम अनंत जीवन पा लोगे। सूली पर जो चढ़ा, सिंहासन उसका है।

आखिरी प्रश्नः ना जानूं मैं आरती-वंदन, ना पूजा की रीत...
खुदाया मेरी ख्वाहिशों पर न जा तकाजा मेरा सख्त मायूब है
जो मर्जी हो तेरी वही खूब है।
अब स्वभाव निराश नहीं हो सकता, प्रभो!

स्वभाव का प्रश्न है।
"ना जानूं मैं आरती-वंदन, ना पूजा की रीत।"
जानने की जरूरत ही नहीं। जो जानते हैं, वे बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। रीति ही हाथ पड़ती है फिर। फिर विधि ही रह जाती है हाथ में। तकनीक ही रह जाता है। जानने वाले बड़ी बुरी तरह भटकते हैं।
मोजेज के जीवन में उल्लेख है। एक पहाड़ी रास्ते से गुजरते थे। एक गरीब आदमी को प्रार्थना करते देखा। फटे-पुराने कपड़े थे, धूल-धूसर थे, पसीने से लथपथ था--गड़रिया था। वह कह रहा था परमात्मा से कि हे प्रभु, अगर मुझे मौका दे, अगर मुझे अपने तू पास रख, तो रोज तुझे खूब घिस-घिसकर नहला दूंगा। तेरी जूंए भी निकाल दूंगा। पिस्सू इत्यादि तेरे शरीर पर आ जाते होंगे, एक न बचने दूंगा। तू देख मेरी भेड़ों को, कैसा साफ-सुथरा रखता हूं! तू जरा मुझे मौका तो दे। थक जाएगा, रात तेरे पैर दबा दूंगा। ऐसे दबाऊंगा कि गहरी नींद आ जाएगी।
मोजेज ने सुना तो बड़े घबड़ाए कि प्रार्थनाएं बहुत सुनीं, यह नालायक क्या कह रहा है? तेरी रोटी भी पका दूंगा। तू घर के बाहर जाएगा, घर भी साफ-सुथरा... एक जरा मौका तो दे।
उसको बीच में जाकर हिलाया और कहा, नासमझ! यह तू क्या बक रहा है? यह प्रार्थना है? वापस ले ये शब्द। यह तो परमात्मा का अपमान कर रहा है। जूंए। परमात्मा पर! तूने कोई भेड़ समझी है? तू नहलाएगा-धुलाएगा। तूने कोई

परमात्मा को गंदा समझा है! तू पैर दबाएगा। परमात्मा कभी थकता है! वह गड़रिया तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा कि मुझे क्षमा करो, मुझे मालूम नहीं। "ना जानूं मैं आरती-वंदन, ना पूजा की रीत।"
वह भाग गया गड़रिया तो अपनी भेड़ें सम्हालकर कि यह तो कहां की झंझट है! उसने कहा, अब कभी प्रार्थना न करेंगे। माफ करो, मैं जानता ही नहीं, मैं तो यही करता रहा सदा से। बड़ा पाप हुआ।
वह गया नहीं था कि परमात्मा की आवाज गूंजी कि मोजेज, मैंने तुझे भेजा
था कि जो मुझसे भटके हों, मुझे उनसे जुड़ा देना। तूने तो मुझसे जो जुड़ा था, उसको अलग कर दिया। उसका प्यार तो देख! उसका भाव तो देख! उसका हृदय तो पहचान! तू तो रीति-नियम में खो गया। जा उससे माफी मांग, और उससे प्रार्थना सीख। बहुत मेरे प्यारे हैं, पर वैसा कोई भी नहीं।
मोजेज ने ढूंढ़ा उसे जंगल में, उसके पैर पर गिर पड़े कि मुझे क्षमा कर,
तू अपनी प्रार्थना जारी रख। तुझे जितने जूं निकालने हों, निकाल। तुझे जितना नहलाना हो, नहला। वह खुश, तो मैं बीच में कौन? तू जान, तेरा काम जाने। मुझे अच्छा फंसाया!
ध्यान रखो, जीवन के परम सत्य रीति-नियम से नहीं मिलते। औपचारिक नहीं हैं। धर्म का जगत भाव का जगत है। वहां तुमने प्रार्थना कैसे की, इसका कोई संबंध नहीं है। प्रार्थना की, इसका संबंध है। भाव था, गहरा था, तुम डूबे थे, फिर ठीक है। ऊपर-ऊपर शब्द दोहरा रहे थे, रटी हुई प्रार्थना को दोहरा रहे थे, व्याकरण भी शुद्ध थी, भाषा भी शुद्ध थी, उससे क्या होगा? कोई परमात्मा को व्याकरण सीखनी है! कि परमात्मा को भाषा सीखनी है! कि परमात्मा को तुम वेद-उपनिषद और गीता सुनाकर कुछ नयी बात सुना रहे होओगे! नहीं, परमात्मा तुम्हारा हृदय मांगता है। तुम्हें मांगता है। रीति-नियम नहीं।
छोड़ो फिकर। नहीं जानते, शुभ है। सहज-स्फूर्त हो, सरलता से उठे, तुम्हारे जीवन के सत्य को लेकर आती हो; तुम्हारी मगनता, तुम्हारे उन्माद, तुम्हारे हर्ष को प्रगट करती हो; तुम्हारे नृत्य को, तुम्हारे आंसुओं को, तुम्हारे गीत को प्रगट करती हो, हो गयी बात। तुम परमात्मा का नाम भी मत लो, तो भी चलेगा। मगर तुम्हारा नाच हार्दिक हो। और तुम्हारे आंसू असली हों। नकली न हों। तुम बड़े कुशल हो गए हो नकली आंसू लाने में।
मैं एक घर में मेहमान था। कोई मर गया था घर में। वह घर की जो महिला थी-- मैं बाहर बैठा रहता था धूप में--वह मुझसे कहती थी कि कोई आए बैठने, जरा मुझे इशारा कर दिया करें। मैंने कहा, तू क्या करेगी? वह एकदम घूंघट डाल कर, छाती पीटकर रोने लगती। मैं बड़ा चकित हुआ। वह बिल्कुल ठीक-ठाक बैठी रहती। कोई आने वाला है--बैठने वाला है--मैं उसको इशारा करता कि आता है कोई, वह एकदम... ।
मैंने एक दिन जाकर उसका घूंघट उठाकर देखा, आंसुओं की धार लगी थी। मैंने कहा, तूने भी गजब कर दिया। अभी तू हंस रही थी, बात कर रही थी, ये आंसू! उसने कहा, बड़ी मुश्किल से सीखे। कई अनुभव से सीखे।
आदमी झूठे आंसू बहाने में भी कुशल हो जाता है। बस झूठ से बचना। तुम्हारी प्रामाणिकता तुम्हारी प्रार्थना है। और निराश होने का तो कभी कोई कारण नहीं। निराशा तो इसलिए बार-बार घेर लेती है कि तुम गलत दिशा में खोजते हो। निराशा तो इसलिए बार-बार घेर लेती है कि तुम अहंकार से भरे खोजते हो। निराशा तो इसलिए बार-बार घेर लेती है कि तुमने अभी अपने को मिटाकर नहीं खोजा। अपेक्षा से खोजते हो, इसलिए विषाद पकड़ लेता है। कुछ पाने के लिए खोजते हो। जब नहीं मिलता, तो बेचैनी होती है। या जो भी मिलता है, तो इतना नहीं मालूम पड़ता, जितना तुम सोचते थे मिलना चाहिए। मिला तो बहुत है, पर तुम्हारी अपेक्षा बड़ी है।
मैं कलकत्ते में एक किसी के घर जा रहा था। एयरपोर्ट से मुझे लेकर जो सज्जन जा रहे थे, बड़े उदास थे। उनको कभी मैंने उदास नहीं देखा। उनकी पत्नी भी साथ थी। मैंने पत्नी से पूछा कि मामला क्या है? तो उन्होंने कहा, आप उन्हीं से पूछ लें। मैंने पूछा। वे कहने लगे, बड़ा नुकसान हो गया। पांच लाख का नुकसान लग गया। तो मैंने कहा, उदास होने की बात है। पत्नी हंसने लगी। उसने कहा, इनकी बात में मत जाना। पांच लाख का नुकसान नहीं, पांच लाख का

फायदा हुआ है, मगर ये दस लाख की सोच रहे थे। सो इनके हिसाब में पांच लाख का नुकसान हो गया है। इनको मैं लाख कहती हूं कि पांच लाख का फायदा हुआ है, नुकसान कहां? मगर ये अपनी धुन लगाए रहते हैं कि दस मिलने चाहिए थे--कोई सौदा किया था--पांच ही मिले। उदासी, विषाद, खिन्नता अपेक्षाओं से घिरती हैं।
प्रार्थना करो, अपेक्षा मत करो। फिर तुम कभी उदास न होओगे। फिर जो मिलेगा, उससे तुम धन्यभागी होओगे। और बहुत मिलता है। बहुत मिल रहा है, बहुत मिला ही हुआ है। मिलता ही रहा है। और जितने तुम प्रसन्न होओगे, जितने तुम अहोभाव से भरोगे, उतने ज्यादा को पाने का द्वार खुल जाता है। और जितने तुम विषाद से भरोगे, उतने तुम सिकुड़ जाते हो, उतना ही द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। जो मिलने वाला था, वह भी चूक जाता है।
रात अंधेरी है माना, जरा तारों को देखो, कितने रोशन हैं। कोई सूरज की
ही रोशनी होती है! तारों की भी रोशनी होती है। और तारों की रोशनी का अपना सौंदर्य है। सूरज की रोशनी का अपना सौंदर्य है। सूरज की रोशनी में बड़ी तपन है। चांद-तारों की रोशनी में बड़ी शीतलता है। तपन के बाद शीतलता जरूरी है। रात का अंधेरा ही क्यों देखते हो, जरा चांद-तारे देखो।
फिर अंधेरे में भी सिर्फ अंधेरा क्यों देखते हो? सुबह, छुपी हुई सुबह
भी देखो। पास आती सुबह भी देखो। अंधेरा तो गर्भ है। रात तो मां है। सुबह को जन्म देने के करीब है।
फिर अंधेरे में आने वाली सुबह ही देखने की भी इतनी जरूरत नहीं है। जरा अंधेरे को ही गौर से देखो। उसकी शांति! उसका मखमली फैलाव! उसका असीम विस्तार! जरा उसे छुओ। तो तुम जहां हो वहीं तुम पाओगे इतना मिला है, इतना मिला है! और तुम जहां हो वहीं तुम पाओगे कि इतना और, इससे और ज्यादा मिलने के करीब आ रहा है। आदमी पर इतनी वर्षा होती है, फिर भी आदमी गीला नहीं हो पाता। अपनी ही नासमझी है।
आज कांटे हैं अगर तेरे मुकद्दर में तो क्या
कल तेरा भर जाएगा फूलों से दामन गम न कर
तू नजर आता है जिस जंजीरे-आहन में असीर
टूट जाने को है वो जंजीरे-आहन गम न कर
देखता है आज जिस गुलशन को वक्फे-खिजां
ताजा कैसा ताजातर होगा वो गुलशन गम न कर
गुल अगर एक शमा होती है हवाऐ-दहर से
सैकड़ों उसकी जगह होती हैं रोशन गम न कर
एक दीया बुझता नहीं, हजार जल जाते हैं। एक सूरज बुझता नहीं, हजार दीए
जल जाते हैं। देखा रोज, फिर भी समझे नहीं। गणित बिल्कुल साफ है। दिन का सूरज एक, रात के सूरज करोड़ हैं। एक सूरज बुझता नहीं, करोड़ जल जाते हैं। एक फूल गिरता नहीं, करोड़ खिल जाते हैं। एक द्वार बंद नहीं हुआ--अब बंद द्वार पर अटककर मत बैठे रहो। उसी को मत देखते रहो, उसमें ही आंखों को मत उलझाओ। जरा इधर-उधर देखो--कहीं दस द्वार खुल गए हैं। इधर कोई मरा, उधर जन्म हुआ। तुम मौत को ही लेकर सिर मत पीटते रहो। जन्म की खुशी मनाओ। फिर कोई जन्म गया है। फिर कहीं कोई नया पैदा हो गया है।
एक बार दृष्टि तुम्हारी सुधर जाए, एक बार ठीक दिशा में देखना आ जाए, तो जरा भी उदास होने का कोई कारण नहीं है। फिर ख्याल रखना, ऐसी कसम मत लेना कि अब निराश न होंगे। कसम से काम न चलेगा। समझ से काम चलेगा। कसम मत ले लेना कि निराश न होंगे, अन्यथा दोहरी निराशा आ जाएगी--जब निराशा आएगी तो निराशा तो आएगी ही, और साथ में यह निराशा भी पकड़ेगी कि अरे, फिर निराश हो गए! कसम मत लेना। कसमों से नासमझ जीते हैं। समझ।
मुझे सुनो, समझो क्या कह रहा हूं। व्रत मत लो। कसमें मत खाओ। यह मत कहो
कि अब कभी न होएंगे निराश। कल का पता है? क्षणभर के बाद का पता है? अभी एक रौ में हो, अभी मन प्रसन्न है, क्षणभर बाद शायद मन प्रसन्न न रह जाए। अभी गीत गुनगुना रहे हो, क्षणभर बाद आंख में आंसू आ जाएं। क्षणभर बाद का फिर क्या करोगे?

फिर यह तुमने जो वचन दे दिया कि अब कभी निराश न होंगे, यह कहीं बांधने वाला न हो जाए। फिर कहीं ऐसा न हो कि तुम आंसू छिपाओ कि अब कैसे प्रगट करें। एक दफे कह दिया अब कभी उदास न होंगे, फिर तुम झूठी प्रसन्नता प्रगट करो। झूठी प्रसन्नता से तो सच्ची उदासी सही है। कम से कम सच्ची तो है। इसलिए इस बात को मैं तुमसे बहुत समझाकर कह देना चाहता हूं कि मेरे पास कभी कसमें लेने की कोई जरूरत नहीं है। मैं कसमें दिलाने वाला नहीं हूं। मैं तुम्हें कोई व्रत नहीं देता। सिर्फ बोध देता हूं। इस क्षण में प्रसन्न रहो, काफी है। इसी क्षण से तो अगला क्षण आएगा। इसी से तो बंधा, खिंचा आ रहा है। अगर यह क्षण प्रसन्नता से भरा है, तो अगला क्षण इसी से तो निकलेगा। सुबह इसी रात से तो पैदा होगी! अगर रात तुमने नाचकर बितायी है, तो सुबह का सूरज तुम्हें और नाच से भर जाएगा। लेकिन कसम मत खाओ। क्योंकि कसम में भय है, डर है।
तुम कह रहे हो, अभी प्रसन्न हूं, अभी कसम खा लूं, पता नहीं फिर क्षणभर बाद मौका चूक जाए और कसम न खा पाऊं। मैं उन मंदिरों-मस्जिदों के खिलाफ हूं, उन गुरुओं के खिलाफ हूं, जो लोगों को कसमें दिलाते हैं। वे शोषण कर लेते हैं। तुम गए मंदिर में, धूप-दीप जलता था, पूजा के थाल सजे थे, घंटनाद होता था, प्रार्थना-कीर्तन होता था, लोग नाचते थे, मगन थे, तुम भी मगन हो गए--बह गए। फिर तुमने कसम खा ली कि अब रोज प्रार्थना करूंगा।
जरा ठहरो! कहीं एक भावदशा में तुम जीवनभर को बांध तो नहीं रहे हो? कल पछताओगे तो न? कल ऐसा तो न होगा, कहोगे यह मैं क्या कह फंसा! फिर कहीं ऐसा न हो कि तोड़ना पड़े।
तोड़ोगे, तो आत्मग्लानि होगी, अपराध का भाव होगा। तोड़ोगे, तो हिम्मत छूट जाएगी, अपने पर भरोसा खो जाएगा। तोड़ोगे तो ऐसा लगेगा कि नहीं, मेरे किए कुछ भी नहीं हो सकता। एक छोटी सी बात भी न कर पाया। पूजा भी न कर पाया, प्रार्थना भी न कर पाया। फिर तुम मंदिर से बचोगे। मंदिर जाने में डरोगे, भय पकड़ने लगेगा।
नहीं, मैं तुम्हें कोई व्रत नहीं देता। तुम मेरे सामने कोई व्रत लो भी नहीं। मैं तुम्हें बांधता नहीं, बस मुक्त करता हूं। मैं तुमसे कहता हूं, तुम छोड़ो फिकर कि आगे तुम क्या करोगे। अभी तुम प्रसन्न हो, अभी पूरे प्रसन्न हो जाओ। बस काफी है। अगला क्षण इसी क्षण से पैदा होगा। वह इसी क्षण की संतति है। अगर तुम प्रसन्न हो, वह भी प्रसन्न होगा।
लेकिन तुम अभी भी डर रहे हो। तुम इस क्षण में भी घबड़ा गए हो। खुशी आयी है, तुम्हें भरोसा नहीं कि टिकेगी। तुम कहते हो, अब मैं कभी निराश न होऊंगा। तुम कहते हो, यह क्षण इसके पहले निकल जाए, कसम खा लूं। बंध जाऊं। कमिटमेंट हो जाए। तो फिर बंधा रहूंगा, फिर भाग न पाऊंगा।
लेकिन बंधन अगर बन जाए धर्म, तो धर्म ही न रहा। धर्म मुक्ति है। पहले कदम से लेकर अंतिम कदम तक मुक्ति है। मैं तुम्हें समस्त व्रतों और कसमों से मुक्ति दिलाता हूं।
स्वभाव ने कहा है, "अब स्वभाव निराश नहीं होगा, नहीं हो सकता है।"
नहीं, स्वभाव! स्वभाव पर इतना भरोसा मत करो। कोई नियम मत बांधो। समझो। समझ पर्याप्त है। विवेकवान बनो। बोध को जगाओ। तुम्हारे भीतर का दीया जलता रहे। इस क्षण जला लो, बस। अगले क्षण की अगले क्षण देख लेंगे।
जीसस ने कहा है, कल की चिंता न करो। कल अपनी फिकर खुद कर लेगा। और जीसस
ने कहा है, देखो खेतों में लगे लिली के फूलों को। सम्राट सोलोमन भी अपने सारे आयोजन और व्यवस्था के बाद इतना सुंदर न था। क्या कारण है? क्योंकि लिली के फूलों ने कोई आयोजन नहीं किया। बस खिल गए हैं। कोई व्यवस्था न जुटायी, कोई योजना न बनायी। न पांच दिवसीय, न पंचवर्षीय। बस खिल गए हैं। सहज हैं। इनके सौंदर्य को देखो, सोलोमन भी झेंप जाए। और जीसस ठीक कहते हैं, सोलोमन भी झेंप जाएगा।
नहीं, तुम कल का आयोजन मत करो, अन्यथा सोलोमन हो जाओगे। मैं चाहता हूं, तुम लिली के फूल रहो। खिलो। खिलने से और खिलना निकलेगा। निकलता रहेगा।
जिसने आज दिया है, कल भी देगा। जिसने आज हंसाया है, कल भी हंसाएगा। जिसने आज श्वासें दी हैं, कल भी श्वासों से भरेगा। भरोसा करो।

जीवन पर भरोसा करो, व्रतों पर नहीं। जीवन पर श्रद्धा करो, नियमों पर नहीं। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन धर्म है। जीवन पर श्रद्धा।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
अन्ठावनवां प्रवचन

स्व से होकर राह सर्व को

अत्तना" व कतं पापं अत्तजं अत्तसंभवं।
अभिमन्थति दुम्मेधं वजिरं व" स्ममयं मणिं।। 140।।

यस्सच्चन्तदुस्सल्यिं मालुवा सोलमिवोततं।
करोति सो तथत्तानं यथा" नं इच्छति दिसो।। 141।।

सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितंच साधुंच तं वे परमदुक्करं।। 142।।

यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तघांंय फल्लति।। 143।।

अत्तना" व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं अत्तता" व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चतं नांं अांं विसोधये।। 144।।

अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिंंय सदत्थ पसुतो सिया।। 145।।

बुद्ध ने जो क्रांति की दृष्टि दी, उसका आधारभूत सूत्र है कि मनुष्य एकांत-रूप से उत्तरदायी है। किसी और के प्रति नहीं, अपने ही प्रति। पाप हो, तो मनुष्य जिम्मेवार है। पुण्य हो, तो मनुष्य जिम्मेवार है। किसी और पर टालने का कोई उपाय नहीं। बुद्ध ने आदमी के हाथ से टालने की व्यवस्था छीन ली।
बुद्ध ने कहा, तुम यह न कह सकोगे कि तुमने बुरा किया, क्योंकि तुम क्या करते, भाग्य ने करवाया! तुम यह भी न कह सकोगे कि जब परमात्मा करवाएगा शुभ, तब करेंगे। उसकी मर्जी के बिना क्या होता है! पत्ता भी नहीं हिलता।
नहीं, बुद्ध ने कहा, पत्ता भी अपनी मर्जी से हिलता है। ये टालने के ढंग हैं, बहाने हैं। आदमी की बेईमानी के हिस्से हैं।
जिनको तुम धर्म कहते हो, जरा गौर से देखना, कहीं उनकी ही ओट में तो अंधेरा नहीं छिपा है! कहीं दीया तले अंधेरा तो नहीं! कहीं ऐसा तो नहीं है कि धर्म की आड़ में ही तुमने अधर्म को छिपा दिया, ताकि उसे तुम खुद भी न खोज सको। दूसरे तो धोखा खा ही जाएं, तुम भी धोखा खा जाओ।
बुरा तुम करते हो, नाम नियति का लेते हो, भाग्य का लेते हो। शुभ तुम्हें करना है, कहते हो जब परमात्मा करवाएगा तब करेंगे। उसकी मर्जी के बिना कहीं कुछ होता है!
बुद्ध ने तुम्हें तुम्हारे ऊपर फेंका और कहा तुम्हारी मर्जी ही नियति है। तुम्हारा निर्णय ही भाग्य है। और भगवान तुम्हारे भीतर छिपा है। उसे कहीं और टालने की सुविधा मत जुटाओ। ऐसे ही तो जन्म-जन्म भटके, और कब तक भटकना है!
कहीं प्रार्थना परमात्मा से बचने का उपाय तो नहीं? कहीं प्रार्थना करके सुलझ गए, झंझट मिटी, धर्म कर लिया, ऐसी सरल बातें तो नहीं खोज रहे हो। पाप तुम करते हो, स्नान करने गंगा जाते हो। पाप तुमने किया, धोएगी गंगा! किसे धोखा दे रहे हो? गंगा को? अपने को ही धोखा दे रहे हो। तुमने किया तो गंगा कैसे धोएगी? तुम्हीं को धोना पड़ेगा।
यह तुम्हारी गंदगी तुम्हीं धोओगे, कोई और धोने को नहीं है। और जब तक तुम कहोगे कि कोई और धो दे, कोई और धो दे, तब तक यह गंदगी तुम बढ़ाते रहोगे। आखिरी परिणाम क्या होता है? गंगा स्नान करके लौट आते हो, पाप बंद तो नहीं

होते, स्वच्छ-मन से फिर पाप में लग जाते हो। जैसे अब और करने की सुविधा मिली। अब जैसे वह पुराने पापों से तो छुटकारा मिला, अब तुम नए करने को मुक्त हुए। और एक तरकीब हाथ लगी कि जब फिर बहुत इकट्ठे हो जाएंगे, गंगा कोई बहुत दूर थोड़े ही है। फिर स्नान कर आएंगे।
ईसाई अपने पादरी के पास जाकर कन्फेसन कर आते हैं, पाप की स्वीकृति कर आते हैं, और सोचते हैं कि क्षमा हो गया। कह दिया, बता दिया, माफी मांग ली! पाप कहीं और किया था, माफी कहीं और मांगी। धोखा कैसा कर रहे हो! गाली किसी और को दी थी, चोट किसी और को पहुंचायी थी, घाव कहीं और छोड़े, चर्च में जाकर क्षमा मांग ली। यह चर्च तो फिर बहाना हुआ। इस पादरी को तो गाली न दी थी। इस पादरी के हृदय पर तो घाव न मारे थे। पाप तो इससे किए न थे। इसके सामने प्रकट करने से क्या होगा? यह तो फिर गंगा ही हो गयी। लौट आए हल्के मन, प्रसन्नचित्त, झंझट मिटी!
इतने सस्ते में छूट जाना चाहते हो! जिन पर घाव छोड़े हैं, थोड़ा सोचो तो! जहां घाव छोड़े हैं, थोड़ा सोचो तो! शरीर अगर गंदा हो, इतना कह देने से पादरी के सामने जाकर कि मैंने कई दिन से स्नान नहीं किया, स्नान हो जाएगा? पादरी को यह कह देने से स्नान कैसे हो जाएगा? हां, तुम्हारा मन भला हल्का हो जाए कि चलो एक बात मन में काटती थी, कचोटती थी, कह दी, निर्भार हुए। लेकिन निर्भार होकर भी करोगे क्या? फिर वही पाप करोगे। फिर वही बोझ इकट्ठा करोगे।
बुद्ध ने सब छीन लिया। उनकी क्रांति बड़ी मौलिक है। मूल से है। उन्होंने जड़ काट दी। इसलिए बुद्ध पर लोग नाराज भी हुए--ऐसे तुम सब सपने छीन लोगे! ऐसे कोई भ्रम न बचने दोगे!
यहीं तुम समझो। बुद्ध तुमसे यह नहीं कहते कि संसार ही माया है, वे कहते हैं, तुम्हारा परमात्मा भी माया है। तुम्हारी दुकान तो झूठ है ही, तुम्हारा मंदिर भी झूठ है। तुम्हारा पाप भी झूठ है, तुम्हारा पुण्य भी झूठ है। तुम झूठ हो। क्योंकि अब तक तुमने बुनियादी सत्य स्वीकार नहीं किया कि मैं जिम्मेवार हूं। जीवन की क्रांति की शुरुआत इस बात से होती है कि एक आदमी अपनी बागडोर अपने हाथ में ले लेता है; कहता है, बुरा-भला जैसा हूं, मैं जिम्मेवार हूं।
जरा सोचो तो, एक बार तुम्हें यह ख्याल आ जाए कि मैं जिम्मेवार हूं, यह तीर तुम्हारे प्राणों में धंस जाए कि मैं जिम्मेवार हूं, यह तुम्हें बात भुलाए न भूले, यह तुम्हारे सोते-जागते चारों तरफ तुम्हें घेरे रहे, यह तुम्हारी हवा में, तुम्हारे वातावरण में समा जाए; यह तुम्हारे मन में जलता हुआ दीया बन जाए कि मैं जिम्मेवार हूं, इतनी आसानी से पाप कर सकोगे जितनी आसानी से अब तक किया? मैं जिम्मेवार हूं। फूंक-फूंककर पैर रखने लगोगे। कहते हैं, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीने लगता है।
अगर एक बार तुम्हें स्मरण में आ जाए कि पाप मैंने किए, कौन मुझे छुटकारा देगा? मैं किसकी राह देख रहा हूं, कोई भी नहीं आएगा। कोई न कभी आया है, कोई न कभी आएगा। बंद करो यह द्वार, प्रतीक्षा बंद करो। तुम ही हो। तुम्हीं आए, तुम्हीं गए। कोई और नहीं आया है। तुम्हीं ने किया, तुम्हीं ने अनकिया भी। तुम्हीं ने अच्छा भी, तुम्हीं ने बुरा भी। लेकिन जिम्मेवारी आत्यंतिक है। अल्टीमेट है। कोई इसमें भागीदार नहीं हो सकता। किसी परमात्मा के कंधों पर रखकर तुम बंदूकें मत चलाओ। और किन्हीं तीर्थों की आड़ में पाप मत करो।
आज के सूत्र इसी संबंध में हैं।
"स्वयं से जात, स्वयं से उत्पन्न और स्वयं से किया गया पाप, दुर्बुद्धि मनुष्य को उसी तरह नष्ट करता है, जिस तरह पत्थर से ही पैदा हुआ वज्रमणि पत्थर को काटता है।"
"स्वयं से जात।"
तुमसे ही जन्म होता पाप का।
"स्वयं से उत्पन्न।"
तुमसे ही प्रकट होता पाप। जीता तुम्हारे ही सहारे है। ऊर्जा तुम्हीं देते, शक्ति तुम्हीं देते, साथ तुम्हीं देते।

"स्वयं से किया गया पाप।"
और तुम पाप कर किससे रहे हो? घूम-फिरकर सब तुम्हीं पर लौट आता है।
दूसरों के बहाने तुम जो कर रहे हो, वह अपने से ही कर रहे हो। किसी को गाली तो दो--लौट आती है। थोड़ी वजनी होकर लौट आती है। थोड़ी पैनी होकर लौट आती है।
थोड़ी निखरकर आ जाती है। धार साफ हो जाती है। और थोड़ा जहर लेकर लौट आती है। किसी को प्रेम तो करो--पुरस्कारों की वर्षा हो जाती है।
तुम जो दूसरे के साथ कर रहे हो, बुद्ध कहते हैं, दूसरा तो सिर्फ बहाना है। ये चिट्ठियां जो तुमने दूसरों के नाम लिखीं, इन पर तुम्हारा ही पता है। इन्हें तुम डाल आओ पोस्ट-आफिस में। सील-मोहर लगाकर पोस्ट-आफिस की, डाकिया तुम्हारे ही घर लौटा जाएगा। इन पर पता तुम्हारा है। इस जगत में तुम जो भी करोगे, अंततः तुम अपने से ही कर रहे हो।
"स्वयं से किया गया पाप।"
स्वयं के साथ ही किया गया है। इस गहरी बात को समझो। इसका स्वाद लो। तुमने अब तक जो किया है, वही तो लौट-लौट आया है। कभी निंदा की, निंदा लौट आयी। कभी घृणा की, घृणा लौट आयी। यह जगत एक प्रतिध्वनि है। गीत गुनगुनाओ, सारा जगत गीत गुनगुनाने लगता है। हंसो, दुनिया हंसती है। मुस्कुराकर आकाश को देखो, आकाश तुम्हारी तरफ मुस्कुराता मालूम होता है। उदास होकर चांद-तारों को देखो, वे भी उदास हो जाते हैं, आंसू गिरने लगते उनकी आंखों से। तुम्हारा संसार तुम्हारे ही मन का फैलाव है।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, यह मत सोचना कि तुमने किसी और के साथ पाप किया। क्योंकि और के साथ किया, तो ऐसा लगेगा, फिर कोई बचने का उपाय कर लेंगे। फिर कोई व्यवस्था जुटा लेंगे। माफी मांग लेंगे, क्षमा मांग लेंगे। प्रार्थना- पूजा कर लेंगे, पुण्य कर देंगे। लाख की चोरी की, थोड़ा दान कर देंगे।
सभी चोर दान करते हैं। चोरी भारी हो जाती है। दान करके हल्का कर लेते हैं। दिनभर घृणा, क्रोध करते हैं, थोड़ा प्रेम कर लेते हैं। जैसे समझा-बुझा रहे हैं।
बहके जो मैकदे में नमाजों पे आ गए
यूं आकबत को हमने संवारा कभी-कभी
जब मधुशाला में ज्यादा पी गए और परेशानी मालूम हुई, मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ ली। ऐसे इस दुनिया को भी सम्हाला, उस दुनिया को भी सम्हाला।
बहके जो मैकदे में नमाजों पे आ गए
यूं आकबत को हमने संवारा कभी-कभी
उस दूसरी दुनिया को भी सम्हालते रहे। होशियार लोग हैं। कुशल हैं। व्यवसायी हैं। गणित जानते हैं। मधुशाला में भी पी लेते हैं, मस्जिद में नमाज भी पढ़ आते हैं। ऐसे संसार को भी रिझा लेते हैं, परमात्मा को भी सम्हाले रखते हैं। उसे भी नाराज नहीं होने देते। चोरी कर लेते हैं, दान कर आते हैं। चोरों के भी देवता होते हैं। चोरी करने के पहले हनुमान जी पर जाकर नारियल चढ़ा आते हैं कि ख्याल रखना, कहीं पकड़े न जाएं। अगर न पकड़े गए और चोरी सफल रही, तो एक नारियल और चढ़ा देंगे। नारियल सड़े होते हैं, यह बात और! पर चढ़ा देते हैं।
बुद्ध कह रहे हैं, कृत्य तुम्हारा है, तुम पर लौटेगा। देर-अबेर हो सकती है, वर्तुल छोटा-बड़ा हो सकता है, कभी तो जन्मों लग जाते हैं तुम तक लौटने में, इतना बड़ा वर्तुल होता है। जैसे कि तुम आवाज दो और चांद-तारों से प्रतिध्वनि हो, तो जन्मों लग जाएंगे। बड़ा समय बीतेगा। पर लौटेगी प्रतिध्वनि। संसार के आखिरी किनारों से लौटेगी। तुम यहां न होओगे, तुम कहीं और होओगे, पर लौटेगी।
इसीलिए तो कई बार तुम चौंकते हो कि कभी बुरा तो किया नहीं, इतना दुख पा रहा हूं! किया होगा। निश्चित किया होगा। अकारण कुछ भी नहीं होगा।
बुद्ध की दृष्टि तो बड़ी वैज्ञानिक तर्क-सरणी की है। वे कहते हैं, जो मिलता है, वह दिया होगा। जो काटते हो, वह बोया होगा। जो भोग रहे हो, वह तुम्हीं ने निर्मित किया होगा। हम सब अपने ही बनाए घरों में रहते हैं।

"स्वयं से जात, स्वयं से उत्पन्न और स्वयं से किया गया पाप, दुर्बुद्धि मनुष्य को उसी तरह नष्ट करता है, जिस तरह पत्थर से पैदा हुआ वज्रमणि पत्थर को काटती है।"
होती पत्थर से ही पैदा है। वज्रमणि होती पत्थर से पैदा है। हीरा है तो पत्थर ही, फिर पत्थर को काटता है। तो यह मत सोचना तुम कि जो तुम्हें काट रहा है, वह तुमसे कैसे पैदा होगा? जो तुम्हें काट रहा है, वह तुमसे ही पैदा होगा। जो दूसरे को काट रहा है, वह दूसरे से पैदा होगा।
हम अपने-अपने जगत में रहते हैं। इस सत्य की स्वीकृति जिसने कर ली, वह प्रौढ़ हुआ। इस स्वीकृति के आते ही तुम्हारे जीवन में रूपांतरण शुरू होता है। क्योंकि अब अगर तुम दुख नहीं चाहते, तो दुख मत दो। प्रार्थनाओं से न टलेगा। पूजाओं से न टलेगा। अब अगर तुम दुख नहीं चाहते, तो दुख मत दो। अब अगर तुम सुख चाहते हो, तो सुख दो। लेकिन बड़ी कठिनाई है।
और कठिनाई यह है--उसे न समझोगे तो मुश्किल होगी--कठिनाई यह है कि तुम्हारे पास दुख ही दुख है देने को। तुम दुखी हो। एकशृंखला का जाल है। अतीत में जो कुछ किया है, उसने तुम्हें दुखी बना दिया है। फसल काट ली जहर की। घर जहर से भरा है। अब तुम करो क्या? तुम जो भी देने जाते हो, उसमें तुम्हारे हाथों की छाप पड़ जाती है। तुम भला भी करने जाते हो, तो बुरा हो जाता है।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हो क्या रहा है? हम भला भी करने जाते हैं, तो बुरा हो जाता है। हम सोना भी छूते हैं, तो मिट्टी हो जाता है। तुम्हारे हाथों ने लंबे अर्सों तक सोने को मिट्टी बनाया है। वे कला सीख गए हैं। इस पर भी नाराज मत होओ। इसे भी पहचानो।
तुम दुख दे रहे हो लोगों को, क्योंकि तुम दुखी हो। तब तो एक बड़ा दुष्ट-चक्र हो गया। तुम दुखी हो, इसलिए दुख दे रहे हो। दुख दोगे, और दुख आएगा। तुम दुखी बनते चले जाओगे। सिलसिला कैसे टूटेगा? सिलसिला तोड़ने की कला है। वही धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।
क्या है कला? कला है, जब तुम्हें दुख आए, तो उसे भोग लो। उसे बांटो मत। द्वार-दरवाजे बंद कर लो, रो लो, छाती पीट लो, आंसू बहा लो, जल उठो दुख में, भस्म हो जाओ, मगर दूसरे को मत दो, बांटो मत। कितना ही भारी पड़े। टूट जाए कमर, गर्दन गिर जाए गिर जाने दो, मगर दुख को झेल लो। दुख से बचो मत। वह चुकतारा करना ही होगा। वह तुम्हारा ऋण है। वह तुम्हें चुकाना ही होगा। दुख को एकांत में झेल लो।
इसीलिए साधु एकांत में जाता है। वह सिर्फ समाधि की खोज में ही एकांत में नहीं जाता। क्योंकि मेरी समझ है, समाधि तो भरे बाजार में मिल जाती है। तुमसे मैं यह कहना चाहता हूं कि लोग एकांत में गए हैं सिर्फ इसलिए, ताकि दुख को अकेले में भोग लें और किसी को देना न पड़े। न होगा कोई, न दे सकेंगे। न होगा कोई, न किसी पर फेंक सकेंगे। झेल लेंगे। वह झेलना निखारेगा। जैसे आग सोने को निखारती है। उस झेलने से तुम कुंदन होकर बाहर आओगे। तुम्हारा रूप निखर जाएगा, तुम्हें अपरिसीम सौंदर्य मिलेगा।
ऐसे ही तो किसी दिन बुद्ध जंगल से वापस लौटे। वे छह वर्ष दुख को अकेले में भोगने के वर्ष थे। इसी को तपश्चर्या कहा है। तपश्चर्या का अर्थ नहीं है कि तुम कांटों पर लेटो। लेकिन कांटों पर लेटना पड़ता है। क्योंकि कांटे तुमने बोए हैं जन्मों-जन्मों तक। कौन लेटेगा? किसी और को लिटाओगे साथ कोई होगा। तप का इतना ही अर्थ है, तुम्हीं लेट लो। ताकि चुकतारा हो, ताकिशृंखला आगे न चले। तप का यह अर्थ नहीं है कि तुम भूखे मरो। लेकिन भूखे मरना होगा। क्योंकि तुमने भूखा मारा है। तप का यह अर्थ नहीं कि तुम धूप में खड़े रहो। लेकिन खड़े होना होगा। क्योंकि तुमने कितनों को धूप दी! छाया तुमने कब दी, याद आती है? किसको छाया दी? अपने लिए छाया खोजी होगी, लेकिन सभी को धूप दी। और जिसने सभी को धूप दी, उसने धूप पायी, वह छाया कैसे पा सकेगा?
इस प्रक्रिया को ख्याल में ले लो। तपश्चर्या की प्रक्रिया हैः अतीत
के दुखों को अब और नहीं बांटना है, अब अपने किए को स्वीकार कर लेना है। अब किसी को उसमें साझीदार नहीं बनाना है, नहीं तोशृंखला जारी रहेगी।

बुद्ध पर कोई थूक गया, तो बुद्ध ने कहा, चलो, निपटारा हुआ। इसकी प्रतीक्षा करता था। नहीं तो बुद्ध होना मुश्किल था। कभी थूका था इस आदमी पर, राह देखता था--आ जाए, थूक ले, बात समाप्त हो।
वह आदमी तो समझा ही नहीं, बुद्ध के शिष्य भी न समझे। आनंद ने कहा कि नहीं, यह हमारी बर्दाश्त के बाहर है। हम आपके कारण चुप हैं, अन्यथा हम इस आदमी को ठीक कर दें। क्षत्रिय थे सभी। तलवारों को पकड़ने की पुरानी आदत थी, इतनी जल्दी थोड़े ही छूट जाती। क्रोध से भर गया आनंद।
बुद्ध ने कहा, इस पर मुझे आश्चर्य नहीं होता, आश्चर्य तुझ पर होता है। इससे तो मेरा लेना-देना है। जो दिया था, लौटा गया। यह तो बड़ा भला आदमी है। तू क्यों नाहक उबला जा रहा है? अगर तूने इसके साथ कुछ किया, तो ध्यान रखना, जैसा मैं निपटारा कर रहा हूं, कभी निपटारा करना पड़ेगा। मत फंस इस जाल में।
मैं फंस चुका हूं। अभी-अभी बाहर आया हूं। तू फंसा जा रहा है। मैं इसी जाल के बाहर आ रहा हूं और तू भीतर जाने की कोशिश कर रहा है। तुझे देखकर आश्चर्य होता है, आनंद! फिर तेरे ऊपर थूका भी नहीं। थूका मेरे ऊपर है, तू क्यों परेशान होता है? जब मैं ही परेशान नहीं।
लेकिन जिन्हें परेशान होना है, वे दूसरों के कारण भी परेशान हो लेते हैं। जिन्हें पाप में गिरना है, वे दूसरों के बहाने भी पाप में चले जाते हैं। वे कहते हैं, मित्र जा रहा था वेश्यालय की तरफ, क्या करते? इंकार न कर सके। कि मित्र ने बहुत आरजू-मिन्नत की, सो पी गए--शराब पी ली--क्या करते? मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, क्या करें, व्यवसाय में पीना पड़ता है। विदेशियों से धंधा है, क्या करें? पीना-पिलाना पड़ता है। मैं उनसे कहता हूं, पानी पी लिया करें, शरबत पी लिया करें, बहुत पाप ही करना हो, कोकाकोला पी लिया करें। कुछ भी पी लेना! क्यों, बहाने क्यों खोज रहे हो? कौन किसको जबर्दस्ती पिलाता है? किसने किसको जबर्दस्ती पिलाया?
हां, यह भी हो सकता है कि तुम न पीयो तो शायद दूसरे को भी ख्याल आए। शायद तुम उसके सामने एक प्रश्न चिह्न बनकर खड़े हो जाओ। शायद तुम न जाओ वेश्यालय को, तो तुम्हारा मित्र भी ठिठक जाए।
नहीं लेकिन, लोग कहते हैं, क्या करें! क्यों इतने नपुंसक बनते हो? क्यों ऐसे बहे चले जाते हो, कोई कहीं ले जाता है। क्यों ऐसे बिन पतवार की नाव, बिन मांझी, क्यों ऐसे यहां-वहां डांवाडोल होते हो?
नहीं, लेकिन ये बहाने हैं। मित्र तो बहाना है। यह दूसरा तो बहाना है। तुम अपने पाप का जिम्मा भी पूरा अपने पर नहीं लेना चाहते। तुम कहते हो, क्या करें, मित्र ले गया। किसी ने कह दिया, किसी के घर भोजन के लिए गए थे, मांस खिला दिया। किसने कब खाया है कुछ जो नहीं खाना चाहा है? कोई नहीं तुम्हें ले जा रहा है कहीं। तुम जाना चाहते हो, इसलिए तुम उनका साथ खोज लेते हो, जो जा रहे हैं।
जिन्हें दुखी होना है, वे दूसरे का दुख भी अपने ऊपर ले लेते हैं। और जिन्हें सुखी होना है, वे अपने दुख कीशृंखला को भी नहीं बढ़ाते। उसे रोज-रोज क्षीण करते हैं। उसकी निर्जरा करते हैं। रोज प्रसन्न होते हैं कि चलो एक और निपटारा हुआ। एक संबंध अटका था, वह भी मुक्त हुआ।
बुद्धत्व का अर्थ क्या है? मोक्ष का अर्थ क्या है? मोक्ष का अर्थ है, किनारे से फिर एक भी खूंटी लगी न रह जाए, नाव मुक्त हो। किनारा कहां है? ये दूसरे लोग ही किनारा हैं। इनमें ही तुम्हारी खूंटियां लगी हैं। तुम्हीं ने गड़ायी हैं, इसीलिए लगी हैं। ये तो बिचारे इंकार कर रहे थे कि मत गड़ाओ खूंटी, दुख होता है, बड़ी तकलीफ होती है, यह तुम क्या कर रहे हो? मगर तुम खूंटी ठोंके चले गए। तुमने सोचा, खूंटियों के सहारे तंबू लगाएंगे, घर बनाएंगे, सुंदर महल सजाएंगे। खूंटियां तो जरूरी हैं। लेकिन जो दूसरे की छाती में तुम ने खूंटियां ठोंकी हैं, वही तुम्हारा बंधन हैं।
तप का अर्थ है, तप का विज्ञान है, इस दुख को तुम एकांत में झेल लो, अब और
न फैलाओ। दुख झेलो अकेले में, सुख भोगो साथ। जब दुखी होओ, एकांत में सरक जाओ, अंधेरे में, मौन में; जब सुखी हो जाओ, नाचो बाजार में। सुख बांटो, सुख मिलेगा। दुख बांटोगे, दुख मिलेगा। सुख को छिपाओ मत।

लेकिन हालतें उलटी हैं। लोग हंसने में शरमाते हैं। लोग नाचने में संकोच करते हैं। लोग गीत गुनगुनाने में बड़ा भय खाते हैं। किसी से कहो तो कि जरा गुनगुनाओ, गीत गाओ! वह कहता है, नहीं, मुझे आता ही नहीं, मेरा कंठ ही ठीक नहीं है। गाली देते वक्त इसका कंठ बिल्कुल ठीक होता है। ऐसे तरन्नुम से और ऐसे लुत्फ से गालियां देता है! गाली देने का भी एक संगीत होता है। कुछ को आता है।
मैंने सुना है, अमरीका का बड़ा हास्य-लेखक हुआ--मार्क ट्वेन। उसे गाली देने में बड़ा रस आता था। और बड़ा कुशल गाली देने वाला था। जब देता था, तो रुकता ही नहीं था। देते ही चला जाता था। और एक गाली के पीछे दूसरी गाली ऐसे सरकती आती, जैसे उसकी जबान में फिसलन हो, कुछ अटकता न हो। पत्नी परेशान थी, घर के लोग परेशान थे, क्योंकि भद्द हो जाती, बेहूदी बातें हो जातीं। कहीं भी उतर आता वह। जरा पी लेता और बस शुरू कर देता।
सब तरह समझा चुकी थी। आखिर कोई रास्ता न देखकर एक दिन उसने दूसरी बात
तय की। उसने कहा अब ऐसा ही है तो--सुबह ही मार्क ट्वेन उठा था, अखबार पढ़ रहा था कि कुछ बात हुई--कि पत्नी ने ऐसी गालियां दीं, उसी की गालियां थीं, मार्क ट्वेन की; चौंका। पत्नी गालियां बक रही है! सुनता रहा। फिर बोला और तो सब ठीक है, लेकिन अभ्यास करना होगा, वह संगीत नहीं! शब्द तो हैं, संगीत नहीं। गालियों में भी संगीत है। दे तो रही हो, लेकिन लुत्फ लेकर नहीं दे रही हो। गालियां भी लोग चटखारे ले-लेकर देते हैं। स्वाद ले-लेकर देते हैं। गाने को कहो तो कहते हैं, कहां, कंठ ही नहीं है। गाली देने को कंठ मिल जाता है। बुरा करने को इनके हाथ में बल आ जाता है, शुभ करने को एकदम सिकुड़ जाते हैं।
सुख बांटो। जो बांटोगे, वह मिलेगा, वह बढ़ेगा, वह फैलेगा। वह तुम पर बरसेगा। दुख मत बांटो। तुम उलटा करते हो। जब दुख होता है, या तो तुम दूसरे को दुख देना शुरू कर देते हो, या अगर न कर सको इतना, तो कम से कम दुख कहना तो शुरू कर ही देते हो। दुख की लोग कथाएं कह रहे हैं। बढ़ा-चढ़ाकर कह रहे हैं। अतिशयोक्ति करके कह रहे हैं। इससे बचो।
तप का अर्थ है, दुख आ रहा है अतीत के संबंधों से,शृंखलाओं से, संस्कारों से, भोगूंगा मैं। किया मैंने है, किसी दूसरे को कहूं भी क्यों? तपस्वी अपने दुख को भोगता है, जलता है उस आग में। यही है उसकी धूप। यही हैं उसके कांटे। यही है उसका उपवास। इसलिए एकांत में हट जाता है कि कोई होगा, तो कहीं भूल-चूक हो जाए। कोई मौजूद होगा, शोरगुल सुन ले, सहानुभूति प्रगट करने आ जाए; नहीं, एकांत में चला जाता है। यह चेहरा किसी और को दिखाने का नहीं, यह बड़ा वीभत्स है। यह बड़ा कुरूप है। लौटेंगे फिर, जब चेहरे पर कोई और रौनक आ जाएगी, और कंठ किसी गीत से भर जाएंगे, और पैरों में नृत्य होगा, पायल बजती होगी, घूंघर साज देते होंगे, तब लौटेंगे। वीणा बजती होगी; कुछ होगा देने को, बांटने को, तब लौटेंगे। यह बदशकल, यह कुरूप स्थिति क्यों दिखाएं? किसको दिखाएं? क्या सार है? लोग वैसे ही काफी दुखी हैं।
जिसको यह जाग आ गयी, वह हट जाता है चुपचाप। तुमसे मैं नहीं कह रहा हूं, जंगल भाग जाओ। जंगल जाने की कोई जरूरत नहीं। जंगल बचे भी नहीं। लेकिन एकांत एक कमरा खोज लो, कोना खोज लो, घर में, गांव के बाहर, मंदिर में, मस्जिद में, कहीं भी, जहां तुम अकेले हो सको, वहां दुख को जी लो। और तुम पाओगे, दुख को जी लेने से, पीड़ित हो लेने से, रो लेने से, रेचन होगा, केथार्सिस होगी। तुम स्वच्छ हो उठोगे।
और यह स्वच्छता गंगा में नहाने की स्वच्छता नहीं है। यह स्वच्छता केवल जाकर पादरी के पास स्वीकार कर लेने की स्वच्छता नहीं है। यह स्वच्छता वास्तविक है। तुमने भोगा दुख, उससे तुम निखरे। और तब दुबारा किसी को दुख मत दो। तब तुमसे सुख की धारा बहेगी।
"स्वयं से जात, स्वयं से उत्पन्न और स्वयं से किया गया पाप, दुर्बुद्धि मनुष्य को उसी तरह नष्ट करता है, जिस तरह पत्थर से पैदा हुआ वज्रमणि पत्थर को काटता है।"

इसे संजोकर रख लो, हृदय की मंजूषा में। यह मत कहना कि मैं खुद ही अपने
को दुख कैसे दूंगा? वज्रमणि काटती है पत्थर को ही, पत्थर से ही पैदा होती है। जरा गौर से देखना, तुम्हारे ही हाथ तुम्हें दुख दे रहे हैं।
कभी देखा! खुजली आ जाती है, तुम जानते हो कि ज्यादा खुजला लेंगे, लहूलुहान हो जाएंगे, पीड़ा होगी, फिर भी खुजलाए चले जाते हो। एक रस है, एक दुर्दम्य रस है। जानते हुए, बोधपूर्वक, फिर भी खुजलाए चले जाते हो। थोड़ी ही देर में लहू निकल आता है, चमड़ी फट जाती है, पीड़ित होते हो, तय भी करते हो, अब दुबारा ऐसा न करेंगे। खुजलाने से कहीं खुजली मिटी है? दुख देने से कहीं दुख मिटा है? अब तक तुमने खुजला-खुजलाकर अपनी आत्मा को बड़े घावों से भर लिया है। ये हाथ तुम्हारे हैं। यह आत्मा तुम्हारी है। अगर अभी भी दुख पूरा न हुआ हो, तो बात और! अन्यथा रोको।
फिर, इसे न देखने के लिए कि मेरे ही हाथ मुझे कष्ट दे रहे हैं, तुम मंदिर, मस्जिद खड़े करते हो। तुम कहते हो, परमात्मा क्या लीला दिखा रहा है? लीला तुम्हीं परमात्मा को दिखा रहे हो। कहते हो, हे परमात्मा, क्या लीला दिखा रहा है? परमात्मा को क्या पड़ी तुम्हें लीला दिखाने की! और तुम्हें लीला दिखाकर परमात्मा को क्या मिलने को है? यह कुछ लीला भी बड़ी सुंदर तो मालूम नहीं होती। यह लीला भी बड़ी वीभत्स है और बड़ी दुखपूर्ण है। एक दुख-स्वप्न की भांति है।
लोग कहते हैं, परमात्मा लीला कर रहा है। बुद्ध स्वीकार नहीं कर पाते।
वे कहते हैं, यह तो... यह तो परमात्मा न हो, तो अच्छा। ऐसा परमात्मा जो यह लीला कर रहा है कि लोग कीड़ों की तरह बिलबिला रहे हैं, नर्क में जी रहे हैं, दुख पा रहे हैं, पीड़ा से सने हैं और पीड़ा ही बांट रहे हैं, और चारों तरफ अंधेरा बढ़ता जाता है, यह परमात्मा है अगर, तो फिर शैतान की परिभाषा क्या होगी?
तुम चकित होओगे। बुद्ध ने परमात्मा को कह दिया, नहीं है। क्योंकि बुद्ध के सामने दो ही विकल्प हैंः अगर परमात्मा है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दुखवादी है। अगर परमात्मा है तो सैडिस्ट है। सताने में रस ले रहा है। लीला दिखला रहा है। इससे तो बेहतर है, कह दो कि परमात्मा नहीं है। कम से कम इल्जाम तो न रहा, शिकायत तो न रही, अपराध तो न रहा।
धर्म के सामने यह सवाल सदा से रहा है, अगर परमात्मा को स्वीकार करो, तो कठिन हो जाता है समझाना कि इतना संसार में दुख कैसे है? अगर परमात्मा को स्वीकार करो तो फिर दुख का भी स्रोत वही हो जाता है। दिन उससे आएंगे, तो अंधेरी रातें भी उसी से आ रही हैं। फूल उससे आ रहे हैं, तो कांटे भी उसी से आ रहे हैं।
तब तुम समझने की कोशिश करोगे तो समझ में आएगा, बुद्ध जड़ से इस प्रश्न
को काट देते हैं; वे कहते हैं, परमात्मा नहीं है, बस तुम हो। और लीला दिखा रहे हो, तो तुम्हीं दिखा रहे हो। देख चुके काफी, बंद करनी है--ये रहे सूत्र! बुद्ध कहते हैं, ये रहीं कुंजियां, बंद करो थियेटर, घर जाओ!
जन्म से तो उड़ रहा निस्सीम इस नीले गगन पर
किंतु फिर भी छांव मंजिल की नहीं पड़ती नयन पर
और जीवन-लक्ष्य पर पहुंचे बिना जो मिट गया तू--
जग हंसेगा खूब तेरे इस करुण असफल मरण पर
ओ मनुज! मत विहग बन, आकाश बनकर जी!
मत पुजारी बन, स्वयं भगवान बनकर जी!
हो चुकी पूजा बहुत। छोड़ो पूजा। समझो। जागो। देखो, तुमने ही किया है। कोई दूसरा इस बीच मौजूद नहीं, जो इसे बदलेगा। तुम्हारा किया, तुम ही बदल सकोगे।
"मालव लता से वेष्टित शाल वृक्ष की भांति जिसका दुराचार उसे घेरकर फैला हुआ है, वह अपने प्रति ठीक वैसा ही करता है जैसा उसके शत्रु चाहते हैं।"
बड़ा प्यारा वचन है। तुम वही कर रहे हो, जो तुम्हारे शत्रुओं की आकांक्षा होगी कि तुम करो। तुम अपने शत्रु हो। तुमने अपना जीवन अपने हाथों नर्क बना लिया। यही तो शत्रु चाहते थे।

बुद्ध को किसी ने गालियां दीं और बुद्ध ने कहा, तेरी बात पूरी हो गयी
हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव पहुंचना है। उस आदमी ने कहा, हम गालियां दे रहे हैं, यह कोई बात नहीं है!
बुद्ध ने कहा, मेरे लिए बात ही है, तुम्हारे लिए गाली होगी। दस साल पहले आना था। तब मेरे लिए भी गाली थी। तब मैं ऐसा पागल था कि दूसरों की भूलों के लिए अपने को दंड देता था। तब मैं ऐसा पागल था। दूसरों की भूलों के लिए अपने को दंड देता था--गाली तुम देते, दुख मैं पाता था। अब गाली तुम दे रहे हो, तुम्हीं जानो। अपना कुछ लेना-देना नहीं; हम इस बीच पड़ते ही नहीं। तुमने दी, तुम समझो। पिछले गांव में कुछ लोग मिठाइयां लाए थे। मेरा पेट भरा था, मैंने कहा, ले जाओ। क्या किया होगा उन्होंने?
उस गाली देने वाले आदमी ने भी कहा, क्या किया होगा, गांव में जाकर बांट दिया होगा। घर में खा लिया होगा, प्रसाद समझा होगा।
तुम भी अपनी गालियां ले जाओ। गांव में बांट देना, घर में खा लेना, प्रसाद समझ लेना। मेरा पेट भर चुका। दस साल पहले भर चुका। तुम जरा देर करके आए, मित्र! अब किसी और के अपराधों के लिए मैं अपने को दंड नहीं देता। अब मैं अपना शत्रु नहीं हूं।
तुमने कभी गौर किया! कोई आदमी गाली देता है, तुम क्यों क्रोधित हो रहे हो? क्रोध से तो तुम जलोगे, यह आग तो तुम्हारे भीतर उठेगी, यह तो तुम्हारे जीवन में घाव बनाएगी। तुम कहते हो, इसने गाली दी। माना। तुमने ली क्यों? देने तक बात थी, खतम थी बात। लिए बिना तो कोई दे नहीं सकता। जो जागा हुआ है, वह लेता नहीं है। वह कहता है, बड़ी कृपा, तुमने दी, अब ले जाओ वापस, हम लेते नहीं। तुमने ख्याल किया, गाली तुम्हारे लेने पर निर्भर है, दूसरे के देने पर नहीं। देने वाला लाख सिर पटके, तुम न लोगे तो क्या करेगा? थकेगा, परेशान होगा। शायद जागकर लौटे।
वह आदमी बुद्ध को देखकर समझा होगा, सोचा होगा उसने, यह तो किसी नए ही ढंग की चेतना से मिलना हो गया। बुद्ध ने उसे चौंका दिया। वह रातभर सो न सका होगा। उसकी गाली उस पर ही लौटती रही होगी। वह करवटें बदलता रहा होगा। कहते हैं, सुबह वह भागा हुआ आया था क्षमा मांगने। बुद्ध ने कहा, छोड़ भी, जो हमने ली नहीं, उसके लिए हम क्षमा कैसे दें! तू ही जान, तेरा ही काम। यह सब तेरा ही हिसाब है। एकालाप, मोनोलाग। यह डायलाग नहीं है। दूसरा बोला ही नहीं, हम कुछ बोले ही नहीं, हम कुछ कहे ही नहीं।
तुमने एकालाप देखा? कुछ कलाकार होते हैं, जो एकालाप करते हैं। वे सभी पात्रों का अभिनय अकेले कर देते हैं। तांगे वाले भी वही हैं, तांगे पर बैठने वाले भी वही हैं, रास्ते पर चलने वाले भी वही हैं। तांगे वाले की तरफ से भी आवाजें मारते हैं, घोड़े को हांकते हैं, ग्राहक की तरफ से भी आवाज देते हैं, रास्ते पर चलते लोगों का भी शोरगुल करते हैं। एक ही आदमी सब काम कर लेता है, पर्दे की आड़ में।
तुमने सब काम किए। तुम ही करने वाले हो, और तुम्हीं पर सब हुआ। एकालाप
है तुम्हारा जीवन। संवाद नहीं है इसमें।
इसीलिए तो रोज-रोज ऐसा होता है, तुम पत्नी से कुछ कहते हो, पत्नी कुछ
और अर्थ ले लेती है। तुम लाख सिर पटको, तुम कहो, यह मेरा मतलब न था। पत्नी कहती है, यही तुम्हारा मतलब था। तुम खुद ही कह रहे हो यह मेरा मतलब न था, लेकिन पत्नी फिर भी नहीं सुनती। वह कहती है, यही तुम्हारा मतलब था। एकालाप चल रहा है। इस एकालाप के बाहर आओ। मौन बनो।
"मालव लता से वेष्टित।"
जैसे कोई लता घेर ले वृक्ष को, इसी भांति दुराचार जैसे घेरकर फैला हुआ है।
"वह अपने प्रति ठीक वैसा ही करता है जैसा उसके शत्रु चाहते हैं।"
तुम अपने शत्रुओं के हाथ में खेल रहे हो। यह कैसा शड्यंत्र तुमने किया है? तुम अपने ही मित्र नहीं। मेरे देखे, तुम अगर प्रसन्न होना चाहो तो कोई तुम्हारी प्रसन्नता में बाधा नहीं डाल सकता। हां, अगर तुम दुखी होना चाहो, तब भी कोई बाधा नहीं डाल सकता। मगर यह सत्य इतना कठिन है, इसे स्वीकार करने में मन झिझकता है। यह कहता है, मैं खुद ही दुख दे रहा हूं?

कभी नहीं। दूसरे दुख दे रहे हैं। जब तुम कहते हो, दूसरे दुख दे रहे हैं, तभी तुम मोहताज हुए, तभी तुम भिखारी बने। अब दूसरे ही सुख देंगे, तो मिलेगा।
इसे तुम समझो। इस गणित के पीछे उतरो। अगर तुमने कहा, दूसरे दुख दे रहे हैं, तो इसका अर्थ हुआ, जब दूसरे सुख देंगे, तभी। तो तुम तो भिखारी हो गए।
जो दूसरे देंगे, वही। तुम मालिक न रहे।
बुद्ध चाहते हैं तुम मालिक बनो, स्वामित्व की घोषणा करो। तुम कहो, मैं अपने को सुख देता, मैं अपने को दुख देता, जो मेरी मर्जी वही मैं करता हूं। तुम दूसरे से अपने को मुक्त कर लो।
तुम अगर इसे थोड़ा भी प्रयोग करके देखो, तुम हंसोगे। इस बात पर हंसोगे
कि अब तक इस सीधी सी सरल बात को समझा क्यों न? पत्नी कुछ कहे चली जा रही है, तुम हंसते ही रहो। तुम कहो कि हमने हंसने का ही तय किया है, हम प्रसन्न ही रहना चाहते हैं। तुझे जो करना हो तू कर, यह तेरा मन, तेरी मर्जी। तुझे दुखी होना हो दुखी हो, बाकी हम तय करके आए कि आज सुखी ही रहेंगे। तुम जरा देखो कि तुम्हारे निर्णय के साथ ही सुख की एक धारा बहने लगती है। तुम चकित होकर पाओगे कि तुम जैसे उपद्रव के बाहर खड़े हो। जैसे पत्नी किसी और से कह रही है, तुम साक्षी हो गए।
राम को, स्वामी रामतीर्थ को अमरीका में कुछ लोगों ने घेर लिया, गाली- गुफ्ता की, हंसी-मजाक उड़ाया, वे बड़े हंसने लगे। उनमें से एक ने पूछा कि हंसते हैं? दिमाग खराब है? हम तो गालियां दे रहे हैं, मजाक उड़ा रहे हैं। उन्होंने कहा, हम भी इसीलिए हंस रहे हैं कि देखो राम, कैसी फजीहत हो रही है! अब देखो! हम भी मजा ले रहे हैं, जैसा तुम मजा ले रहे हो।
मुझे बचपन की एक याद है, उसको मैं कभी नहीं भूल पाता। उस पहलवान का नाम मुझे याद नहीं रहा। गांव में एक पहलवान आया था। बड़ा दंगल था। वह हार गया। गांव के पहलवान से हार गया। हार-जीत तो बड़ी बात न थी, लेकिन जब सारे लोग तालियां बजाकर हंसने लगे उसकी हार पर, तो वह भी ताली बजाया और हंसा। सन्नाटा छा गया। वह बीच मैदान में खड़ा है--हारा हुआ पहलवान--उसने ताली बजायी और हंसा, और एक सन्नाटा छा गया। लोगों की हंसी रुक गयी, यह क्या मामला है? वह और खिलखिलाकर हंसा। सिर्फ उसकी हंसी गूंजने लगी। किसी ने पूछा, यह मामला क्या है? तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया? उसने कहा, दिमाग खराब नहीं हुआ, हम भी देख रहे हैं, बड़े पहलवान बने फिरते थे, खूब खायी, चारों खाने खायी।
उसको मैं भूल ही नहीं पाता। वह आदमी अदभुत था। उसने हार को जीत में बदल दिया। जीता हुआ उदास खड़ा था सामने। बस्ती हंस रही थी, चुप हो गयी। हारा हुआ जीत गया। वह आदमी सिर्फ पहलवान न रहा होगा। गहरी उसकी फकीरी थी। शरीर से उसका नाता न था। और उसकी हंसी भी मैं नहीं भूल पाता। वह दिल खोलकर हंसा था। वह कोई ऐसी हंसी न थी, जैसे कोई जबर्दस्ती हंसता है। जैसे फूल झरे। उसने सन्नाटा ला ही दिया।
तुम जरा जिंदगी को ऐसे दूर खड़े होकर देखना शुरू करो। वही बुद्ध कह रहे हैं। मगर हम दूसरों के हाथ में खेलते रहते हैं। हमने अपनी कुंजियां दूसरों के हाथों में दे दी हैं। हम बांट आए अपना स्वामित्व। कोई दुखी है, पूछो क्यों? वह कहता है, क्या करें, दुर्भाग्य से एक कर्कशा स्त्री मिल गयी।
सुकरात से एक जवान आदमी पूछने गया... उसको बड़ी कर्कशा स्त्री मिली थी; जेन थिप्पे उसका नाम था। कहते हैं, ऐसी औरत बड़ी मुश्किल से मिलती है। कर्कशा औरतें तो बहुत होती हैं, मगर वह बेजोड़ थी। वह अतुलनीय थी। सुकरात जैसा प्यारा आदमी! वह पत्नी इतनी उपद्रवी थी कि उसे एक क्षण चैन से न बैठने दे। मारती-पीटती भी थी। एक दफा तो उबलती हुई चाय के पानी को उसके चेहरे पर डाल दिया, आधा चेहरा उसका जल गया, जिंदगीभर जला रहा। आधा काला पड़ गया था। एक युवक उससे पूछने गया। निश्चित ही युवक शादी न करना चाहता होगा, नहीं तो कौन सुकरात से पूछने जाता। शादी करनी हो तो किसी ऐसे आदमी से पूछो जिसको जिंदगी में कोई ढंग की औरत मिली हो। सुकरात से पूछने गया था--करना न चाहता होगा! लोग बड़े हिसाब से चलते हैं। मगर सुकरात ने जो जवाब दिया, उसको मुश्किल में डाल दिया।

उसने पूछा कि मैं शादी करूं या न करूं, आप क्या कहते हैं? आप तो बड़े अनुभवी हैं। सुकरात ने कहा, करो। अगर कर ली शादी और पत्नी सुंदर मिल गयी, अहोभाग्य! सुख से जीओगे। अगर मेरे जैसी पत्नी मिल गयी, तो मेरे जैसे दार्शनिक हो जाओगे। साक्षीभाव जगाना ही पड़ता है। अब अगर रोज पिट रहे हो और ऊपर चाय का पानी डाला जा रहा है, तो साक्षी बनना ही पड़ेगा। और कोई उपाय नहीं। सुकरात ने कहा, तुम कर ही लो। हर हालत में फायदा है। कैसी ही पत्नी मिले, फायदा तो है ही।
हमने चाबियां बांट दी हैं। हमने अपनी कुंजियां बांट दी हैं। कुछ बेटे
के हाथ में हैं, कुछ पत्नी के, कुछ पति के हाथ में हैं, कोई बाप के, कोई... फिर इतने से भी हमारा चैन नहीं होता, तो मंदिर-मस्जिद; पंडा-पुजारी; बांटते फिरते हैं।
जितनी देखी दुनिया सबकी देखी दुलहन ताले में
कोई कैद पड़ा मस्जिद में, कोई बंद शिवाले में
किसको अपना हाथ थमा दूं किसको अपना मन दे दूं
कोई लूटे अंधियारे में, कोई ठगे उजाले में
पर सब तरफ। असल में जब तुमने किसी के हाथ में हाथ दिया, तभी तुम ठगे गए। हाथ अपने हाथ में रखो। हाथ अपना स्वतंत्र रखो, मुक्त रखो। हाथ दिया नहीं कि गुलामी आयी नहीं। कितनी सस्ती बातों पर तुमने अपने को बेचा है! किसी ने जरा पीठ थपथपा दी, उसी के हो गए। किसी ने कह दिया, बड़े सुंदर हो, उसी के हो गए। किसी ने कह दिया, बड़े बुद्धिमान हो, उसी के हो गए। खाक बुद्धिमानी रही! बुद्धू साबित हुए। किसी ने कह किया, बुद्धिमान हो, उसी के हो गए।
अर्श पर क्यों दिमाग-ए-अर्श उड़ा
मुफ्त की वाह-वाह से पूछो
आसमान पर क्यों उड़ने लगे?
मुफ्त की वाह-वाह से पूछो
लोग हैं चारों तरफ, जो सस्ते में खरीदने को तैयार हैं। संसार तो बाजार है। वहां तुम टिकटी पर खड़े हो, बोली लग रही है, नीलाम हो रहा है, सस्ते में बिक जाते हो। कभी सोचा तुमने कि कैसी सस्ती बातों में तुम बिक गए? इंकार न कर सके। कोई वाह-वाह कर रहा था। कोई ताली पीट रहा था। किसी ने तुम्हारी जरा प्रशंसा कर दी थी। तुम्हारा आत्म-गौरव बड़ा कम है। तुम्हारे जीवन में स्वयं का भाव बड़ा कम है। तुमने अपने को कूड़े-करकट की तरह बेचा।
अब तड़फते हो, अब रोते हो कि गुलाम हो गए, अब इतनी जगह बंध गए। अभी भी खींच ले सकते हो। यह देना-लेना तुम्हारे हाथ की बात है। दूसरों के कारण सुखी-दुखी मत होओ, मुक्त हो गए। दूसरों के कारण सुखी-दुखी होओ, गुलाम हो गए।
"उसे करना बहुत आसान है जो अशुभ है और अपने ही अहित में है। और उसे करना परम दुष्कर है जो अपने हित में है और शुभ है।"
बड़ी अजीब बात कहते हैं बुद्ध।
"उसे करना बहुत आसान है जो अशुभ है और अपने अहित में है।"
क्यों आसान है? क्योंकि सारी दुनिया तुम्हें तुम्हारे हित में नहीं देखना चाहती। दुनिया तुम्हारा शोषण करना चाहती है। तो जो तुम्हारा शोषण करना चाहता है, जो तुम्हारे खीसे में हाथ डालना चाहता है, वही तुम्हारी इस तरह की भावनाओं को सजग करता है, जगाता है कि तुम बिक जाओ। कोई अकारण तुम्हें नमस्कार भी नहीं करता।
जरा सोचो तो। पद पर थे, प्रतिष्ठा पर थे, तो लोग नमस्कार करते थे। पद
से उतरे नहीं कि फिर कोई पूछता नहीं। फिर कोई नहीं पूछता कि कौन हो? कहां जा रहे हो? क्या हुआ? कहां से आ रहे हो? लोग कन्नी काट जाते हैं। देखकर अनदेखा कर देते हैं। जरा जागकर देखो, जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं, वे तुमसे कुछ लेने आए हैं, वे तुम्हें खरीदने आए हैं।
अर्श पर क्यों दिमाग-ए-अर्श उड़ा
मुफ्त की वाह-वाह से पूछो

क्यों यह कठिन है अपने हित में जीना? क्योंकि तुम अगर अपने हित में जीओ, तो तुम दूसरों के हित में न जी सकोगे। और सभी की उत्सुकता यह है कि तुम उनके हित में जीओ। पत्नी चाहती है पति पत्नी के हित में जीए। पति चाहता है पत्नी पति के हित में जीए। बाप चाहता है बेटा मेरे हित में जीए, बेटा चाहता है बाप मेरे हित में जीए। हितों का बड़ा संघर्ष है।
हर बात में आपा-धापी है चालाकी है तर्रारी है
दुनिया के फसाने का उन्वां मक्कारी है ऐय्यारी है
अफसोस है कि ऐसी दुनिया में
तू मस्त-ए-मय-ए-खुद्दारी है
तेवर तो देख जमाने के
जड़ काट के रख तक्लीद की तू
बुनियाद भी रख तस्दीक की तू
उम्मीद भी रख ताईद की तू
तू तेवर भी देख जमाने के
तेवर तो देख जमाने के
चारों तरफ एक गहन संघर्ष है। लोग तुम पर कब्जा करना चाहते हैं। दुनिया बड़ी है। सभी तुम पर कब्जा करना चाहते हैं। मां अपनी तरफ खींचती है, पत्नी अपनी तरफ खींचती है। मंदिर अपनी तरफ खींचता है, मस्जिद अपनी तरफ खींचती है। सभी तुम पर कब्जा करना चाहते हैं। बाजार बड़ा है, खरीददार बहुत हैं, बिकने को तुम अकेले टिकटी पर खड़े हो। अगर होश न रखा, तो तुम भटक जाओगे। हर बात में आपा-धापी है चालाकी है तर्रारी है
दुनिया के फसाने का उन्वां मक्कारी है ऐय्यारी है
अफसोस है कि ऐसी दुनिया में
तू मस्त-ए-मय-ए खुद्दारी है
और तुम अपने अहंकार की शराब में डूबे खड़े हो। चारों तरफ तुम्हें खरीदने की दौड़ लगी है और तुम अपने अहंकार की शराब में बेहोश हो। बिकोगे, कटोगे, टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे। खंड-खंड होकर छितरोगे, बिखरोगे। जोड़ना मुश्किल हो जाएगा।
तेवर तो देख जमाने के
जरा देखो तो दुनिया की नजर, किस भांति तुम पर लगी है! किस तरह तुम्हें बेच लेने को, बाजार में रख देने को सभी की उत्सुकता है!
तेवर तो देख जमाने के
जड़ काट के रख तक्लीद की तू
अनुकरण की जड़ को काट दो।
बुनियाद भी रख तस्दीक की तू
मौलिक होने की बुनियाद रखो। स्वयं होने की बुनियाद रखो, उधार होने की नहीं।
उम्मीद भी रख ताईद की तू
और सफल होने की आशा भी रखो।
तू तेवर भी देख जमाने के
तेवर तो देख जमाने के
क्या कठिनाई हो गयी आदमी को? क्यों यह मुश्किल हो गया अपने हित में होना? छोटा बच्चा पैदा होता है... मनस्विद बड़ा श्रम कर रहे हैं आधुनिक समय में। पिछले पचास वर्षों में बच्चे के संबंध में बड़ी खोजें की गयी हैं, जो कि पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी नहीं की गयी थीं। बच्चा खोज का कभी कारण ही न रहा था। बच्चे की खोजों ने इतनी साफ बातें कर दी हैं कि बुद्धों के वचन आज पहली दफा ठीक-ठीक गणित की तरह समझे जा सकते हैं।
छोटा बच्चा पैदा होता है--असहाय, निर्भर। उसी पहले क्षण से जीवन के, दूसरे उसका शोषण शुरू कर देते हैं। अगर छोटा बच्चा जब मां चाहती है तब दूध न पीए, तो मां नाराज हो जाती है। बच्चे की भूख की किसी को फिक्र नहीं है! मां को सिनेमा देखने जाना है, बच्चे को दूध पीना चाहिए। बच्चे को भूख भी लगी या नहीं! बच्चे से कोई नहीं पूछता तेरा हित क्या है? तेरा सुख क्या है? अभी तू क्या चाहता है? बच्चे को कोई पता नहीं कि सिनेमा भी होता है। अगर

बच्चा दूध पीने से इंकार करे, मां नाराज होती है। जब बच्चे को भूख लगती है तब मां दूध पिलाने को जरूरी नहीं कि राजी हो, क्योंकि मेहमान घर में बैठे हैं। बच्चे को कुछ पता नहीं कि मेहमान क्या बला हैं! और ये क्यों बैठे हैं घर में, उठते क्यों नहीं? और ये इसी वक्त क्यों आए, जब मुझे भूख लगी है? बच्चा रोता है, तो पिटाई होती है।
बच्चे को जब भूख लगती है, तब जरूरी नहीं मां दूध दे। बच्चे को जब भूख नहीं लगती, तब भी मां दूध देती है। और धीरे-धीरे बच्चा एक बात समझ लेता है कि मेरे हित का सवाल नहीं है। मां की तरफ देखने लगता है कि कब वह दूध देना चाहती है, तब दूध ले लेता है। कब वह नहीं देना चाहती, तब चुपचाप पड़ा रहता है--सिकुड़ा। रोना चाहता है, चिल्लाता भी नहीं, क्योंकि और पिटेगा, उससे कुछ सार नहीं; करके देख लिया।
फिर ऐसे ही जीवन की बुनियाद पड़ती है। बच्चा कुछ करना चाहता है, मां- बाप कुछ करवाना चाहते हैं। हर जगह बच्चा पाता है, मेरे हित में और उनके हित में विरोध है। और मेरे हित को पूरा करना असंभव है, क्योंकि मैं असहाय हूं, निर्भर हूं, उनका ही हित पूरा करना पड़ेगा। वे ताकतवर हैं, शक्तिशाली हैं। झुकना होगा। उनके हाथ में रोटी है, मकान है, कपड़े हैं। धीरे-धीरे बच्चे ने अपने को बेचना शुरू किया।
तुमने कभी देखा--मैं गौर से देखता रहा हूं--अगर छोटा बच्चा मुस्कुराए
तो जरूरी नहीं कि मां मुस्कुराए उस वक्त। लेकिन जब मां मुस्कुराती है, तो बच्चे को मुस्कुराना चाहिए। जब मां मुस्कुराती है तो बच्चे को मुस्कुराकर उत्तर देना चाहिए। इसकी अपेक्षा है। अगर बच्चा उत्तर न दे, तो नाराजगी है। नाराजगी बच्चा अभी उठा नहीं सकता। बहुत महंगी है। अभी इतना समर्थ नहीं। लेकिन बच्चा अगर मुस्कुराए तो जरूरी नहीं है कि मां मुस्कुराए। हजार और काम भी हैं। यह कोई फुरसत की बात है। जब होगा समय तब मुस्कुरा लेगी।
धीरे-धीरे बच्चा एक बात सीख लेता है कि इस संसार में अगर जीना हो, तो अपने हित की बात भर मत करना। बच्चा राजनीतिज्ञ हो गया अब। कूटनीतिज्ञ हो गया। जब मां समझती है हंसना जरूरी है तब हंसता है, चाहे भीतर आंसू भरे हों। जब हंसी आती है तब रोक रखता है, देखता है चारों तरफ ठीक माहौल है, उचित अवसर है, कहीं बेवक्त तो नहीं हंस रहा हूं, नहीं तो मार पड़े। धीरे-धीरे, धीरे- धीरे, युवा होते-होते अपने से छूट जाता है। अपना हित ही भूल जाता है।
और सभी उसे समझा रहे हैं, स्वार्थी मत बनो। सभी उससे कह रहे हैं, परार्थ करो। मां जो कहती है उसकी इच्छा पूरी करो, अगर तुम असली सच्चे बेटे हो। बड़ी हैरानी की बात है। बेटा अपनी इच्छा पूरी करे, या मां की इच्छा पूरी करे? बाप कहता है, मेरी इच्छा पूरी करो।
मैंने एक छोटे लड़के से पूछा, तू क्या बनना चाहता है भविष्य में? उसने कहा कि पागल हो जाऊंगा, बनने का तो सवाल ही नहीं है। मां डाक्टर बनाना चाहती है, बाप इंजीनियर बनाना चाहता है, भाई एक्टर बनाना चाहता है। बहन की कुछ और इच्छा है। काकियां हैं, काका हैं, सब की अलग इच्छा, पागल हो जाऊंगा! मुझे तो पता ही नहीं चलता कि मैं क्या बनना चाहता हूं, लेकिन वे सब उत्सुक हैं बनाने को। और वे सब खींचातानी कर रहे हैं।
ऐसा वक्त आ जाता है जल्दी ही कि बच्चे के अपने से संबंध ही छूट जाते हैं। यह सबसे बड़ी दुर्घटना है जो मनुष्य के जीवन में घटती है। उसको अपनी भावनाओं का बोध नहीं रह जाता। दिशा का बोध नहीं रह जाता। उसके भीतर की घड़ी अस्तव्यस्त हो जाती है। जब समय होता है, तब भूख। भूख जब होती है, तब समय नहीं। धीरे-धीरे वह भूल ही जाता है कि भूख कब लगती है। समय से खाने लगता है। घड़ी देख लेता है। बारह बज गए, भोजन का वक्त हो गया। ऐसे सारी जिंदगी झूठी हो जाती है।
पत्नी है तो प्रेम करना चाहिए। प्रेम से कोई पत्नी हो, यह समझ में आता है। लेकिन पत्नी है इसलिए प्रेम करना चाहिए, घड़ी देखकर भोजन करना हुआ। प्रेम हो और कोई पत्नी हो जाए, बात ठीक। लेकिन उसकी सुविधा समाज नहीं देता। मां है इसलिए प्रेम करना चाहिए, कर्तव्य निभाओ! सब तरफ से हटाया जा रहा है उसे स्वयं से। और सब उसे अपने-अपने हित में खींच लेना चाहते हैं।

मेरे एक मित्र थे। उनका एक बेटा मंत्री था। वे खुद मंत्री होना चाहते
थे, हो न पाए। जेल वगैरह तो बहुत गए, मगर कुछ सिक्का बैठा नहीं। कुछ फिसड्डी रहे। दूसरे दांव मार ले गए, जो कम भी जेल गए थे। और गए भी नहीं थे कई तो, वे भी दांव मार ले गए। सीधे-सीधे आदमी थे। पर लड़के को किसी तरह मंत्री बना दिया। लेकिन मंत्री बनकर लड़का मर गया। बड़े दुखी हुए, बड़े ही दुखी हुए, आत्महत्या की सोचने लगे।
मैंने उनसे पूछा कि आपका दूसरा लड़का भी है। अगर यह मरता तो आप आत्महत्या की सोचते? बोले, कभी नहीं। दूसरा लड़का, उसने कोई महत्वाकांक्षा ही पूरी नहीं की। न वह मंत्री बना, न बड़ा नेता हुआ, न कुछ। उनके मुंह से एकदम निकल गया, कभी नहीं। मैंने कहा, दोनों तुम्हारे बेटे हैं। एक मर गया तो तुम आत्महत्या करने को उतारू हो। और मैं तुमसे पूछता हूं, दूसरा मर जाता तो तुम आत्महत्या करते! तुम कहते हो, कभी नहीं। थोड़ा सोचो तो क्या कह रहे हो!
इसका मतलब सिर्फ इतना हुआ कि पहले बेटे ने तुम्हारी मानी, तुम्हारी महत्वाकांक्षा के लिए कंधा दिया। जो तुम होना चाहते थे, वह हो गया। तुम्हारा पहला बेटा झूठा था। तुम्हारा दूसरा बेटा थोड़ा सच्चा है। वह अपने से जी रहा है। और मैं तुमसे कहता हूं, शायद तुम्हारा बड़ा बेटा इसीलिए मर गया कि झूठा था, बड़े तनाव में था। बड़ा परेशान था। बेचैनी में था।
मेरी बात से उन्हें बड़ी चोट लगी कि मैं ऐसे दुख के समय में और ऐसी दार्शनिक समस्या छेड़ रहा हूं। मैंने कहा, दुख के समय में अगर दार्शनिक समस्या न छेड़ो तो कब छेड़ोगे? सुख के समय में छेड़ो, लोग कहते हैं, अभी सुख का समय है, यह क्या बात छेड़ रहे हो? यह दुख का समय है, यह क्या बात छेड़ रहे हो? कब छ.ेडनी! आप सुख और दुख से, दोनों से कभी अलग होंगे? जो हो जाए, उसे छेड़ने की जरूरत नहीं, वह तो साक्षी हो गया। वह तो जान ही गया।
"उसे करना बहुत आसान है जो अशुभ है और अपने ही अहित में है।"
बुद्ध के ये वचन बहुत गौर से याद कर लेने जैसे हैं। हृदय पर लिख जाएं।
"और उसे करना परम दुष्कर है जो अपने हित में है और शुभ है।"
क्योंकि संसार तुम्हें निर्मित करता है दूसरों की सेवा के लिए।
एक पादरी छोटे बच्चों को समझा रहा था कि दूसरों की सेवा करना चाहिए। भगवान ने तुम्हें दूसरों की सेवा के लिए बनाया है। एक छोटा बच्चा खड़ा हो गया। उसने कहा कि यह तो हम समझ गए कि हमको उसने दूसरों की सेवा के लिए बनाया। दूसरों को किसलिए बनाया? इसका भी तो पक्का पता चल जाए। पादरी भी थोड़ा सकुचाया होगा। कभी-कभी बच्चे ऐसे सवाल उठा देते हैं कि बूढ़े जवाब नहीं दे सकते। बूढ़े बेईमान हैं।
पादरी थोड़ा झिझका होगा कि क्या जवाब देना? क्योंकि अगर वह यह कहे कि दूसरों को उसने तुम्हारी सेवा के लिए बनाया, तो बच्चा काफी तेज-तर्रार मालूम होता है, बच्चा कहेगा कि फिर झंझट ही काहे को खड़ी करनी, हम अपनी सेवा कर लें, वह अपनी कर लें। हम उसकी करें, वह हमारी करें, हम तुम्हारे पांव दाबें, तुम हमारे दाबो? हम अपने दाब लें, तुम अपने दाब लो, झंझट खतम करो। यह क्या जाल फैलाया? अगर यह कहे कि दूसरों को उसने इसलिए बनाया कि तुम उनकी सेवा करो, तो बच्चा कहेगा, यह तो जरा ज्यादती मालूम होती है। हमको सेवा के लिए बनाया और उनको सेवा लेने के लिए बनाया! आखिर हमारा कसूर क्या है? ध्यान रखना, बुद्धपुरुषों ने स्वार्थ सिखाया है। सूत्र आगे का है जो तुम्हें साफ करेगा।
"उसे करना परम दुष्कर है जो अपने हित में है।"
क्योंकि संसार तुमसे कह रहा है, किसी और के हित में जीओ, अपने हित में
मत जीना। संसार तुम्हें व्यक्ति नहीं होने देना चाहता। संसार तुम्हारे भीतर एक गुलाम को देखना चाहता है, एक सेवक को देखना चाहता है। उसने सब तरह के जाल फैलाए हैं। उसने सब तरह की अच्छी-अच्छी बातों का, शब्दों का एक पूरा संसार रचाया है। उसने हर जगह कांटे में आटा लगाया है कि तुम उलझो, फंसो। स्वभावतः, हर एक व्यक्ति कहता है कि क्या अपने स्वार्थ में पड़े हो!
कभी तुमने गौर किया कि जो व्यक्ति तुमसे यह कहता है, क्या स्वार्थ में पड़े हो, उसका मतलब क्या है? उसका मतलब है, हमारी सेवा करो, क्या स्वार्थ

में पड़े हो! हम मौजूद हैं और सेवा नहीं कर रहे! जब तुमसे कोई कहता है, क्या स्वार्थ में पड़े हो, तो उसका मतलब यह है कि तुम उसके स्वार्थ के काम नहीं आ रहे।
एक नया ही संसार बनेगा जिस दिन बुद्धों का वचन हमारी समझ में गहरा बैठ जाएगा। तब तुम अपने स्वार्थ में जीओगे। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम दूसरों के दुश्मन हो जाओगे। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम दूसरों को दुख दोगे। इसका यह भी अर्थ नहीं कि परार्थ खो जाएगा। वस्तुतः परार्थ है कहां, परार्थ की बकवास चल रही है। जिस दिन स्वार्थ होगा, उसी दिन परार्थ होगा। जिस दिन तुम स्वयं के हित में होओगे, उसी दिन तुम अचानक सबके हित में हो जाओगे। क्योंकि जो तुम्हारा आंतरिक हित है, वह किसी के विपरीत नहीं है। और जो तुम्हारा हित नहीं है, वह किसी के हित में नहीं हो सकता।
अगर तुमने अपने को प्रेम किया, तो पत्नी को प्रेम कर पाओगे। अगर पत्नी
ने जिद्द की और तुमसे भी ईर्ष्या की कि तुम अपने को ज्यादा प्रेम करते हो मेरी बजाय, तो तुम अपने को तो प्रेम कर ही न पाओगे, पत्नी को भी न कर पाओगे। अपने स्वार्थ में जड़ें नहीं जमायी हैं जिसने, वह किसी के काम न आ सकेगा। जो अपने भी पैर दबाना न सीखा, वह किसी और के पैर न दबा सकेगा। जो अपना न हुआ, वह किसका होगा?
सबका तो मुदावा कर डाला अपना ही मुदावा कर न सके
सबके तो गिरेबां सी डाले अपना ही गिरेबां भूल गए
सबका तो इलाज कर डाला, खुद को ही भूल गए। सबका तो उपचार कर दिया, खुद बीमार ही बने रहे।
मैंने सुना है, एक बीमार आदमी एक चिकित्सक के पास गया और उसने कहा कि मैं बहुत परेशान हूं। यह खांसी, सूखी खांसी मेरा पीछा ही नहीं छोड़ती। कई चिकित्सकों के पास गया, कुछ सार नहीं। सब दवाएं करवा लीं, कोई सार नहीं। फिर किसी ने आपके पास भेजा है कि आप बड़े अनुभवी हैं।
उसने कहा, हूं अनुभवी। दवा निकालकर देने लगा। वह आदमी कुछ सोचता रहा, उसने पूछा कि आपका क्या मतलब कि अनुभवी हैं? क्योंकि जब वह दवा बना रहा था, दो-तीन दफे वह खुद ही खांसा। उसने कहा कि तीस साल से यह बीमारी मुझे ही पकड़े हुए है। मैं बड़ा अनुभवी हूं। अनुभव से ही दवा दे रहा हूं। तू ऐसे चिकित्सकों के पास गया होगा, जिनको पता ही नहीं बीमारी का। तीस साल से मैं खुद ही परेशान हूं।
थोड़ा ख्याल रखना। अगर तुम खुद ही दुखी हो, तो किसको सुख दे पाओगे? तुम खुद ही बीमार हो तो किसकी चिकित्सा कर पाओगे?
सबका तो मुदावा कर डाला अपना ही मुदावा कर न सके
सबके तो गिरेबां सी डाले अपना ही गिरेबां भूल गए
पहले अपने कपड़े तो सी लो। पहले अपना दामन तो बचा लो कांटों से, फिर दूसरों को बचाने निकल जाना। पहले अपना दीया तो जला लो। फिर किसी दूसरे का दीया भी तुम्हारे जले दीए से जल सकता है। अपना अंधेरा दीया लिए हुए किसका दीया जलाने चले हो? कैसे यह होगा? डर यही है कि कहीं किसी का जलने वाला हो, तुम बुझा मत देना।
नहीं, परार्थ की बहुत बात हो चुकी। लेकिन चूंकि तुम्हारा परार्थ अब
तक स्वार्थ के विपरीत रहा, पूरा न हो सका। क्योंकि वह मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। एक ऐसा परार्थ चाहिए जो स्वार्थ के अनुकूल हो। एक ऐसा परार्थ चाहिए जो स्वार्थ का संगी-साथी हो सके, पैर मिलाकर चल सके। स्वार्थ के साथ जिसका संगीत जुड़ सके। बुद्ध उसी स्वार्थ की बात कर रहे हैं। और इसलिए कठिन हो गया है।
जिस व्यक्ति को भी सत्य को पाना हो, स्वयं को पाना हो, उसे एक बात तय कर लेनी होगी, उसे अपने व्यक्तित्व में खड़े रहने की हिम्मत जुटानी होगी। यह कठिन है। यह सारे संसार से संघर्ष में पड़ना है। संन्यास सरल नहीं है। संन्यास का अर्थ ही यही है कि तुमने अब स्वयं होने की बात सोची। अब तुम अपने से चलोगे। अब तुमने यह कहा कि मैं व्यक्ति होता हूं, हो चुका भीड़ का हिस्सा बहुत।

कल बी.के.संघवी रात मुझे मिलने आए। परेशान हैं। कहने लगे, अब सब काम-धंधे से छुटकारा करवा दें। मैंने कहा, छोड़ दो, अब संन्यस्त हो जाओ। उसमें जरा मुश्किल है। क्या मुश्किल है? जो रोजमर्रा का ढांचा है, उसमें बेचैनी आएगी।
कब तक उस ढांचे के हिस्से बने रहोगे? और अगर उस ढांचे का इतना मूल्य है, तो तुम भी ढांचा ही होकर रह जाओगे। आत्मा कभी न खोज पाओगे। अगर तुम इतने भी स्वतंत्र नहीं हो कि तुम अगर संन्यस्त होना चाहो तो संन्यस्त न हो सको, तो तुम कैसे आत्मवान हो सकोगे? वस्तुतः जहां कठिनाई है, वहीं चुनौती है। और जो चुनौती को स्वीकार करता है, वही आनंद की फसल भी काटता है।
वो मर्द नहीं जो डर जाए माहौल के खूनी मंजर से
उस हाल में जीना लाजिम है जिस हाल में जीना मुश्किल है
जहां कठिनाई मालूम पड़े, उसे चुनौती समझो।
उस हाल में जीना लाजिम है जिस हाल में जीना मुश्किल है
जहां कठिनाई हो, उसे जीवन समझो। क्योंकि वहीं से तुम्हारे जीवन की दबी हुई आग प्रगट होगी। तुम्हारा अंगारा राख को झड़ाएगा, प्रगट होगा। लपट उठेगी।
मैं जानता हूं, डर लगता है, पत्नी नाराज होगी। डर लगता है, बच्चे हंसेंगे घर में। डर लगता है, भाई क्या कहेंगे! कब तक यह चलेगा? तब तो फिर मौत के पहले छुटकारा असंभव है। और मौत भी कोई छुटकारा है, जब जबर्दस्ती खींचे जाओगे! स्वयं होने की हिम्मत करो, चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े।
और मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम स्वयं होओगे, होने की हिम्मत जुटाओगे, उस दिन पत्नी तुम्हें पहली दफा पाएगी। क्योंकि ऐसे आदमी का भी क्या पाना जो इतना कमजोर था कि गेरुआ वस्त्र पहनने में डरा; यह भी कोई मर्द हुआ!
मेरी अपनी समझ यह है, हजारों लोगों के जीवन में प्रयोग करने के बाद मेरी समझ यह है कि पत्नी उसी पति के साथ प्रसन्न होती है, जिसमें कुछ बल हो। नहीं तो पत्नी सोचती है, कहां का फीका आदमी मिल गया! गेरुआ कपड़ा तक नहीं पहन सकता। एक कमजोर के पल्ले पड़ गए! कोई पत्नी उस पति से राजी नहीं होती जो पत्नी से दबता है। पिछलग्गुओं से कौन राजी होता है? कोई पत्नी प्रसन्न नहीं होती उस पति से, जो झुकता है। पत्नी चाहती है ऐसा पति, जो झुका ले। जो शिखर की भांति अडिग खड़ा रहे। जिसे कोई भी झुका न सके। सभी स्त्रियों की आकांक्षा ऐसे पुरुष को खोज लेने की है जो पुरुष हो।
लेकिन हम कुछ उलटा ही सोचे बैठे हैं। हम सोचते हैं, झुकते जाओ-- समझौता, समझौता, समझौता। हमने वणिक की कला सीख ली है। हम हर हाल में समझौता कर लेते हैं। धीरे-धीरे हम समझौता ही रह जाते हैं। हमारे भीतर से सत्य खो जाता है।
"अपनी पापमयी मिथ्या-दृष्टि के कारण, जो दुर्बुद्धि मनुष्य आर्य और धर्मात्मा अर्हतों के शासन की निंदा करता है, वह बांस की तरह आत्मघात के लिए ही फूलता है।"
बुद्ध कह रहे हैं, जिन्होंने जाना है वे हैं अर्हत। अर्हत का अर्थ होता है, जिन्होंने अपने शत्रुओं पर विजय पा ली। बाहर के शत्रु नहीं, भीतर के शत्रु। अरि यानी शत्रु। जिनके शत्रु हत हो गए, गिर गए। जिन्होंने अपने क्रोध पर, घृणा पर, वैमनस्य पर, ईर्ष्या पर विजय पा ली। ऐसे अर्हत पुरुषों ने जो कहा है, उसकी जो निंदा करता है, वह उस बांस की तरह है जो फूल रहा है, फूलकर फटेगा। उसका फूलना ही उसका आत्मघात हो जाएगा।
"जो आर्य और अर्हतों के... ।"
बुद्ध ने आर्य शब्द का उपयोग जातिवाचक दृष्टि से नहीं किया। आर्य का अर्थ होता है, श्रेष्ठ। उत्तम। जो पुरुषोत्तम है। जिसने अपने भीतर की आत्मा को, अपने भीतर के पुरुष को उपलब्ध कर लिया। जिसने अपने भीतर के सत्य से पहचान कर ली। उसकी जो निंदा करता है, वह आत्मघाती है।
तो निंदा करते समय थोड़ा विचार करना, आलोचना करते समय थोड़ा विचार करना, कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम उस-उस की निंदा करते हो, उस-उस की आलोचना करते

हो, जहां-जहां तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित होने की संभावना थी, जहां- जहां चुनौती थी।
ऐसे बहुत लोग हैं, जो मेरी किताब पढ़ेंगे, लेकिन मेरे पास आने से डरते हैं। जो चोरी-छिपे मेरे संबंध में बात करेंगे, लेकिन आमने-सामने न आएंगे। क्या कारण होगा? और मैं जानता हूं, उनमें से बहुत निंदा भी करेंगे, आलोचना भी करेंगे। लेकिन आलोचना और निंदा करनी हो, उसके पहले जान तो लेना चाहिए, मैं क्या कर रहा हूं? यहां क्या हो रहा है? यहां वे कभी आए ही नहीं। निश्चित ही, उनकी निंदा और आलोचना आत्मवंचना है। अगर आलोचना करनी हो, निंदा करनी हो, पहले ठीक से परिचित तो हो लो। जरा स्वाद तो ले लो। इस मधुशाला में आओ, जरा डोलो तो।
खुश्क बातों में कहां ऐ शेख कैफे-जिंदगी
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है
थोड़ा आओ, पीओ। थोड़ा डगमगाओ। फिर स्वाद के बाद ठीक न लगे, इनकार करना। लेकिन बिना स्वाद लिए इनकार करने का एक ही कारण हो सकता है कि तुम डरते हो कि अगर पास आए तो गए। पास आए तो खोए। पीया तो डूबे।
"अपना किया पाप अपने को मलिन करता है। अपना न किया पाप अपने को ही शुद्ध करता है। शुद्धि और अशुद्धि स्वयं से होती है। दूसरा दूसरे को शुद्ध नहीं कर सकता।"
"दूसरे के बहुत हित के लिए भी स्वयं के हित की हानि न करे।"
बड़ा अनूठा वचन है। तुमने सोचा भी न होगा कि बुद्ध, और कहेंगे! बुद्ध का
एक वचन बहुत लोगों ने प्रचलित किया है--बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। वह लोगों के मतलब का दिखा। उन्हें समझ में आया कि यह बात काम की है। लेकिन इस वचन को बहुत प्रचार नहीं मिला। और यह वचन बड़ा कीमती है। शायद पहला वचन न भी कहा हो, लेकिन यह वचन तो निश्चित बुद्धपुरुष ही कह सकते हैं।
"दूसरों के बहुत हित के लिए भी स्वयं के हित की हानि न करे। अपने धर्म
की बात को समझकर, अपने अर्थ की बात को समझकर अपने ही अर्थ के साधन में लग जाए।"
स्वार्थ! तो जब मैं तुमसे कहता हूं, स्वार्थ धर्म है, तो घबड़ाना मत। मैं अकेला ही ऐसा नहीं कहता, बुद्ध भी यही कह रहे हैं। लेकिन जब बुद्ध कहते हैं तो सोचकर कहा है। क्योंकि स्वार्थ से ही परार्थ के फूल खिलते हैं। जो स्वयं के अर्थ की खोज में लग गया, वह फिर किसी की हानि न कर सकेगा। और जिसने अपना सुख पा लिया, वह सुख बांटेगा। करेगा क्या? फूल खिलेगा तो सुगंध बिखरेगी ही। फिर फूल रोक थोड़े ही पाएगा सुगंध को? एक बार खिले भर।
तो हम कहते हैं, फूल अपना स्वार्थ साध! अभी तू फिकर मत कर दूसरों की, अभी तो तू अपनी जड़ों को फैला पृथ्वी में, सोख रस को, जीवन को; सूरज को पी, मेघ को निमंत्रित कर, अभी अपनी फिकर कर। एक बार तेरा फूल खिल जाए, बस! गंध तो उड़ेगी ही। गंध तो दूसरों तक पहुंचेगी ही। फिर कोई उपाय थोड़े ही है खिले फूल को बंद हो जाने का कि रोक ले। खिलने का अर्थ ही बंट जाना है। तो बुद्ध कहते हैं, सुखी तो हो जाओ, फिर तो सुवास लुट जाएगी। पहले स्वार्थ साध लो। लेकिन दूसरे तुम्हें उलटा ही सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैं, परार्थ। दूसरे की सेवा करो। दूसरे यानी वे। दूसरे का अर्थ है--सीधे-सीधे नहीं कह सकते, मेरी सेवा करो--कह रहे हैं, दूसरे की सेवा करो। भिखमंगे रास्ते पर बैठे हैं, वे कहते हैं, दान दो। दान महापुण्य है। दान धर्म है। लोभ पाप का बाप बखाना। वे लोगों को कह रहे हैं। यह मत समझ लेना कि वे दान के पक्ष में हैं। वे यह कह रहे हैं, दान इधर दो, कहां जा रहे हो? एक बार दान के पक्ष में हो जाओ, उनका भिक्षापात्र तो फैला ही हुआ है। तो बड़ी मुश्किल में डाल देता है भिखारी जब रास्ते पर अचानक मिल जाता है। तुम न भी देना चाहो, तो बेइज्जती की हालत खड़ी कर देता है। चारों तरफ लोग देखने लगते हैं।
इसलिए भिखारी कभी तुम अकेले हो, तुम्हें नहीं छेड़ता। जब चार जन चारों तरफ हों, तब पकड़ता है। अकेले में तुम कहोगे, जा, चुप; मस्त-तड़ंग है, काम कर! लेकिन अगर बीच-बाजार में उसने पैर पकड़ लिया, जहां प्रतिष्ठा दांव पर लगा देता है वह--तुम्हारी प्रतिष्ठा--लोग चारों तरफ देखने लगे, अब अगर तुम दो पैसे के लिए झंझट करते हो, तो लगता है यह जरा महंगा सौदा है, लोग क्या

कहेंगे? लोभ पाप का बाप बखाना। और दान पुण्य है। तुम करना भी नहीं चाहते फिर भी करते हो।
मुफ्त की वाह-वाह से पूछो
ये चारों तरफ के लोग कहेंगे, बड़े दानी हैं। चित्त बड़ा प्रसन्न है। न
भी हो, तो भी तुम देकर प्रसन्नता दिखाते हो। भीतर से देना भी नहीं चाहते। यही दशा है। लोग कहते हैं, अपना कर्तव्य पूरा करो। करते हो तुम। क्योंकि दब गए हो संस्कारों से।
लेकिन बुद्ध का वचन सुनो, "दूसरे के बहुत हित के लिए भी स्वयं के हित
की हानि न करे।"
यह ऊपर से तो दिखता है कि बुद्ध जैसे तुम्हें स्वार्थ सिखा रहे हैं, परार्थ के विपरीत हैं। लेकिन वे जानते हैं कि वस्तुतः स्वार्थ कभी परार्थ के विपरीत है ही नहीं। जिसने अपने को न दिया, वह दूसरे को क्या देगा? कंजूस दूसरे को नहीं देता, ऐसा थोड़े ही है, अपने को ही कहां देता है? तुम जरा कंजूस को गौर से देखो, वह अपने को कहां देता है? उसके कपड़े तो देखो।
कहते हैं, निजाम हैदराबाद जब तख्त पर बैठे, तो जो टोपी उन्होंने पहनी थी, जब मरे चालीस साल बाद, वही पहने हुए थे। गंदी हो गयी तो उसको धुलवाते नहीं थे, क्योंकि खराब न हो जाए। बास आती थी। एक ही टोपी से गुजार दिए। कहते हैं कि जब लोग सिगरेट वगैरह पीकर चले जाते, अधजली छोड़ जाते, तो एस्ट्रे में से उठाकर रख लेते थे निजाम हैदराबाद--खुद के पीने के लिए। तुम्हें भरोसा भी न आएगा! क्योंकि निजाम हैदराबाद पृथ्वी के सबसे बड़े धनी आदमी थे। अब तक उनकी संपत्ति का ठीक आकलन नहीं हो सका। उनके पास इतने हीरे- जवाहरात थे--सारी गोलकुंडा की खदान उनके ही घर आ गयी थी--कि साल में जब एक दफा उनके हीरे-जवाहरातों को धूप दिखानी पड़ती थी, तो सात महलों की छतें भर जाती थीं। और यह आदमी सिगरेट के टुकड़े बीन रहा है!
कंजूस दूसरे को नहीं देता, यह तो दूसरे नंबर का कदम है। पहले नंबर का कदम तो वह अपने को ही नहीं देता। कंजूस गरीब की तरह रहता है। है अमीर, रहता गरीब की तरह, मरता गरीब की तरह।
मैं बहुत से धनी लोगों को जानता हूं। जैसे गरीब मैंने धनी आदमियों में देखे, वैसे गरीबों में नहीं देखे। गरीब तो कभी-कभी धनी भी हो जाता है, अमीर गरीब ही रहता है। एक पैसा नहीं छूटता। अपने लिए ही नहीं छूटता। और बहाने खोज लेता है अमीर। बहाने खोज लेता है--सादगी।

निजाम हैदराबाद भी यही कहते थे कि मैं सीधा-साधा आदमी हूं--सादगी। इसलिए टोपी चालीस साल तक पहने हुए थे। भाड़ में फेंको इस सादगी को! यह सादगी नहीं है। यह आदमी अच्छे शब्दों के भीतर छिपा रहा है। यह बदबू आने लगी सादगी में। यह सादगी बीमारी हो गयी। यह सादगी है पीए हुए सिगरेट के अधजले टुकड़े इकट्ठे करना? और गंदगी क्या होगी? अगर यह सादगी है, तो सादगी से बचाए भगवान!
नहीं, यह सादगी नहीं है। लेकिन कंजूस भी कहता है, सादगी। जो बांटकर जीते हैं, उनको कहता है, फिजूलखर्च। फिजूलखर्च! खुद को ही नहीं देता। तुम जरा अमीरों की जिंदगी तो देखो, कैसे गरीब की तरह जीते हैं। अगर अमीर की तरह जीने लगें, अगर अपना ही आनंद खोजने लगें, तो बांटना तो अपने आप आ जाएगा। इसलिए बुद्ध ठीक ही कहते हैं। लेकिन कठिन है। क्योंकि बिल्कुल उलटा सिखाया जा रहा है। सारी सिखावन उलटी है।
डंक निहायत जहरीले हैं मजहब और सियासत के
नागों की नगरी के वासी की फुंकार तो देख
सुख की गरदन काट रही है दुनिया की तलवार तो देख
जिस तलवार को चूम रहा है उस तलवार की धार तो देख
धर्म और सियासत--राजनीति और धर्म--दोनों के डंक बड़े जहरीले हैं। राजनीति सिखाती है, मर मिटो देश के लिए, मर मिटो समाज के लिए। धर्म सिखाता है, इस्लाम खतरे में है, हिंदू-धर्म खतरे में है, मर मिटो। सभी सिखाते हैं, मर मिटो। कोई कहता नहीं, जीओ भी। मरने के पहले जी तो लो। मरोगे क्या खाक, मरे हुए हो। जीवन तो चाहिए। सब उत्सुक हैं तुम्हारे मरने में। तुमने कभी

सुना, कोई तुमसे कहता है, जीओ धर्म के लिए? मेरे सिवाय कोई नहीं कहता। जीओ राष्ट्र के लिए। जीओ मनुष्यता के लिए। जीओ भगवान के लिए।
नहीं, वे सब कहते हैं, मरो। खतरा है भगवान पर। यह भी कोई भगवान हुआ, जिस
पर खतरा है और तुम्हें मरना पड़ रहा है! ऐसे भगवान को ही मरने दो। कहते हैं, राष्ट्र के लिए मरो। राष्ट्र है क्या बला? आदमी है। आदमियों का जोड़ है। जोड़ के लिए कोई मरने का सवाल है! राष्ट्र है कहां? व्यक्ति हैं। बस असलियत तो व्यक्ति की है, राष्ट्र तो झूठ है। राजनीतिज्ञ का झूठ है। कहीं तुम राष्ट्र से मिले? तस्वीरें तुमने देखी होंगी भारतमाता की। रथ पर सवार है, शेर-सिंह जुते हैं, हिंदुस्तान का नक्शा बना है। मगर कभी मिलना हुआ भारतमाता से? माताएं मिलती हैं, भारतमाता कहीं नहीं मिलती। झूठ है। राजनीति का झूठ है। और ऐसे ही धर्म के झूठ हैं। मंदिर का भगवान है, मस्जिद का खुदा है, खतरे आ जाते हैं--मरो!
तुम्हें सब सिखाया है लोगों ने मरने के लिए। कुर्बान हो जाओ। पर कुर्बान हो जाओ? जीवन सिर्फ कुर्बानी के लिए है?
नहीं, जीवन है जीवन के रस को जानने के लिए। जागो और जीओ। और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम जागकर जीए, तो तुम्हारे जीवन में तो फूल होंगे ही, तुम्हारी मृत्यु में भी फूल होंगे। क्योंकि मृत्यु तो वही प्रगट करती है जो जीवनभर तुम इकट्ठा करते हो।
"दूसरों के बहुत हित के लिए भी स्वयं के हित की हानि न करे। अपने अर्थ
की बात को समझकर अपने ही अर्थ के साधन में लग जाए।"
तुम अपने को पा लो, वह तुम्हारी पहली संपदा है। फिर और संपदाएं आएंगी पीछे, छाया की तरह। तुम आत्मा को खोज लो, फिर सब खोजने के द्वार खुल जाएंगे। इस एक को जान लेने से सब जान लिया जाता है। इस एक को पा लेने से सब पा लिया जाता है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
उनसठवां प्रवचन

गुरु को द्वार बनाना दीवार नहीं

पहला प्रश्नः आपको मैं क्या कहूं--प्रभु कहूं, विभु कहूं या शंभु कहूं? यह भी इसलिए कि सतत मैं आपके चरणों में नमूं। बस वहां ही मैं त्रिकाल तक नमूं। अब तो मेरी प्रार्थना सुनें!

कहने की बहुत बात नहीं है। क्या तुम मुझे कहते हो, अप्रासंगिक है। मेरे निकट क्या तुम स्वयं को समझ लेते हो, वही महत्वपूर्ण है।
तुम मुझे अच्छे-अच्छे नाम दो, उससे कुछ लाभ न होगा। तुम स्वयं को पहचानो, उससे ही कुछ होने वाला है। मेरी स्तुति से नहीं कुछ, आत्मस्मरण से कुछ होगा। स्तुति में समय खराब मत करो। कितनी तो तुम स्तुति कर चुके, कितने द्वारों पर! कितने मंदिर-मस्जिदों में तुमने प्रार्थना नहीं की, नमाज नहीं पढ़े, झुके नहीं! क्या पाया? हाथ खाली के खाली हैं। अब भीतर झुको। अब जो तुम्हारे भीतर सोया है, उसे जगाओ। अब असली मंदिर में प्रवेश करो। मुझे क्या कहो, इसकी क्या चिंता करनी! कुछ भी कह लो। बिना नाम के भी चल जाएगा।
अपनी तलाश करो। मैं कौन हूं, इसकी फिक्र नहीं, तुम कौन हो। अगर तुम स्वयं को जानो तो ही मुझे जान सकोगे। तुम्हारे उस आत्मबोध में ही मुझसे तुम्हारा सेतु बनेगा।
लेकिन अक्सर आदमी की नजरें दूसरे पर जाती हैं। प्रेम भी तुमने किसी
से किया, प्रार्थना भी किसी से करते हो। कब अपने पर लौटोगे? ये बुद्ध के सारे वचन जिन पर हम चर्चा कर रहे हैं, तुम्हें स्वयं पर लौटा देने की चेष्टा है। नहीं तो अक्सर ऐसा हुआ है कि खोजने वाला पहले तो खुद के कारण भटका, फिर जिनके सहारे पकड़ लिए, उनके कारण भटका। तुम किसी का भी सहारा पकड़ो, भटकोगे। क्योंकि दूसरे का सहारा पकड़ने का अर्थ ही यह है कि तुम जागने से बचना चाहते हो। तुम किसी और पर टालना चाहते हो। यह जीवन की संपदा ऐसी नहीं कि कोई और तुम्हें दे देगा।
इसलिए बुद्ध बार-बार कहते हैं, कोई और तुम्हें न जगा सकेगा, तुम्हीं
को जागना होगा। तुमने दूसरों से काम लेना सीख लिया है। लेकिन एक काम ऐसा है जो तुम दूसरों से न ले सकोगे। वह काम है आत्म-जागरण का। वह है सत्य-साक्षात का। नहीं तो तुम बदलते रहोगे द्वार। एक द्वार पर न पाओगे, सोचोगे यहां कुछ भी नहीं।
मेरे पास लोग आते हैं। एक बूढ़े सज्जन आए। उन्होंने कहा, शिवानंद के आश्रम में था, कुछ न पाया। फिर अरविंद आश्रम में था, कुछ न पाया। फिर श्री रमण आश्रम में था, कुछ न पाया। अब आपके चरणों में आया हूं। मैंने कह, तुम जल्दी जाओ, इसके पहले कि तुम कुछ न फिर पाओ। तुम जल्दी करो, यहां से जाओ, अन्यथा तुम दूसरों से जाकर कहोगे--वहां भी हो आया, कुछ न पाया। तुम तो कुछ इस ढंग से बात कर रहे हो जैसे कुछ शिवानंद का कसूर है कि तुमने कुछ न पाया; कि जैसे अरविंद का कोई कसूर है कि तुमने कुछ न पाया। तुम चाहते क्या थे, कोई तुम्हें दे दे उठाकर सत्य? सत्य कोई वस्तु है? कोई तुम्हें दे दे, सत्य कुछ बाहर है? कि रमण आश्रम हो आया, कुछ न पाया। तुम कह क्या रहे हो? तुम कह रहे हो कि ये सब जगह व्यर्थ हैं, ढकोसला हैं। अपनी तरफ देखो। इतनी जगह हो आए, इतने घाट घूमे और प्यासे के प्यासे रह गए। अपनी तरफ देखो। तुमने शायद पीने का ढंग ही न जाना।
सरोवर के पास पहुंच जाने से थोड़े ही प्यास बुझती है। कहावत है--घोड़े
को नदी ले जाया जा सकता है, पानी थोड़े ही पिलाया जा सकता है। नदी दिखायी जा सकती है, प्यास होगी तो पी लेगा। नहीं होगी प्यास तो लौट आएगा। इसलिए जो लोग घोड़ा रखते हैं, उनके नौकर जानते हैं भाषा। भाषा यह है--घोड़े को जाओ पानी दिखा लाओ। पिलाने की कोई नहीं कहता। कौन पिलाएगा पानी? दिखा लाओ। प्यास होगी तो घोड़ा पी लेगा। तुम इतनी जगह पानी देख आए और पीया न। प्यास ही

झूठी मालूम पड़ती है। और या फिर तुम गलत तलाश में निकले थे। तुम सोचते थे, किसी और की जिम्मेवारी है।
मेरे पास साफ कर लो बात। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। तुम्हें पाना होगा। मेरी उपस्थिति का लाभ ले सकते हो, लेकिन मेरी उपस्थिति की स्तुति करने की कोई जरूरत नहीं है। मेरी स्तुति से कुछ लाभ न होगा, समय व्यय होगा। परमात्मा भीतर छिपा है। मुझे तुम्हें क्या फायदा है कहने से? प्रभु कहो, विभु कहो, शंभु कहो, जो कहना हो कहो। न कहना हो, मत कहो। प्रभु भीतर छिपा है। मेरे इशारों को देखो। मेरी चिंता मत करो। मैं क्या कह रहा हूं, किस तरफ इशारा कर रहा हूं, उसको पहचानो। मेरे पीछे चलने से तुम मेरे अनुयायी न बनोगे, अपने भीतर उतरोगे तो मेरे अनुयायी हो। और अनुयायी कहने का तब कोई अर्थ नहीं रह जाता। ये सारे इशारे तुम्हारी तरफ हैं। कहीं ऐसा न हो किसी दिन तुम्हें रोना पड़े, कहना पड़े--
पाए-तलब भी तेज था मंजिल भी थी करीब
लेकिन निजात पा न सके रहनुमां से हम
पांवों की ताकत भी तीव्र थी। चलने की क्षमता भी काफी थी।
पाए-तलब भी तेज था मंजिल भी थी करीब
और मंजिल भी सामने खड़ी थी। लेकिन मुश्किल यह हो गयी--
लेकिन निजात पा न सके रहनुमां से हम
लेकिन पथ-प्रदर्शक से मुक्त होना मुश्किल हो गया।
गुरु द्वार बने, दीवार न हो जाए। तुम्हें मुझ पर रुक नहीं जाना है, यह तुम क्या पागलपन की बात कर रहे हो कि त्रिकाल बस आपको ही नमता रहूं? तुम मुझे भी मुसीबत में डालोगे। त्रिकाल, कुछ सोचो तो! तुम मुझे भी अटकाओगे? त्रिकाल तक तुम नमोगे, तो मुझे भी वहीं खड़ा रहना पड़ेगा। ऐसे ही तुमने पत्थरों के भगवान बना लिए हैं। क्योंकि जिंदा भगवान तीन काल तक खड़ा न रहेगा तुम्हारे लिए। तुम्हारी कसरत से जिंदा को क्या प्रयोजन! इसलिए तुमने पत्थर की मूर्तियां गढ़ ली हैं। उनका भगवान से कुछ संबंध नहीं। तुम्हें मजा लेना है झुकने-उठने का। उठते रहो, झुकते रहो।
यह त्रिकाल की बात ही क्यों उठती है? ऐसा लगता है, इस क्षण झुक नहीं पा रहे। तो फिर तीन काल भी काफी न होंगे। क्योंकि झुकने का संबंध समय से नहीं, झुकने का संबंध प्रतीति से है। झुकने का संबंध समय की लंबाई से नहीं है, समय की गहराई से है। एक क्षण में हो सकता है। एक पल में हो सकता है। दो पलों के बीच में जो थोड़ी सी जगह होती है, उसमें हो सकता है। झुकना तो भाव है। तीन काल! तुम सोचते हो कि तुम बड़ी ऊंची बात कह रहे हो। तुम यह कह रहे हो
कि इस क्षण में तो नहीं हो रहा है, अगले क्षण का भी भरोसा नहीं है--आज तो हो ही नहीं रहा है, कल भी होगा इसका पक्का नहीं, तीन काल का समय चाहिए, तब शायद! झुकना हो अभी झुक लो। और झुकना कोई शारीरिक क्रिया नहीं है। झुकना भीतर की अंतस-दशा है। और झुकना किसी के प्रति नहीं होता। जो किसी के प्रति है वह असली झुकना नहीं है। झुकना तो तुम्हारी समझ है। किसी के प्रति नहीं। क्योंकि अगर किसी के प्रति झुके तो तुम कारण से झुकोगे। कारण से झुके, तो तुम झुके ही नहीं।
समझने की कोशिश करो। किसी के पास बहुत धन था, तुम झुके। इससे सिर्फ इतना ही पता चलता है कि तुम्हारी आकांक्षा बहुत धन पाने की थी, जो तुम पूरी न कर पाए, इस आदमी ने पूरी कर ली, झुकते हो। तुम अपनी आकांक्षा की पूर्ति की संभावना के लिए झुकते हो। जो तुम न हो सके, यह हो गया--झुकते हो। चाहते तुम भी ऐसे होना थे।
किसी को बड़े पद पर देखा, झुके। यही तुम्हारे भीतर का भी रोग था। तुम भी चाहते थे सिंहासन पर विराजो, न विराज पाए। लेकिन इस आदमी ने पा लिया, झुकने योग्य है। किसी के पास बहुत ज्ञान देखा, झुके। किसी के पास बहुत त्याग देखा, झुके। लेकिन जब भी झुके, कारण से झुके।
जो कारण से झुका, वह झुका ही नहीं। क्योंकि अगर इतना ही धन तुम्हें मिल जाए, तो फिर तो तुम इस आदमी के आगे न झुकोगे। ऐसा ही पद तुम्हें मिल जाए, या इससे ऊंचा पद मिल जाए, फिर तो तुम न झुकोगे। तुम कहोगे, अब कारण ही न

रहा। इतना ही ज्ञान मिल जाए, इतना ही त्याग तुम्हारे जीवन में भी फल जाए, फिर तो न झुकोगे। तुम कहोगे, अब प्रयोजन ही न रहा।
तो मैं तुमसे कहता हूं, तब भी तुम झुके न थे। तब भी अहंकार गिरा न था।
उस झुकने में भी अहंकार ने अपने को सम्हाला था। उस झुकने में भी अहंकार ने आभूषण बनाए थे। अकारण झुको। तब सवाल नहीं कि मेरे प्रति झुको। राह चलते अजनबी के प्रति भी झुके हो, वृक्षों के प्रति भी झुके हो, पत्थरों के प्रति भी झुके हो, जिनके पास देने को कुछ भी नहीं, होने को कुछ भी नहीं। न धन है, न पद है, न प्रतिष्ठा है, न ज्ञान है, न त्याग है, न बुद्धत्व है, कुछ भी नहीं है। लेकिन अब तुम झुके हो। क्योंकि तुम्हें झुकने का मजा आ गया। अब तुम कारण से नहीं झुके हो, अब तुम रस से झुके हो। अब झुकना ही साध्य हो गया, साधन न रहा। अब कोई ऐसी घड़ी न आएगी जब तुम्हें न झुका हुआ पाया जा सके। अब तुमने झुकने की भीतरी कला सीख ली, बाहरी कारण न रहे, निमित्त न रहे।
इसलिए झुकने को किसी के प्रति मत बनाओ। झुकना हो, बस काफी है। नहीं तो मंदिर के सामने झुकोगे, तो मस्जिद के सामने अकड़कर निकलोगे। यह भी कोई झुकना हुआ! मेरे सामने झुकोगे तो किसी दूसरे के सामने अकड़कर निकलोगे। बदला कहीं ले लोगे तुम।
इसलिए तो मंदिर के सामने जो झुकता है, मस्जिद के सामने अकड़कर निकलता है। वह यह कह रहा है, अब बहुत हो गया है झुकना, झुकना, अब यहां तो अकड़ लें। जो मस्जिद में झुकता है, वह मंदिर के सामने अकड़कर निकलता है। बदला तुम मंदिर से लेते हो मस्जिद का? अगर तुम झुके ही होते तो क्या मंदिर! क्या मस्जिद! क्या गुरुद्वारा! तुम झुके ही होते।
दुआ के वास्ते अब अर्श हाथ उठते नहीं अपने
तबीयत महवे-तस्लीम-ओ-रजा मालूम होती है
अर्श की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं। अब प्रार्थना के लिए तक हाथ नहीं उठते। उपासना में ऐसी मग्नता छा गयी है। याद ही नहीं रहती हाथ उठाने की बात। झुकने की याद नहीं रहती, ऐसे झुके हो। उपासना में ऐसे मग्न हो! दुआ के वास्ते अब अर्श हाथ उठते नहीं अपने
तबीयत महवे-तस्लीम-ओ-रजा मालूम होती है
तबीयत ऐसी डूब गयी है उपासना में, प्रार्थना में, किसे याद कब हाथ उठाना, कब फूल चढ़ाना, कब कुमकुम लगाना, किसे याद? झुके तो झुके।
झुकने की बात बाहर की नहीं है। भीतर की है। अंतर्भाव की है। तुम पूछते हो, तीन काल तक झुका रहूं। तुम तो मुसीबत में पड़ोगे, मुझे भी डाल दोगे। तुम्हें झुकना हो झुको, मुझे तो बख्शो!
"इसलिए कि मैं सतत आपके चरणों में नमूं।"
डर क्या है? सतत क्यों बनाना चाहते हो? यह क्षण काफी नहीं? इस क्षण का निपटारा इसमें कर लो। आने वाला क्षण आने वाले क्षण की फिकर कर लेगा। तुम कल का हिसाब क्यों रखते हो? तुम्हारा आज जरूर दीन-दरिद्र होगा। कल की बात ही तब उठती है, जब तुम आज प्रसन्न नहीं हो।
इसे खोजो, तलाशो। जब कोई प्रसन्न होता है, सुख से भरा होता है, कल की बात ही नहीं उठाता। न बीते कल की उठाता है, न आने वाले कल की उठाता है। दोनों गए। दोनों गिरे उसकी नजर से। आज इतना भरा-पूरा है, ऐसे कमल खिले हैं प्राणों में, ऐसा नाच उठा है, ऐसे नृत्य की घड़ी आयी, कौन फिकर करता है कल थे भी कि नहीं, कल होंगे भी कि नहीं! आज होना इतना गहन है, इतना परिपूर्ण है, इतना तृप्तिदायी है, ऐसा गहन परितोष छा रहा है, कौन फिकर करता है!
दुख में याद आती है बीते कल की, आने वाले कल की। बीते कल की, क्योंकि लगता है बहुत सुख थे कल, जो आज न रहे। आने वाले कल की, आशा बंधाते हो अपने को कि कोई फिकर नहीं, आज नहीं कल हो जाएगा। ये सब दुख के सोचने के ढंग हैं। अपने भीतर ही खोजो, सुख के क्षण में समय खो जाता है। दुख के क्षण में समय घना हो जाता है।
सतत! किसलिए पूछते हो? यह क्षण पर्याप्त नहीं? आज का मिलना काफी नहीं?
आज तुम मेरे पास हो, इससे तृप्ति नहीं? इससे पूरा मन नहीं भरता? तो फिर तुम कहीं चूक रहे हो मुझसे, क्योंकि मैं तो पूरा-पूरा उपलब्ध हूं, यहीं। मेरी तरफ से जरा भी कंजूसी नहीं है। तुम ही अपने पात्र को बचा रहे हो। मैं तो

बरस रहा हूं, तुम अपना पात्र उलटा रखे बैठे हो। और कहते हो, सतत बरसते रहना। सतत भी क्या होगा, जो इस क्षण में नहीं होगा वह आने वाले क्षण में कैसे होगा? जो आज नहीं होगा, वह कल कैसे होगा? जैसे तुम आज चूके हो, वैसे ही तुम कल चूकोगे। चूकना तुम्हारी आदत हो गयी है।
तुम बुद्धों से चूके, महावीरों से चूके, कृष्णों से चूके। तुम चूकते
ही रहे हो। तुम कोई नए नहीं हो। तुम कुछ मुझे सुन रहे हो, ऐसा नहीं है। ऐसे ही तुम बुद्ध के पास भी बैठे रहे, ऐसे ही सोए-सोए। ऐसे ही उलटा पात्र रखे। ऐसे ही तुमने महावीर के पास भी समय गुजारा। ऐसे तुम जन्मों-जन्मों से यात्रा कर रहे हो। अभी भी तुम कहते हो, सतत। मन भरा नहीं? इतने भटकने के बाद और भटकने का मन है? इसी क्षण को पूरा हो जाने दो। इसी क्षण की बात करो। क्षण से बाहर मत जाओ। क्षण के बाहर गए, उलझन खड़ी हुई। इसी क्षण को सुलझा लो। फिर इसी सुलझाव से और सुलझाव भी निकलते आएंगे।
"अब तो सुनो प्रार्थना मेरी!"
प्रार्थना किसी को सुनाने के लिए थोड़े ही है। किसी को सुनाने गए तो झूठ हो जाएगी। कठिन होगा तुम्हें सोचकर कि यह मैं क्या कह रहा हूं-- प्रार्थना किसी को सुनाने के लिए नहीं है। यह तो अत्यंत एकांत में गुनगुनाने के लिए है।
इसीलिए तो बुद्ध ने परमात्मा भी छीन लिया, नहीं तो तुम किसी न किसी को सुनाते ही रहोगे। और जब तुम सुनाने चलते हो, तब अतिशयोक्ति हो ही जाती है। जब तुम किसी को बताने चलते हो, तो जो नहीं होता वह भी बता देते हो, बढ़ा-चढ़ा कर बता देते हो। आदमी का स्वभाव ऐसा है। चिंदी का सांप हो जाता है।
तुम जरा अपने को पकड़ो, जब तुम लोगों को सुनाने लगते हो तो कितना बढ़ा रहे हो, कितना जोड़ रहे हो, कितना मिर्च-मसाला डाल दिया? बढ़ती चली जाती हैं बातें। लोग एक-दूसरे को सुनाते चले जाते हैं। लेकिन यह दूसरे को सुनाने के मोह में झूठ हो जाता है।
प्रार्थना तो सच्ची होनी चाहिए, किसी को सुनानी नहीं है। इन पक्षियों
के गीत जैसी होनी चाहिए। अपने आनंद से गुनगुना रहे हैं। प्रदर्शन नहीं है कोई। न किसी की फरमाइश है। न आकांक्षा है, कोई सुने। सुन ले मौज उसकी। पक्षियों को कोई प्रयोजन नहीं है।
इन फूलों को देखो, वृक्षों पर खिले हैं। किसके लिए खिले हैं? अपने लिए खिले हैं। किसी की राह नहीं देख रहे हैं कि कोई निकले किनारे से और गंध से आंदोलित हो जाए। कोई निकले ठीक, कोई न निकले ठीक, वृक्षों को पता ही नहीं चलता। कोई आए ठीक, कोई न आए ठीक। निर्जन में भी वृक्ष ऐसे ही खिलते हैं, जहां से कोई भी नहीं निकलता।
तुम्हारी प्रार्थना भी ऐसी ही होनी चाहिए। किसी को सुनाने के लिए नहीं। प्रार्थना तो तुम्हारे आनंद की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। और मांग तो प्रार्थना में रखना ही मत, अन्यथा प्रार्थना मर गयी। मांग छाती पर बैठी प्रार्थना की कि प्रार्थना मरी। इतना दिया है, उसके लिए धन्यवाद दो, मांगो मत।
लेकिन प्रार्थना में भिखारी खड़ा ही रहता है। प्रार्थना में प्रार्थी बना ही रहता है। प्रार्थी को हटाओ, अन्यथा प्रार्थना की दम घुट जाएगी। प्रार्थना दो ढंग से हो सकती है--अहोभाव की, धन्यवाद की; मांग की। मांगने की प्रार्थना गंदी हो जाती है। तुम कुछ भी मांगो, तुम्हारी मांग तुमसे बड़ी न होगी। तुम परमात्मा भी मांगो, तो भी तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी धारणा का परमात्मा होगा।
अगर तुम असीम को चाहते हो तो मांगो ही मत। मांग को हटा लो, क्योंकि तुम्हारी मांग सीमा ही बनाएगी। तुम कितना ही सोचोगे, सीमा ही बनेगी। तुम बड़े से बड़ा भी मांगोगे तो छोटा ही रहेगा। तुम बड़ा मांग ही नहीं सकते। मांग बड़े की हो ही नहीं सकती। मांगते ही चीजें छोटी हो जाती हैं।
खू-ए-वफा मिली दिल-ए-दर्द-आशना मिला
क्या रह गया है और जो मांगें खुदा से हम
खू-ए-वफा मिली
प्रेम निभाने की आदत मिली।

दिल-ए-दर्द-आशना मिला
पीड़ाओं से परिचित होने की क्षमता मिली हृदय को।
क्या रह गया है और जो मांगें खुदा से हम
अब और मांगने को क्या बचा? प्रेम की क्षमता मिली, पीड़ा की क्षमता मिली,
सब मिल गया। पीड़ा निखारेगी, पीड़ा गलत को काटेगी, पीड़ा व्यर्थ को जलाएगी, प्रेम सार्थक को उभारेगा, जगाएगा, बस हो गयी बात।
पीड़ा यानी जो व्यर्थ है वह कट जाएगा। प्रेम यानी जो सार्थक है वह बच जाएगा और खिलेगा; खिलेगा, फूलेगा, हजार-हजार रंग-रूपों में प्रगट होगा। प्रेम मिला, पीड़ा मिली, अब और खुदा से मांगने को क्या रह गया?
जिन्होंने ठीक से प्रार्थना की, उन्होंने पाया, अरे! मुझ अपात्र को इतना दिया, अकारण दिया! वे धन्यवाद देने गए हैं मंदिर और मस्जिद, मांगने नहीं गए।
तुम जरा देखो भी, मैं तुम्हें क्या दे रहा हूं! तुम जरा अपने को जगाकर फिर से सोचो। तुम्हारे पात्र में क्या उंडेला है, जरा गौर तो करो। अमृत तुम्हें दे रहा हूं। तुम्हारे मांगे नहीं दे रहा हूं। तुम्हारी मांग के कारण तुम्हें न मिल रहा हो, यह हो सकता है। तुम्हारी मांग पात्र को गंदा कर रही हो और पात्र में पड़ा अमृत भी जहर हो जाता हो, यह हो सकता है। तुम जरा मांज डालो अपने पात्र को। मांग को हटा दो कि मांज लिया पात्र। मांगो मत। मिला ही हुआ है।
कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी प्रार्थनाएं तुम्हारी वासनाओं के ही छिपे रूप हों। कहीं ऐसा न हो कि तुमने प्रार्थनाओं के सुंदर-सुंदर शब्दों में कुरूप वासनाओं को ढांक लिया हो, छिपा लिया हो।
आदमी बड़ा बेईमान है। और आदमी बड़ा आत्मवंचक है। फिर से तुम उघाड़कर अपनी प्रार्थनाएं देखो। जरा प्रार्थनाओं के ढक्कन हटाओ, नीचे झांको, क्या भरा है वहां? भला तुम कहो या न कहो, अगर वह भीतर है तो है। और प्रार्थना को गलत कर जाएगा। प्रार्थना होनी चाहिए शुद्ध, सहजस्फूर्त, तुम्हारी सरल निर्दोषता से उठी हुई। एक धन्यवाद का भाव अस्तित्व के प्रति कि मुझ अपात्र को कितना दिया है! किस कारण दिया है! प्रार्थना में आश्चर्य होगा। तुम्हारी प्रार्थना में कभी आश्चर्य होता है? तुम्हारी प्रार्थना में तुम कुछ मांग रहे हो--धन, पद, प्रतिष्ठा। इससे किसी तरह छूटे, छूटे क्या, इसको किसी तरह छिपाया, तो तुम मांगने लगते हो--मोक्ष, समाधि, कैवल्य। मगर मांग जारी रहती है। जहां तक मांग है, वहां तक संसार है। जहां तुम्हारी मांग गिरती है, वहीं निर्वाण है। वहीं मोक्ष है।
बुद्ध ने हटा लिया परमात्मा को, न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। न रहेगा कोई जिससे तुम मांग सको, न तुम्हारी ये व्यर्थ की प्रार्थनाएं चलेंगी। धर्म को परमात्मा से मुक्त किया, ताकि धर्म मांग से मुक्त हो जाए। तुम अकेला अपने को पाओ।
इक फरेब-ए-आरजू साबित हुआ
जिसको जौक-ए-बंदगी समझा था मैं
आकांक्षा का धोखा सिद्ध होती है अक्सर, जिसको तुमने उपासना की अभिरुचि समझी है।
मंदिरों में जाते लोगों के हृदय में झांको, वे कुछ मांगने चले जा रहे हैं। बाजार में हार गए मांग-मांगकर, न मिला, अब मंदिर जा रहे हैं। आदमी से मांग-मांगकर हार गए, अब परमात्मा से मांगने जा रहे हैं। लेकिन मांगने जा रहे हैं। अभी मांग से नहीं छूटे। और जब तक तुम मांग से न छूटे, तब तक तुम्हें मंदिर की राह न मिलेगी। तब तक तुम कहीं भी जाओ, सब जगह तुम्हारा बाजार तुम्हारे साथ जाएगा। तुम्हारी मांग में ही तुम्हारा बाजार है। और तुम बाजार में भी मांग छोड़ दो, अचानक तुम पाओगे मंदिर वहीं आ गया। तुम जहां हो वहीं प्रगट हो गया।

दूसरा प्रश्नः ओशो! तेरी महफिल की रस्म निभाना हमको नहीं आता
अपने ही जिस्म की भस्म लगाना हमको नहीं आता
मरने का तौर सिखाने वाले ऐ ओशो सुन

मरने से पहले मर जाना हमको नहीं आता

तो सिखा लेंगे। अगर तुम्हें आता ही हो, तो ही मुश्किल होगी। न आता हो
और पता हो कि नहीं आता, तो सिखा लेंगे। आता हो, अगर सच में ही आता हो, तब तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। आने का सिर्फ ख्याल हो कि आता है और आता न हो, तो सिखाना मुश्किल हो जाएगा।
जिसने अपने अज्ञान को समझा, उसने ज्ञान को निमंत्रण दिया। जिसने कहा, नहीं आता, कोई अड़चन नहीं। उससे मेरा संग-साथ बन जाता है। किसको आता है मरना! जीना ही नहीं आता, मरना तो बड़ी दूर की बात है। जी रहे हो और जीना नहीं आता, मरना तो कैसे आएगा! मरना तो केवल उन्हीं को आता है जो जीना सीख लेते हैं, जो जीने को उसकी पराकाष्ठा में जी लेते हैं, जो जीवन को उसकी आत्यंतिक गहराई में जी लेते हैं। उनको मरना आता है। क्योंकि मरना जीवन की आखिरी ऊंचाई है। उसके पार फिर कोई शिखर नहीं। वह गौरीशंकर है जीवन का।
तुम साधारणतः सोचते हो, मृत्यु जीवन का अंत है, ऐसा नहीं। यह तो तुम्हें जीना नहीं आया, इसलिए सोचते हो। समझो। जिसे जीना नहीं आया वह मौत से डरता है। डरेगा ही। दया का पात्र है बेचारा। क्योंकि जिसे अभी जीना नहीं आया, वह देखता है कि मौत चली आती है पास, हम अभी जीए भी नहीं। अभी हम सोचते ही रहे--कहां आशियां बने कहां न बने, बहार खतम हुई। घबड़ाहट आती है। डर लगता है। यह तो पैर अभी जमे भी न थे। अभी जी भरकर पी न पाए थे कि यह तो मधुपात्र के टूटने का, छूटने का वक्त आ गया। अभी ओंठ से लगा ही पाए थे कि किसी ने झटक लिया। मौत दुश्मन मालूम होती है।
क्यों? क्योंकि मौत समय को छीन लेती है। और जीने के लिए समय की जरूरत थी। अभी तो जी न पाए थे। अभी कल की जरूरत थी। आज तो तुम जीते नहीं, कल जीते हो, मौत कल को समाप्त कर देती है। मौत कहती है, बस खतम हुआ मामला। आज बस आज। अब कल नहीं। अब और कल नहीं। मौत भविष्य को छीन लेती है। और तो कुछ नहीं छीनती।
तुम जरा सोचो, जीवन को नहीं छीनती मौत। जीवन तो जीया जा चुका, अब क्या मौत छीनेगी? जीवन तो अतीत हुआ। जीवन को तो छीन ही नहीं सकती जो अतीत हो गया। और जो वर्तमान है उसको तो मौत छीनेगी कैसे? वह तो आ ही गया। यहां मौजूद ही है। अब उसके न-होने का कोई उपाय नहीं। मौत सिर्फ भविष्य को छीन सकती है। जो आने वाला था, न आए।
सिकंदर मर रहा था। तो उसने कहा, सारा साम्राज्य दे दूंगा, थोड़ी देर मुझे बचा लिया जाए--चौबीस घंटे बचा लिया जाए। मुझे मेरी मां से मिलना है। पास आ गया था अपनी राजधानी के, लेकिन अभी भी फासला था चौबीस घंटे का। चिकित्सकों ने कहा, असंभव है। उसने कहा, आधा राज्य देता हूं, पूरा देता हूं। चिकित्सकों ने कहा, अब तुम कुछ भी दो, असंभव है। चौबीस घंटे तो बहुत, एक सांस भी हम न बढ़ा सकेंगे। भविष्य पर हमारा कोई बस नहीं।
सिकंदर रोने लगा और उसने कहा, अगर मुझे पता होता पहले, तो मैंने सांसें व्यर्थ न गंवायी होतीं। अगर एक सांस नहीं मिल सकती मेरे पूरे साम्राज्य से, और इसी साम्राज्य के लिए सब सांसें मैंने गंवा दीं, काश मुझे पहले पता होता!
लेकिन सिकंदर गलत कह रहा है। नहीं पता हो, ऐसा नहीं है। सारे शास्त्र यही दोहरा रहे हैं। एक धुन से यही दोहरा रहे हैं। सारे सदगुरु यही दोहरा रहे हैं, एक स्वर से यही दोहरा रहे हैं। सिकंदर ने न सुना हो, ऐसा नहीं है। सिकंदर को सत्संग की बड़ी रुझान थी। भारत भी आया तो संन्यासियों से मिला था। यूनान में भी अरस्तू का शिष्य था। सुकरात के शिष्य का शिष्य था। ज्ञानियों के पास बैठता था। न सुना हो, ऐसा नहीं है। लेकिन बहरा रहा होगा। सुने को अनसुना किया होगा, जैसा तुम कर रहे हो।
मौत भविष्य को छीनती है। और जो जीया नहीं, उसका सारा जीवन भविष्य में है। वह सोचता है, कल जीएंगे। आज गया, कोई हर्जा नहीं। हजार चिंताएं थीं, उन्हें सुलझाने में लगे थे, कल जीएंगे। सब चीजों से निवृत्त होकर कल जीएंगे। आज मकान बना लेते हैं, कल जीएंगे। आज पत्नी ले आते हैं, कल जीएंगे। आज धन कमा लेते हैं, कल जीएंगे। ऐसा आदमी कल पर टालता है जीवन को। आज

तैयारी करता है, जीने को कल पर टालता है। एक दिन मौत आती है--तैयारी तो कभी पूरी होती नहीं। हो नहीं सकती। आदमी का मन ऐसा है। कितना ही अच्छा मकान बनाओ, और अच्छा बनाया जा सकता है। कितनी ही सुंदर स्त्री ले आओ, कितना ही सुंदर पति खोज लो, और सुंदर खोजा जा सकता है।
मनुष्य की सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि मनुष्य के पास कल्पना है। कल्पना
के कारण वह श्रेष्ठतर का हमेशा सपना देख लेता है। सुंदरतम स्त्री-- क्लियोपैत्रा-- तुम्हें मिल जाए, तो भी तुम सोचोगे कि आंख थोड़ी और काली हो सकती थी। कि आंख थोड़ी और मछलियों जैसी हो सकती थी। कि चेहरा और थोड़ा गोरा हो सकता था, कि और थोड़ा सांवला हो सकता था। कि और सब तो ठीक है, लेकिन बाल मेघों की घटाओं जैसे नहीं। कि और सब तो ठीक है, नाक थोड़ी लंबी है, कि थोड़ी छोटी है। मनुष्य के पास कल्पना है। कल्पना के कारण वह श्रेष्ठतर की सदा ही चिंतना कर सकता है। तुम जाकर ताजमहल में भी भूल-चूकें खोज सकते हो। अक्सर लोग यही करते हैं। ताजमहल में जाकर भूल-चूकें खोजते हैं--कहां कमी रह गयी? कहां... ?
ऐसा तो आदमी खोजना मुश्किल है जिसके पास कल्पना न हो। कल्पना ही तो सताती है, परेशान करती है। कल्पना कहती है और थोड़ा सुधार लो, फिर भोग लेना; और थोड़ा सुधार लो, फिर भोग लेना। दस हजार हैं, दस लाख हो जाने दो फिर भोग लेना। दस हजार तो जल्दी चुक जाएंगे। दस लाख कर लो। जब तक दस लाख हो पाते हैं, कल्पना चार डिग आगे बढ़ जाती है। वह करोड़ों की बात करने लगती है। कल्पना तुम्हारे साथ ठहरती नहीं। कल्पना सदा उड़ी-उड़ी है, तुमसे सदा आगे है। इसलिए कल्पना तुम्हें कभी इस हालत में नहीं आने देती कि तुम कह सको, अब तैयार हूं, भोग लूं। इसके पहले कि कल्पना थके, मौत आ जाती है। कल्पना कभी थकती ही नहीं। जैसे मौत और कल्पना में होड़ लगी है। मौत अभी तक कल्पना को थका नहीं पायी।
जिसकी कल्पना को मौत ने थका दिया, वही बुद्ध हो गया। जिसने जान लिया
कि कल्पना से तो कभी भी पूर्ति होने वाली नहीं है, यह तो बढ़ती ही जाएगी, बढ़ती ही जाएगी। यह तो अमर-बेल है। बिना जड़ों के फैलती चली जाती है, फैलती चली जाती है। वृक्षों का रस सोख लेती है। खुद कुछ भी नहीं देती। चूस लेती है पूरे जीवन को। अमर-बेल है।
बड़ा प्यारा नाम दिया है बड़ी खतरनाक बेल को, अमर-बेल कहा है। अमर-बेल ठीक ही कहा है, क्योंकि मरती नहीं। वृक्ष मर जाते हैं, बेल नहीं मरती। एक वृक्ष मरता है, तब तक वह दूसरे वृक्ष पर सरक जाती है। वृक्षों से वृक्षों पर यात्रा करती रहती है, कभी मरती नहीं। उसके पास मरने का कोई कारण नहीं, क्योंकि जड़ें नहीं हैं। जड़ हो तो कोई चीज मरती है। जड़ सूख जाए, तो मर जाए। उसके पास जड़ नहीं है। बिना जड़ के है। हवा में चलती है। शोषण से जीती है। शोषण करने को यह वृक्ष नहीं होगा, दूसरा वृक्ष होगा। न उसमें पत्ते लगते, न फूल लगते, न फल लगते। बांझ है। कल्पना से बांझ तुमने कोई और चीज देखी? कुछ भी नहीं लगता। मगर लगने के सपने दिए चली जाती है।
जिस दिन तुम यह देख लोगे अमर-बेल है, उसी दिन तुम जागोगे। उस दिन तैयारी छोड़ोगे, तुम जीओगे। उस दिन तुम कहोगे कि आज तो जी लें, जितनी तैयारी है उतने से जी लें। माना कि आंगन टेढ़ा है, लेकिन कुछ नाच तो हो ही सकेगा। अब यह न कहें कि आंगन टेढ़ा है नाचें कैसे? चलो थोड़ा हम बच-बचकर नाच लेंगे, टेढ़ा सही। मगर नाच तो लें। क्योंकि आंगन कब होगा जब टेढ़ा न होगा? फिर नाचेंगे। तब गैर-टेढ़े आंगन में भी नाच लेंगे। लेकिन नाच तो लें। टेढ़े में सही।
भूख लगी है आज, रूखी-सूखी रोटी है, इसे तो आनंद से स्वीकार कर लें। अहोभाव से इसका भोजन कर लें। इसका तो खून बनने दें। फिर जब सजेंगे थाल तब... तब उन्हें भी स्वीकार कर लेंगे। कहीं ऐसा न हो कि रूखी-सूखी रोटी के अस्वीकार करने में तुम्हारी भूख ही मर जाए। ऐसा हुआ है। कहीं ऐसा न हो कि आंगन टेढ़ा है नाचें कैसे, तो जब तक आंगन सीधा हो तब तक तुम नाचना भूल जाओ, पैर टूट जाएं। और जिंदगीभर जो नाचा न हो वह कैसे नाचेगा!
ऐसे मैं लोगों को जानता हूं, जो कहते हैं, एक दफा कमा लें।

एक मेरे मित्र हैं। उन्होंने कहा, ठीक! जब पचपन साल का हो जाऊंगा--तब
तक कमा लूं--फिर शांति से जीयूंगा। तुम्हारी मौज, मैंने कहा। फिर वे पचपन के भी हो गए, काम-धंधा भी छोड़ दिया, मगर बड़े अशांत हो गए। कहने लगे मुझे आकर कि यह तो बड़ी उलटी हो गयी बात। मैं तो सोचता था, शांति से जीयूंगा।
मैंने कहा, पचपन साल का अशांति का अभ्यास, अब उससे छुटकारा कैसे पाओगे? आपा-धापी, दौड़-धूप, धन-दुकान-बाजार। होटल चलाते थे, बड़ी होटल थी। और होटल का उपद्रव! दिन-रात यात्रियों का आना-जाना! ठेठ बाजार में बैठे थे। अचानक पचपन साल के हुए, निर्णय के अनुसार छोड़ दिया--हिम्मत के आदमी हैं। लेकिन सालभर बाद वापस होटल में लौट जाना पड़ा। कहने लगे, मन नहीं लगता घर पर, होटल की याद आती है। और फिर यह भी कि घर में बैठकर कोई शांति भी नहीं मिलती, और अशांत हो गया। पत्नी से झंझट नहीं होती थी, झंझट होने लगी। झंझट होटल में ही हो जाती थी, घर निपटकर आते थे। अब घर ही बैठे हैं, झंझट की पुरानी आदत है।
पत्नी ने मुझे कहा, ये इस तरह व्यवहार करते हैं जैसे नौकर-चाकरों से। वही उनकी आदत है। जिंदगीभर होटल में नौकर-चाकरों के साथ जो व्यवहार किया, वही वे घर में करते हैं। पहले पत्नी को भी पता न चला था। थक-मांदे आते थे। अब वे घर में बैठे हैं, ताजे। पुराना उपद्रव सिर को घुमाता है, शांत न रह सके। पत्नी ने मुझे भी कहा कि आप इन्हें समझाओ कि किसी तरह ये वापस होटल जाएं। इनके पास बैठने में डर लगता है। कुछ भी बात करते हैं, तो झंझट निकाल लेते हैं। वापस लौट गए।
तुम जिंदगीभर तैयारी करोगे, तैयारी में तुम जिंदगी खो रहे हो। तैयारी चलने दो। तैयारी रोकने को मैं नहीं कहता। लेकिन जिंदगी के भोग को मत रोको। तैयारी के लिए मत रोको। साथ-साथ चलने दो। ताकि अगर कभी तैयारी पूरी हो जाए, तो तुम भोग सको। न तैयारी पूरी हो, तो मौत आए तो तुम्हें मौत के सामने हाथ जोड़कर खड़ा न होना पड़े, तुम कह सको कि भोग लिया है, कुछ तैयारी के लिए रुका न था; तैयार हूं, ले चलो।
जीवन को जीना तो पहली बात है। जिसने वह कला सीखी, वह मौत से नहीं डरता।
और जिसने जीवन को ठीक से जीया, वह अचानक पाता है कि जब भी जीवन में सौंदर्य का, सत्य का, आनंद का, शांति का शिखर आता है, तो एक तरह की मौत घटती है। हर गहरा अनुभव मौत का अनुभव है।
अगर तुमने किसी को प्रेम किया और गहरा प्रेम किया, तो तुम प्रेम की आखिरी गहराई में पाओगे एक तरह की मौत। तुम जो थे, मर गए। नया हो आया। नया जन्म हुआ। हर प्रेम नया जन्म है। तुमने अगर ध्यान लगाया, ध्यान की गहराई पायी, हर ध्यान नया जन्म है। ध्यान के बाद तुम पाओगे, जो गया था ध्यान में, वह लौटा नहीं। यह तो कोई और आ रहा है। यह तो अपरिचित। इससे तो कोई पहचान नहीं। यह तो अजनबी। मगर बड़ा नया और बड़ा ताजा और बड़ा क्वांरा। गयी धूल। हट गया पुराना उपद्रव। अतीत का जाल, कूड़ा-करकट, सब बह गया। अगर तुमने चित्र बनाया और डूबे चित्र के बनाने में, तो भी यही होगा।
इसलिए कवि, चित्रकार, मूर्तिकार रोज-रोज नए हो जाते हैं। दुकानदार पुराना पड़ता जाता है। जो भी सृजनात्मक किसी कर्म में लगे हैं, जिनकी जीवन-ऊर्जा सर्जना बन रही है, वे रोज-रोज नए होते जाते हैं। क्योंकि रोज-रोज मरते हैं। सृजन का अर्थ ही रोज-रोज पल-पल मरना है। ताकि जीवन नया होता जाए। कभी पुराना न हो, कभी बासा न हो।
अगर जीवन को तुमने ठीक से जीया तो तुम बहुत बार जीवन के बीच पाओगे, मौत घटती है। तब मौत अपरिचित नहीं रह जाती। फिर भय क्या? और मौत जब भी घटती है तब इतना अपूर्व, अभिनव, अनुपम जीवन दे जाती है! फिर मौत से डरना क्या? फिर तो तुम उलटे प्रतीक्षा करते हो। तुम राह देखते हो कि कब बड़ी मौत आएगी, कब महामृत्यु आएगी, और कब सब कूड़ा-करकट बहा ले जाएगी। सब शैवाल बह जाएगा, नदी पूरी स्वच्छ होगी। अतीत से बिल्कुल जड़-मूल से तोड़ देगी। जिसने जीवन को जीया, वह मरने की कला भी जीवन के जीने में ही सीख लेता है।
कहते हो, "मरने से पहले मर जाना हमको नहीं आता।"
आ जाएगा। जरा साहस करे रहो, रुके रहो मेरे पास, आ जाएगा। मगर सूत्र है-- जीवन को जीना।

आखिरी जब मौत आती है, तब बहुतों को, जिन्होंने होश से, थोड़ी समझपूर्वक मरने की कला जानी है, जो थोड़ा सा जागे-जागे मरे, वे बहुत पछताते हैं।
मौत ने आसरा दिया भी तो कब
जब मुसीबत के दिन गुजार आए
तब उन्हें पता लगता है, अरे! इस मौत को हमने काश पहले ही थोड़ा बुला लिया होता। इसकी थोड़ी आतिथ्य, आवभगत की होती।
मौत ने आसरा दिया भी तो कब
जब मुसीबत के दिन गुजार आए
जब जवान थे तभी इसे बुलाया होता, तो जवानी में निखार आ जाता। जब प्रेम में थे तब इसे बुलाया होता, तो प्रेम में गहराई आ जाती। अगर यह मौत तुमने पुकारी होती संभोग के क्षण में, तो संभोग समाधि बन जाता।
मौत तुम्हें पुनर्जन्म देती है। फिर तुम्हें बार-बार छोटा बच्चा बनाती है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, प्रतिपल मरो। टालो मत। मौत को इकट्ठा सत्तर साल के बाद मत टालो, रोज-रोज उपयोग कर लो। मौत उपलब्ध है, तुम भागे हो उससे, बच रहे हो उससे। मौत से भागने के कारण बहुत सी चीजें असंभव हो गयीं। आदमी ठीक से सो नहीं पाता, क्योंकि सोना भी छोटी सी मौत है।
तुम देखो, पूरब में लोग ज्यादा गहरी नींद सोते हैं बजाय पश्चिम के। कारण, पूरब में लोगों को ख्याल है, जन्मों के बाद फिर और जन्म हैं, फिर और जन्म हैं। लेकिन पश्चिम में ख्याल है, बस एक ही जन्म है। मेरी समझ है कि जब तक पश्चिम में पुनर्जन्म की धारणा फैलती नहीं, तब तक लोग ठीक से न सो सकेंगे। क्योंकि नींद एक मौत है।
मैं एक आदमी को जानता हूं, जो बड़ी लंबी बीमारी से पीड़ित थे। बाद-बाद में वे सोने से डरने लगे। मैं उन्हें देखने गया था। मैंने पूछा कि यह क्या मामला है? तुम्हारे घर के लोग शिकायत करते हैं कि तुम सोने से डरने लगे। वे कहने लगे कि कहीं सोते-सोते मर न जाऊं! तो मैं जागा रहना चाहता हूं। तुमने देखा, किसी को सांप काट ले तो चिकित्सक उसे सोने नहीं देते। जगाए रखते हैं। चलाते हैं। क्योंकि अगर वह सो जाए तो फिर शायद वापस न जग सके। जहर और नींद का मेल हो जाए, तो शायद जग न सके, मौत घट जाए। उसे चलाते हैं। उसे जगाए रखते हैं। उसे हिलाते-डुलाते हैं। अगर चौबीस घंटे वह जागा रहे, तो जहर उसके शरीर से बाहर हो जाए। फिर कोई खतरा नहीं। जहर भीतर हो और नींद आ जाए, तो नींद मौत बन जाए।
जिन देशों में धारणा है कि एक ही जीवन है, फिर कोई जीवन नहीं, उन देशों में नींद खोती जा रही है।
कभी-कभी इन चीजों पर सोचा करो, ध्यान किया करो। जिन देशों में यह धारणा है कि एक ही जीवन है, वहां से प्रेम समाप्त हो गया। क्योंकि प्रेम में भी मौत घटती है। इसलिए पश्चिम में प्रेम समाप्त हो गया, विवाह बरबाद हो गया, घर उजड़ गया। प्रेम के लिए मरने की हिम्मत चाहिए। प्रेम में मरने की हिम्मत चाहिए। जिनका एक ही जीवन है, इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाते। घबड़ा गए हैं।
पश्चिम से ध्यान खो गया, समाधि के सूत्र खो गए। कारण? मौत का डर बड़ा हो गया। जब एक ही बार जीवन है, तो मौत बड़ी बहुमूल्य हो गयी कि एक दफा मरे कि मरे, सदा के लिए मरे, अनंत काल के लिए मरे। पूरब में ऐसी घबड़ाहट नहीं है। लोग कहते हैं, कोई हर्जा नहीं, अभी मरे, फिर पैदा हो जाएंगे। होते रहे हैं, होते रहेंगे। आते रहे हैं, आते रहेंगे। यह तो जीवन-चक्र है, घूमता रहता है। यह धारणा तुम्हें तनाव से नहीं भरती। पूरब में लोग गहरी नींद भी सोते हैं, प्रेम में भी डुबकी लगा लेते हैं, कभी-कभी समाधि के शिखरों पर भी चढ़ जाते हैं।
लुत्फ जो बेखुदी में था वो कहां
होश में आके हमने देख लिया
जरा बचपन की याद तो करो। भूल ही गए बिल्कुल। कैसा मजा था बेखुदी में!
जब तुम्हें अपनी याद भी न थी। जब अहंकार जगा न था। जब यह भी पता न था कि क्या जीवन है और क्या मौत है। जब हीरे और कंकड़-पत्थरों में कोई फर्क न था। जब तितलियों के पीछे दौड़ जाते थे। जब कंकड़-पत्थर रंगीन घर भर लाते थे। जब

ओस की बूंदों में मोती दिखायी पड़ते थे। और जब हर चीज चमत्कृत करती थी, और हर चीज आश्चर्य से भर जाती थी। जरा याद तो करो।
अगर मरने की कला तुम सीख लो, तुम रोज सुबह पाओगे कि फिर तुम बच्चे हुए, फिर तितलियों ने पुकारा, फिर ओस ने आवाज दी, फिर चारों तरफ मोती बिखरे, फिर चांद-तारे रहस्यपूर्ण हो गए। क्या अर्थ होता है बचपन का? बचपन का अर्थ होता है, अबोध। जिसे अभी अहं-बोध नहीं हुआ। जिसने रोज-रोज मरने की कला सीख ली, उसने रोज-रोज बचपन को पाने का रस पा लिया। द्वार पा लिया।
लुत्फ जो बेखुदी में था वो कहां
होश में आके हमने देख लिया
पूछते हो, "मरने से पहले हम से मरा न जाएगा।"
मरकर मरे, तो कौन सी कला होगी! मरकर तो सभी मर जाते हैं। कुत्ते-बिल्ली
भी मर जाते हैं, आदमी भी मर जाते हैं। मरकर ही मरे, जब मौत ने मारा तब मरे, तब तुम्हारी क्या कुशलता होगी? तब तुम्हारा क्या मूल्य होगा?
अति महाबली वह भीम, सुना जाता जिसमें
था साठ हजार हाथियों का बल मूर्तिमान
वह लकड़ी एक न निज छाती से उठा सका
जब हुआ चिता पर उसके बल का इम्तिहान
आखिरी परीक्षा तो वहां होगी ही। लकड़ी की चिता पर जब चढ़ोगे, आग में जब उतरोगे फिर क्या करोगे? फिर तो बच न सकोगे। फिर तो बड़ी बिना इच्छा के मरना होगा। बड़ी जबर्दस्ती होगी। उसी जबर्दस्ती के कारण तो मौत भयानक मालूम होने लगती है। और जब मौत भयानक हो जाती है, तो सब चीजें भयानक हो जाती हैं। तब जिंदगी भी भयानक हो जाती है, क्योंकि जिस जिंदगी से अंततः मौत आती है, वह जिंदगी कैसे भयानक न होगी?
एक आदमी मेरे पास आया। वह कहने लगा, बड़ा डर लगता है मुझे। खासकर अंधेरे में बहुत डर लगता है। रात को जब भांय-भांय होने लगती है, तो मुझे बहुत डर लगता है। मैंने कहा, भांय-भांय? सांय-सांय सुना है। फिर मैंने सोचा... । नहीं, वह आदमी बोला, मुझे भांय-भांय। सांय-सांय, मैंने उससे कहा, तुझे सुनायी पड़ता है कि भांय-भांय? उसने कहा, भांय-भांय। तो मैंने कहा, जरूर भय और सांय-सांय दोनों मिल गए हैं। भय और सांय मिल गया, तो भांय।
अगर तुम्हें रात के सन्नाटे में रस आए तो सांय-सांय सुनायी पड़ेगी। सांय-सांय का अर्थ ही संगीतपूर्ण है। सन्नाटा भी सन-सन की आवाज से बना। वह आवाज बाहर की नहीं है। वह तुम्हारे भीतर जब सब कोलाहल बंद हो जाता है, तुम्हारे भीतर की है। उसको जिन्होंने जाना है, उन्होंने उसे ओंकार कहा है। जानने वालों ने सांय-सांय को ओंकार कहा है। अनाहत नाद कहा है। वह शून्य की आवाज है। शून्य का संगीत है। नीरव स्वर है। लेकिन जो घबड़ा गए, उनको भांय-भांय मालूम होती है। जो ओंकार हो सकता था, वह भांय-भांय हो जाता है।
तुम्हारी दृष्टि पर सब निर्भर है। अगर तुम मौत से डरे हो तो तुम जिंदगी से भी डरे रहोगे, क्योंकि जिंदगी ही आखिर मौत ले आती है। यह जिंदगी की सीढ़ी है जो मौत पर ले जाती है। यह जिंदगी का रास्ता ही है जो मरघट पर पहुंचा देता है। तुम कैसे जिंदगी को प्यार कर सकोगे? तुम कैसे जिंदगी को आलिंगन कर सकोगे? तुम कैसे नाच सकोगे जिंदगी के साथ? इसी से तो मौत आनी है। यही तो मौत लाने वाली है।
नहीं, तुम छिटके-छिटके रहोगे। तुम बचे-बचे रहोगे। तो ऐसे तुम जिंदगी
भी गंवाओगे और मौत तो तुम गंवा ही दोगे। जब बेमन से मरना पड़ता है, तो मौत भी गंवा दी। बेमन से जीए, बेमन से मरे, सारा अवसर व्यर्थ गया।
मैं तुमसे कहता हूं, मन-भरपूर्वक जीओ। और अगर तुम्हें मरना है--मरना
तो होगा ही--तो मनपूर्वक मरो। फिर मरने को भी साधना बना लो। फिर मरने को भी ऐसा जबर्दस्ती स्वीकार न करो। रोज-रोज उसका भी स्वाद लो कि जब मौत आए, तो तुम्हें पारंगत पाए। जब मौत आए, तो निष्णात पाए, तुम उठकर खड़े हो जाओ। मैंने एक फकीर के संबंध में सुना है--झेन फकीर के--कि जब वह मरने को हुआ, उसने कहा, मेरे जूते ले आओ। क्या करना है जूते का? चिकित्सक तो कहते हैं कि अब आप सुबह न होगी और समाप्त हो जाएंगे। और आप भी कहते हैं कि सूरज

के उगने के पहले मृत्यु आ जाएगी। उसने कहा, वही तो मैं तैयारी कर रहा हूं। मरघट जाता हूं। मैं किसी के कंधे पर चढ़कर न जाऊंगा। जूते लाओ। मैं मौत को अपनी तरफ से चलकर मिलूंगा। यह मेरी जिंदगी का कौल रहा। वह उठा और उसने अपने जूते पहने, बूढ़ा आदमी है, लकड़ी टेकते हुए मरघट चला।
हजारों की भीड़ उसके पीछे चली, लोगों ने कभी न देखा था कि कोई आदमी अपने पैर से चलकर जाता है। लोग सदा दूसरों के कंधों पर चढ़े जाते हैं। दूसरों को ले जाना पड़ता है। अपनी तरफ से कौन जाता है! मगर यह फकीर गया, इसने कहा, कब्र खोदो। इसने कब्र खोदने में हाथ भी बंटाया। वह उसमें लेट गया और कहते हैं, मर गया। आंख उसने बंद कर ली, उसने कहा, अब मैं जाता हूं, अलविदा! अब तुम मिट्टी फेंक सकते हो। उसने आंख बंद कर ली, वह मर गया।
यह... यह कुछ बात हुई! यह कुछ मरने का ढंग हुआ! यह कोई शैली हुई! इसमें कुछ सौंदर्य है! इस आदमी ने मौत को हरा दिया। मौत भी रह गयी होगी छाती मसोसकर कि इस आदमी को न मार पाए। यह स्वेच्छा से गया है।
तुम जरा फर्क तो समझो जबर्दस्ती ले जाए जाने में और स्वेच्छा से जाने में।
जब तुम जबर्दस्ती ले जाए जाते हो, तुम पकड़ रहे हो बिस्तर का कोना और मौत खींचती है। इसीलिए तो तुम्हारे मन में कल्पनाएं उठी हैं कि आते हैं यमदूत भैंसों पर सवार होकर--भांय-भांय! क्योंकि जिन्होंने जाना है, वे कहते हैं, परमात्मा हाथ फैलाता है। उससे मिलन होता है। और तुम कहते हो, भैंसों पर सवार होकर! तुम्हें और कोई सवारी न मिली! बैठे आ रहे हैं भैंस पर चढ़े। बड़ा पुराना ढंग मालूम पड़ता है, अब कहां यंत्र कहां से कहां पहुंच गए! यह तो बैलगाड़ी से भी गया गुजरा जमाना मालूम होता है, जब भैंस पर चढ़े आ रहे हैं। नहीं मगर, तुम्हारे भय ने भैंस खड़ी कर ली है। तुम्हारे भय ने यमदूतों को काला रंग दिया है।
तुमने कठोपनिषद पढ़ा ही है। नचिकेता अपनी तरफ से चला गया तो मौत से भी अमृत के सूत्र लेकर लौटा। कहानी तो प्रतीक है। जबर्दस्ती जाते हो, उससे केवल इतनी ही खबर मिलती है--ठीक से जीए भी न। जीवन से भी मौत ही निकली तुम्हारे। और नचिकेता मौत से भी अमृत ले आया। मौत ने उसे जीवन देने के बहुत बहाने किए, कहा कि धन ले ले, राज्य ले ले, साम्राज्य ले ले, हाथी-घोड़े ले ले, सुंदर स्त्रियां ले ले; उसने कहा, इनको लेकर क्या होगा? एक दिन तो तुम आ जाओगे। फिर तुम छीन लोगे। तो जो छिन ही जाना है, उसकी बात न उठाओ। मुझे तो तुम वह दे दो जो कभी छिनता नहीं।
मौत ने बहुत तरकीबें लगायीं, सब तरह से समझाया--अगर मौत की बातें सुनोगे, तुम्हारा भी मन होने लगेगाः हम न हुए अन्यथा ले लेते, क्या-क्या मिल रहा था! और यह नासमझ नचिकेता आखिर बाल-बुद्धि बालक ही ठहरा--लेकिन नचिकेता ने कुछ भी न लिया। उसने कहा कि एक बात का जवाब देते चलो, यह तुम जो देने को कहते हो, अगर मैं ले लूं, तो कभी तुम छीनोगे या नहीं? मृत्यु ने कहा, जितना तुझे लंबा समय मांगना हो मांग ले, हजार साल जीना हो हजार साल जी, दस हजार साल जीना हो दस हजार साल जी, कितनी लंबी आयु मांगता है? उसने कहा, लंबी की बात मत उठाओ। एक दिन आओगे आखिर में कि नहीं? सौ साल बाद आओगे, हजार साल बाद आओगे, दस हजार साल बाद आओगे, आओगे न? बात खतम हो गयी। कुछ ऐसी बात बताओ जिस में तुम आओ ही न।
नचिकेता ने मृत्यु में से भी अमृत खोज लिया। लेकिन सूत्र इतना है कि अपनी स्वेच्छा से चला गया। एक बार भी ना-नुच न की। बाप नाराज हो गया। बाप ने यज्ञ किया है। वह बांट रहा है--जैसा बांटने वाले बांटते हैं। बेकार चीजें बांटते हैं। जिनकी कोई जरूरत नहीं रह गयी, वह बांट देते हैं। भेंट कर आते हैं। तुम भी करते हो यही। बाप बांट रहा है। गौवें बांट रहा है, जो न दूध देती हैं, जिनके हड्डी-पंजर निकल आए हैं। नचिकेता पास बैठा है, वह पूछता है, पिता! ये गाएं आप दे रहे हैं, इनको देने से पुण्य होगा? क्योंकि इनमें दूध तो निकलता ही नहीं! बाप नाराज होता है।
अक्सर बाप नाराज हो जाते हैं, क्योंकि अनुभव अक्सर क्वांरे निर्दोष बोध से नाराज हो जाता है। क्योंकि क्वांरा निर्दोष बोध अनुभव को जैसे ही

उंगली उठता है, अनुभव को बेचैनी होती है। क्योंकि अनुभव बेईमान सिद्ध होता है।
यह बेटा यह कह रहा है कि पिताजी बड़ी बेईमानी कर रहे हैं, यज्ञ का नाम
ले रहे हैं, ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं, दान की वाह-वाह हो रही है, लेकिन ये गौवें दान योग्य नहीं हैं। यह मुझे पता है। इनमें से दूध तो निकलता ही नहीं। उसने देखा होगा घर में ये गौवें कई दिन से खड़ी हैं, उलटा इनको घास-फूस खिलाओ। कुछ निकलता तो है नहीं, ये पिता दान कर रहा है। इससे कैसे पुण्य होगा?
बाप नाराज हो गए। बाप ने कहा, तू चुप भी रह। लेकिन बेटा चुप नहीं रह सकता, वह देख रहा है। उसने कहा कि आप सब दान दे रहे हैं, सब दान कर देंगे? जो भी आपका है दान कर देंगे? पिता ने कहा, हां, जो भी मेरा है दान कर दूंगा। मैं सर्वस्व-दानी होने वाला हूं। उसने कहा, मैं भी तो आपका हूं। मुझको दान कर देंगे? अब तो बाप का गुस्सा बहुत चढ़ गया। उसने कहा कि तुझे भी दान करूंगा और ब्राह्मणों को नहीं, मौत को दूंगा। लेकिन नचिकेता ने एक बार भी न कहा कि मुझे मौत को मत दें। कहते हैं, वह उठा और मौत के घर की तरफ चला गया। जब दे ही दिया, तो बात खतम हो गयी।
अक्सर मौत तुम्हारे घर आती है, नचिकेता मौत के घर गया। यह बड़ी प्रतीक
की बात है। और जब मौत तुम्हारे घर आती है, तुम हमेशा मिल जाते हो, ख्याल है! कहीं भी घर बनाओ, मौत वहीं आ जाएगी। कभी तुमने ऐसा देखा कि मौत आयी और तुम घर पर न थे। वह वहां आएगी ही नहीं। अगर तुम बाजार में थे, तो बाजार में आएगी। मंदिर में थे, तो मंदिर में आएगी। तुम यह तो नहीं कह सकते, यह कोई अलीह भी तो नहीं हो सकती कि हम घर पर नहीं थे। यह कोई अदालत तो नहीं है कि वहां तुम बहाना खोज लोगे। मौत जब भी आती है, सदा तुम्हें घर पर पाती है। पाएगी ही।
नचिकेता मौत के घर गया, मौत न थी। मौत को पता ही नहीं था। यह कोई आने का वक्त ही न था। इसके आने का समय भी न आया था। यह तो अभी छोटा था। अभी तो यह निर्दोष था, अबोध था। अभी-अभी तो यह पैदा हुआ था, अभी तो जीवन के द्वार में प्रवेश ही हुआ था। इसका तो कोई सवाल ही न था, अभी रजिस्टर में इसका नाम न आया था। अभी क्यू में इसका नंबर न आया था। यह असमय पहुंच गया। मौत घर पर न थी।
कहानी का मतलब यह है कि अगर मरने के लिए बैठे रहे, तो मौत तुम्हें पा लेगी। अगर अपनी तरफ से मरे, तो तुम मौत को न पा सकोगे। अगर तुम अपनी तरफ से मरे, फिर मौत से कोई मिलना नहीं है।
मगर नचिकेता भी एक ही जिद्दी था, वह बैठा रहा तीन दिन। उसने कहा, कभी
तो आएगी। जब आएगी तब मिल लेंगे, लेकिन बिना मिले नहीं जा सकते। पिता ने दे दिया, सो दे दिया। मौत से मिलकर ही आया। और जो भी मौत से मिलकर आ गया है, वह अमृत हो गया है। इसलिए कठोपनिषद बड़ा बहुमूल्य उपनिषद है। मौत की कला का उपनिषद है।
जानता हूं, तकलीफ होती है, यह सोचकर भी तकलीफ होती है कि मरना सीखें। मगर सीख लोगे, तो पछताओगे न। न सीखे, तो बहुत पछताओगे। फिर वैसे ही रोओगे जैसे सिकंदर रोया कि जिंदगी फिजूल गंवा दी। इतने बड़े सम्राज्य से एक श्वास भी वापस नहीं मिलती, इसका क्या अर्थ था?
जिंदगी उन्वान-ए-अफसाना भी है
तुझको ऐ दिल खुद तड़फ के उनको तड़फाना भी है
तुम जीने की आकांक्षा करते हो। इसीलिए तुम परमात्मा से दूर हुए जाते हो। तुम जितनी जोर से जीने की आकांक्षा करते हो, उतना ही तुम अपने को अलग तोड़े चले जाते हो। तुम मरना सीखो। इधर तुमने मरना सीखा कि उधर परमात्मा के हृदय में भी तुम्हारे लिए तरंगें उठीं।
जिंदगी उन्वान-ए-अफसाना भी है
तुझको ऐ दिल खुद तड़फ के उनको तड़फाना भी है
अक्ल वाले तो उठा सकते नहीं बार-ए-जुनूं
क्या कोई ऐ अहले-महफिल तुझमें दीवाना भी है

जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे तो यह पागलपन न कर पाएंगे। वे तो कहेंगे, कहां की बात कर रहे हो! मरने की? मरने से बचना है कि मरना सीखना है!
अक्ल वाले तो उठा सकते नहीं बार-ए-जुनूं
यह जो दीवानगी है, इसका जो बोझ है, ये बुद्धि वाले तो नहीं उठा सकते।
क्या कोई ऐ अहले-महफिल तुझमें दीवाना भी है
लेकिन अगर तुममें कोई दीवाने हों और मरना सीख लें, तो अंततः वे ही अक्ल वाले सिद्ध होते हैं।
तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। तुम्हें अभी जीना नहीं आया, और मैं तुम्हें मौत का पाठ सिखाऊं? लेकिन जीना मौत का ही पहला पाठ है। अगर तुम मौत को ही सीखना चाहते हो, तो ही तुम जीने को सीख सकोगे। क्योंकि जो दूसरा पाठ नहीं सीखना चाहता, वह पहले पाठ से भी बचेगा।
एक छोटा बच्चा अपने छोटे भाई को समझा रहा था कि देख, तेरे स्कूल जाने
का वक्त आया, एक बात से बचना। उसी में हम फंसे। तू मत फंसना। जब स्कूल में सिखाने लगें--सी ए टीः कैट, बस वहीं रुक जाना, उसको मत सीखना--सी ए टीः कैट, बिल्ली, उसको मत सीखना। छोटे भाई ने पूछा, क्यों? उसने कहा, अगर वह सीखा तो बस, उसके बाद फिर शब्द बड़े और लंबे होते जाते हैं। फिर सीखते ही रहो, सीखते ही रहो, अब मेरी ही हालत देखो न! वहीं रुक जाना, तू पहला पाठ मत सीखना। अगर दूसरे से बचना हो। पहली क्लास में ही रुक जाना, अगर दूसरे में न जाना हो। बिल्ली पर रुक जाना--सी ए टीः कैट, बिल्ली। वहां से आगे मत बढ़ना। वही मत सीखना, बस यही कला है। हम चूक गए। हमें किसी ने बताया नहीं, वह हम सी ए टीः कैट सीख गए एक बार, बस फिर शब्द लंबे होने लगे। अब तो बढ़ते ही चले जाते हैं। अब तो कोई पारावार नहीं मालूम होता।
यही हो रहा है। तुम अगर मौत से बचना चाहते हो, तुम जिंदगी को सीखने से
बच जाते हो। जिंदगी मौत का पहला पाठ है। जीओ! दिल भरकर जीओ। जितनी त्वरा, तीव्रता से जी सको, जीओ। यह पहला पाठ है। और दूसरा पाठ और भी प्यारा है। जीने में इतना रस है, सोचो तो जरा, मरने में कितना न होगा! होने में इतना रस है, न होने में कितना न होगा! क्योंकि होने की तो सीमा है, न होने की कोई सीमा नहीं। होना तो छोटा है, न होना विराट है।
इसलिए तो बुद्ध उस परम कला को निर्वाण कहते हैं। निर्वाण यानी मरने
की कला। निर्वाण यानी दीए का बुझ जाना। न हो जाना। इसलिए बुद्ध ने मोक्ष शब्द का भी उपयोग नहीं किया, क्योंकि मोक्ष से ऐसा लगता है, तुम जीए ही जाओगे। शरीर छूट जाएगा, मगर तुम रहोगे।
बुद्ध ने कहा, कुछ भी न रहेगा। तभी विराट होगा। जैसे बूंद सागर में गिरती है और शून्य हो जाती है। पर इधर शून्य हुई, उधर सागर हुई।

तीसरा प्रश्नः
जब-जब हमने सूफियों को सलाम किया
तब-तब हम पर कविता का इलहाम हुआ
इस दौर में जब हम कुछ लिखने बैठे
यूं लगा कि मजहब अब इस्लाम हुआ
ऐसा क्यों है?

सूफियों के पास जाओगे, तो सूफियाना होने लगोगे। उनकी हवा तुम्हें पकड़ लेगी। तुम उनके गीत गुनगुनाने लगोगे। उनके हृदय की धुन तुम्हें पकड़ लेगी। सूफियों के पास रहोगे, तो तुम सूफी होने लगोगे। जिनके पास रहोगे वैसे होने लगोगे। इसीलिए तो सत्संग का इतना मूल्य है।
सत्संग का अर्थ है, जो तुम होना चाहो उस तरह के लोगों के पास रहना। बीमारियां ही नहीं संक्रामक होती हैं, स्वास्थ्य भी संक्रामक है। अगर स्वस्थ रहना चाहो, स्वस्थ लोगों का सत्संग खोजना। अगर सुंदर होना चाहो, सुंदर लोगों का सत्संग खोजना। अगर सत्य होना चाहो, सच्चे लोगों का सत्संग खोजना। अगर फूलों जैसा आनंद चाहिए हो तो फूलों के पास बैठना। बगीचों से निकलना। बगीचों से निकलने वाले आदमी के वस्त्रों को भी फूलों की गंध पकड़ लेती है।

सूफियों के पास अगर तुम अनजाने भी निकल जाओ, तो भी बचकर न जा सकोगे। आकस्मिक रूप से गुजर जाओ, तो भी बचकर न जा सकोगे। कुछ न कुछ उनका रंग पकड़ ही जाएगा। अब जहां रंग-गुलाल खेला जा रहा हो, वहां से तुम ऐसे भी निकल गए, तो भी कुछ न कुछ रंग-गुलाल तुम्हारे ऊपर पड़ जाएगा। कुछ तुम रंग जाओगे। और सूफी का तो अर्थ ही यही है, वह खुद तो अब बचा नहीं और उसके चारों तरफ की हवा तुम्हें भी मिटने के लिए बुलाती है। और जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह सब मिटने से पैदा होता है।
कविता तब पैदा होती है, जब तुम नहीं होते। जो कविता तुम्हारे रहने से पैदा होती है, वह तो सब तुकबंदी है। उसका कोई मूल्य नहीं है। असली काव्य तो सूफियों के पास ही पैदा हुआ है। बाकी कविताएं तो ठीक हैं।
इसलिए हमने पुराने भारत में अलग-अलग शब्द चुने थे। हमने कवियों की दो कोटियां चुन रखी थीं। एक को हम ऋषि कहते थे और एक को कवि कहते थे। ऋषि वह था, जो न होकर गाया। कवि वह था, तो होकर गाता रहा। कवि की सीमा है, ऋषि की कोई सीमा नहीं। सूफी यानी ऋषि। जो मिट गया। अब जो बचा नहीं। मस्ती ही बची है। आनंद बचा है। हर्षोन्माद बचा है। नृत्य बचा है। तुम जाओगे सूफी के पास तो उसका नाच तुम्हें घेर लेगा। उसका नाच तुम्हें भी नचाने लगेगा।
इसलिए यह हो सकता है--अक्सर हुआ है--तुम्हारे पास कुछ भी न था और कभी तुम किसी आदमी के पास गए जहां कुछ आविर्भूत हुआ था, कोई अवतरण हुआ था, अचानक तुम्हारे भीतर कोई सोयी क्षमता जाग गयी। थी पड़ी, सोयी पड़ी थी, उसकी मौजूदगी में जाग गयी।
कहते हैं, कोई अच्छा संगीतज्ञ वीणा बजाए और एक खाली वीणा भी कमरे में
रख दी जाए, तो खाली वीणा भी धीरे-धीरे अपने तारों को हिलाने लगती है। उससे भी स्वर-गूंज उठने लगती है। बिना छुए। सारा कमरा जब भर जाता है झंकार से, तो वीणा कैसे चुप रह सकती है? जरूर होता होगा। ऐसा होना ही चाहिए। झंकार वीणा को भी झंकृत कर देगी, जिसको कोई नहीं छू रहा है।
सूफियों के पास होना, उनके पास होना जिन्होंने जाना है, जीया है; जो मस्त हुए, डूबे, मिटे, किसी और ही दुनिया में प्रवेश है। तुम भी उनके पास थोड़े पिघलोगे। तुम्हारी जड़ता थोड़ी कम होगी। तुम भी निर्भार होओगे। तुम भी उनके साथ में शायद उड़ने की हिम्मत जुटा लो। इतना ही अर्थ है। तो तुम्हारे भीतर जो क्षमता दबी पड़ी होगी, वह प्रगट होने लगेगी। अगर तुम मूर्तिकार होने को पैदा हुए थे, तो सत्संग तुम्हें मूर्तिकार बना देगा।
सत्संग सृजनात्मक है, यह मैं तुमसे कहना चाहता हूं। इसे तुम्हारे हृदय में बिठाना चाहता हूं। जो सत्संग सृजनात्मक नहीं है, वह मुर्दा है। अगर किसी संत के पास जाकर तुम भी मुर्दा हो जाओ, तो उसको मैं सत्संग नहीं कहता। वह तो मरे, तुम भी मरे। आप डुबंते ले डूबे जजमान। वह तो डूबे ही, तुम को भी डुबा लिया।
नहीं, जिस सत्संग में जाकर तुम सृजनात्मक हो जाओ, तुम्हारे भीतर जो स्वर सोए पड़े थे मुखर हो उठें। अगर तुम कवि हो सकते थे तो गीत प्रकट होने लगे, अगर नृत्य छिपा पड़ा था तुममें तो नाच उठ आए, अगर तुम मूर्तिकार हो सकते थे, मूर्तिकार हो जाओ, अगर तुम्हारे भीतर कोई वीणा सोयी थी तो बजने लगे।
वास्तविक सत्संग तुम्हारी ऊर्जा को सृजनात्मक गति देगा, दिशा देगा, आयाम देगा। तुम वहां से मिटकर लौटोगे, मगर कुछ बड़े होकर लौटोगे। तुम वहां मिटोगे भी और तुम्हारा नया जन्म भी होगा।
सूफियों ने बड़े प्यारे गीत गाए हैं। और जिनके भीतर भी गीत की संभावना
थी उनके गीत भी जगाए हैं। सूफी नाचे, और जिनमें भी थोड़ा-बहुत नाच कहीं पड़ा था दबा, उसको भी उभार लिया है। सूफी बड़ी सृजनात्मक प्रक्रिया है।
इस देश में बहुत से असृजनात्मक ढंग प्रचलित हैं। जैन-मुनि बिल्कुल असृजनात्मक हैं। उनका गुण-गौरव उनके असृजनात्मक होने में है। अगर तुम पूछो कि यह जैन-मुनि इतना प्रख्यात क्यों है, तो लोग बताएंगे, क्योंकि इसके... साल में यह छह महीने उपवास करता है। बड़ी नकारात्मक प्रशंसा हुई। छह महीने भोजन नहीं करता। कुछ न करने की प्रशंसा हुई। छह महीने नाचता है ऐसा नहीं, छह महीने भोजन नहीं करता। किसी की प्रशंसा है कि वे धूप में खड़े रहते

हैं। बड़ी जड़तापूर्ण प्रशंसा हुई। यह धूप में खड़ा रहना कोई गुणवत्ता नहीं है। इससे कुछ उपलब्धि नहीं है। इससे कोई सिकुड़ सकता है, फैल नहीं सकता। इससे कोई मर सकता है, जीवन की उमंग नहीं आ सकती। कोई नहीं कहता कि ये गीत लिखते हैं, कोई नहीं कहता, ये मूर्ति बनाते हैं, कोई नहीं कहता, ये नाचते हैं। जीवन को विधायक दिशा चाहिए।
नकारात्मकता के कारण धर्म भी बुरी तरह नष्ट हुआ। तो तुम अक्सर पाओगे,
जो कुछ नहीं कर सकते वे साधु हो जाते हैं। क्योंकि साधु होने में कुछ न करने की ही महिमा है। कुछ नहीं कर सकते--दुकान भी न चली, बाजार में भी न बैठ सके, दफ्तर में काम भी न कर सके, काहिल और सुस्त थे, नौकरी-चाकरी भी न बनी, बुहारी भी न चला सके, जैन-मुनि हो गए। अब न करने में ही प्रतिष्ठा है। अब कोई नहीं पूछता, तुम्हारी प्रतिभा क्या है? तुम्हारे जीवन की ऊर्जा का कौन सा आविष्कार हो रहा है। कोई नहीं पूछता।
अब तो बस यही बात काफी है कि उन्होंने संसार छोड़ दिया। कि वे खाली होकर बैठ गए मंदिर में। कि उपवास करते हैं। कि पांच घंटे सोते हैं। यह भी कोई बात हुई! पांच घंटे सोओ कि छह घंटे सोओ, कि सात घंटे, कि चार घंटे, इससे क्या हासिल? भोजन एक बार करो, कि दो बार, कि पांच बार, इससे क्या हासिल? इससे क्या मिलता है जगत को? तुम जगत को जैसा तुमने पाया था, उससे सुंदर न छोड़ पाओगे। और यह भी क्या संन्यास, यह भी क्या साधुता, जो जगत को वैसा का वैसा छोड़ जाए--बल्कि थोड़ा और कुरूप कर जाए!
इसे थोड़ा सजाकर जाना। तुम्हारे पीछे थोड़े गीत गुनगुनाते रहें लोग, ऐसे जाना। तुम्हारे पीछे थोड़ी मुस्कुराहटों के फूल खिलते रहें, ऐसे जाना। धर्म सृजनात्मक हो, क्रिएटिव हो। तुम्हारी प्रशंसा तुम्हारे कुछ करने की प्रशंसा हो। तुम्हारी प्रशंसा तुम्हारे कुछ होने की प्रशंसा हो। तुम्हारा जीवन एक दान बने। तुम बांटो। जीवन में बहुत अंधेरा है, तुम थोड़े दीए जलाओ। लोग बहुत उदास हैं, तुम थोड़े गीत उठाओ। लोग थके-मांदे हैं, लोग सुस्त हो गए हैं, गिरे पड़ते हैं, तुम फिर से उनके पैरों को गति दो और नृत्य दो। लोगों की आंखों पर धूल जम गयी है, झाड़ो। उनकी आंखों को फिर वैसी आंखें दो कि फिर फूलों को देख सकें, फिर चांद-तारों को देख सकें। फिर जीवन रक्स में आए।
समझा तो ये समझा मैंने जाना तो ये जाना है
हर वीराना एक बस्ती है हर बस्ती एक वीराना है
देखने के ढंग पर निर्भर है।
हर वीराना एक बस्ती है हर बस्ती एक वीराना है
देखने के ढंग पर निर्भर है। अगर तुम नकारात्मक ढंग से देखो, तो हर बस्ती एक वीराना है। अगर तुम विधायक ढंग से देखो, तो हर वीराना एक बस्ती है।
जीवन को स्वीकार कर अहोभाव से देखना जरूरी है। तो तुम खिलोगे, अन्यथा मुर्झा जाओगे। और तुम खिलोगे तो ही तुम्हारी तृप्ति है। मुर्झा गए तो तृप्ति न हो सकेगी।
इधर मैं देखता हूं, साधु मेरे पास आ जाते हैं। पुराने ढंग-ढर्रे के साधु हैं। वे कहते हैं, साधु तो हो गए, लेकिन कुछ पाया नहीं। साधु होने से पाने का क्या संबंध है? मैं कहता हूं, कुछ पा लो, उससे साधुता निकलनी चाहिए। तुम कुछ पा लो, उससे साधुता निकलनी चाहिए। तुम कहते हो, साधु हो गए कुछ पाया नहीं। किसने कहा था कि साधु होने से तुम्हें कुछ मिल जाएगा? मिलने का साधु होने से क्या संबंध था? कुछ मिला होता, उससे साधुता निकलती। तुम कुछ खोजते, कुछ साधते, कुछ निखारते, अपने पत्थर को थोड़ा छांटते, मूर्ति बनाते, उससे साधुता निकली होती। तुमने सस्ती साधुता चाही। तुमने बड़ी सस्ती साधुता चाही।
पूछा है--
"जब-जब हमने सूफियों को सलाम किया
तब-तब हम पर कविता का इलहाम हुआ
इस दौर में जब हम कुछ लिखने बैठे
यूं लगा कि मजहब अब इस्लाम हुआ"

संभव है। क्योंकि सूफी की भाषा इस्लाम की भाषा है। सूफी का ढंग इस्लाम का ढंग है। सूफी इस्लाम का सार है। तो अगर तुम सूफियों के पास रहे, तो तुम्हारी कविता में भी तुम्हें इस्लाम की सुवास आएगी, स्वाभाविक है। बच नहीं सकते।
तुम अगर ज्यादा देर मेरे पास रह गए, तो मेरी भाषा तुममें रम जाएगी। मेरे बोलने का ढंग तुममें रम जाएगा। मेरी भाव-भंगिमाएं, मेरी मुद्राएं तुममें रम जाएंगी। अनजाने तुम उस तरह से बोलने लगोगे। अनजाने उन शब्दों का उपयोग करने लगोगे। तुम्हें पता भी न चलेगा, कब तुम्हारा हाथ मेरे हाथ की तरह भाव-मुद्रा बनाने लगा। यह चुपचाप हो जाता है।
सूफियों का अपना ढंग है। बड़ा अनूठा ढंग है। अगर परमात्मा की बात करते हैं, तो शराब की बात करते हैं। दुनिया में कोई नहीं करता। अगर तुम सूफियों के पास रहे, तो फिर बिना शराब की बात किए काम ही न चलेगा। क्योंकि मस्ती की बात करनी है। अब इस जगत में शराब से ज्यादा और बेहतर कोई प्रतीक नहीं मिलता। आनंद की बात करनी है, दीवानगी की बात करनी है, तो शराबी से ज्यादा दीवाना यहां कोई दिखायी नहीं पड़ता। हालांकि वह शराब बड़ी और है। वह शराब कुछ ऐसी है कि उसे पीने वाला होश में आ जाता है। मगर है शराब। पीने वाला कुछ और ही दुनिया में जीने लगता है। यहां का नहीं रह जाता। पैर उसके जमीन पर नहीं पड़ते।
हर चंद हो मुशाहिद-ए-हक की गुफ्तगू
बनती नहीं है बादा-ओ-सागर कहे बगैर
किसी सूफी ने कहा है कि जब भी सत्य की बात करता हूं तो बिना शराब के कहते बनती ही नहीं, करो भी क्या!
हर चंद हो मुशाहिद-ए-हक की गुफ्तगू
जब भी परिपूर्ण सत्य की बात करो, चर्चा चलाओ!
बनती नहीं है बादा-ओ-सागर कहे बगैर
फिर प्याली, मधुपात्र, और मधुशाला, और मधुबाला सभी को ले आना पड़ता है। बनती नहीं है बादा-ओ-सागर कहे बगैर
वह सूफियों का ढंग है। इसलिए सूफियों के साथ अगर रहोगे, तो उनका ढंग
भी पकड़ेगा।
सूफियों को समझना मुश्किल हुआ। उमर खय्याम का अनुवाद किया फिट्जराल्ड ने, गलत समझा वह। उसने समझा, शराब यानी शराब। उसने समझा, साकी यानी साकी। उसने शब्दों के शाब्दिक अर्थ ले लिए। उमर खय्याम एक सूफी फकीर था। उमर खय्याम एक सिद्धपुरुष था। जब वह साकी की बात कर रहा है, तो वह परमात्मा की बात कर रहा है। जब वह शराब की बात कर रहा है, तो वह ध्यान की बात कर रहा है। जब वह मधुशाला की बात कर रहा है, तो वह मंदिर की बात कर रहा है।
लेकिन फिट्जराल्ड को तो कुछ पता न था। ईसाइयों के पास वैसी कोई भाषा नहीं थी। तो उसने तो शराब को शराब समझा, मधुशाला को मधुशाला समझा। तो आज दुनिया में कई शराब की दुकानें हैं, जिनका नाम उमर खय्याम है। शराब की दुकान, और उमर खय्याम का नाम! और धीरे-धीरे ऐसा लगा कि यह उमर खय्याम बस पियक्कड़ होगा। था पियक्कड़, मगर परमात्मा का पियक्कड़ था। इसका कुछ लेना- देना नहीं उस शराब से, जिसको तुमने जाना है। इसने कुछ और ही शराब पी थी, जो एक दफे पी ली, तो बस पी ली। फिर नशा उतरता ही नहीं। चढ़ी तो चढ़ी। फिर उतरती नहीं। गिरे तो गिरे, फिर उठते नहीं।
दुनिया में शैलियां हैं। सूफियों की अपनी है, झेन फकीरों की अपनी है। अगर झेन फकीरों की भाषा तुम्हें नहीं आती तो तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। तुम जाओ किसी झेन फकीर के पास, तुम पूछो, आत्मा को कैसे पाया जाए? हो सकता है, वह उठाकर डंडा मार दे। यह उसकी भाषा है। जो समझता है उसकी भाषा, वह सिर झुकाकर चरण छुएगा, कि बड़ी कृपा की, आपने जवाब दिया। तुम तो नाराज हो जाओगे। तुम तो पुलिस-दफ्तर की तरफ भागोगे कि यह आदमी कैसा है? हम पूछने गए कि सत्य कैसे पाया जाए! आत्मा कैसे पायी जाए! और इसने लट्ठ मार दिया।
तुम समझे नहीं। यह आदमी यह कह रहा है कि आत्मा पायी नहीं जाती, तुम पाए हुए हो। यह लकड़ी मारकर तुम्हें होश ला रहा है कि जागो। दिया एक झड़ापा जोर

से कि जागो। यह तुम्हें होश में ला रहा है कि क्या सोयी-सोयी बातें कर रहे हो? नींद में हो? आत्मा को पाना है? आत्मा पायी ही हुई है! तो तुम न समझोगे। कठिनाई हो जाएगी। मुश्किल हो जाएगी।
जापान को डेढ़ हजार साल धीरे-धीरे, धीरे-धीरे यह भाषा रमी, समझ में आयी। धर्म की भी वैसी ही भाषाएं हैं जैसी और भाषाएं हैं। अगर तुम समझते हो अरबी, तो समझते हो। नहीं समझते, तो नहीं समझते। ऐसे ही धर्म की भाषाएं हैं। सूफी इस्लाम की गहरी भाषा है। खुद मुसलमान नहीं समझे। मंसूर को लटका दिया सूली पर। क्योंकि उसने कह दिया, अनलहक; अहं ब्रह्मास्मि; मैं ब्रह्म हूं। मुसलमानों ने लटका दिया। वह इस्लाम की गहरी से गहरी बात कह रहा था। वह कह रहा था, अब फासला बचा ही नहीं मुझमें और तुझमें। अब चाहे यह कहूं कि तू मैं है, या यह कहूं कि मैं तू है, एक ही बात है। अब दूरी न रही, अब हम एक हुए। अब बूंद सागर में गिर गयी। यह कहो कि बूंद सागर में गिर गयी, या यह कहो कि सागर बूंद में गिर गया, क्या फर्क पड़ता है! अलग-अलग न रहे। इस्लाम की गहरी से गहरी बात मंसूर ने की, मुसलमानों ने सूली लगा दी। मुसलमान भी न समझे इस्लाम की गहरी बात।
यही बुद्ध के साथ हुआ। बुद्ध ने उपनिषदों की गहरी से गहरी बात कही। हिंदू न समझे। बुद्ध को उखाड़ फेंका। भारत में टिकने न दिया। उपनिषद और वेदों का जो सार था, वह बुद्ध ने कहा। बुद्ध से ज्यादा सारभूत उपनिषद किसी और से प्रगट नहीं हुए। लेकिन हिंदू न समझे।
होता ऐसा है कि एक भाषा में भी कई तल होते हैं। हिंदी है, तो गंवार भी हिंदी बोलता है--गंवार, गांव की। उसकी भी एक भाषा है। फिर शहर का आदमी भी हिंदी बोलता है, उसकी भी एक भाषा है। फिर पढ़ा-लिखा शहर का आदमी भी एक भाषा बोलता है, उसकी भी एक भाषा है। सभी हिंदी बोलते हैं। फिर यूनिवर्सिटी है, विश्वविद्यालय हैं, वहां के अध्यापक भी बोलते हैं, वे भी हिंदी बोलते हैं, पर उनकी और ही एक भाषा है। भाषा में भी आभिजात्य होता है, संपन्नता होती है।
वैसे ही धर्म की भी भाषा है। मोहम्मद ने जो भाषा बोली है, वह उस आदमी
की है, जो आखिरी आदमी समझ ले। मंसूर ने जो भाषा बोली, वह इस्लाम की भाषा है, लेकिन उसकी है, जो शिखर पर चढ़ा हुआ सिद्धपुरुष ही समझे। हां, मंसूर ने जो बोला, मोहम्मद समझ सकते थे। लेकिन मुसलमान न समझे। क्योंकि मोहम्मद ने जो बोला था, वह साधारण आदमी समझ ले, तो साधारण आदमी के पास तो मोहम्मद की भाषा थी। उसने पकड़ ली थी, अब वह उसको छोड़ने को राजी न था। जब मंसूर बोला, तो यह बात इतनी आभिजात्यपूर्ण मालूम पड़ी, इतनी अरिस्ट्रॉक्रेटिक मालूम पड़ी, इतनी दूर की मालूम पड़ी, कि नहीं, उसको जंची नहीं। यह तो इस्लाम को खराब किए दे रहा है!
सूफी बड़ी गहरी भाषा है। जब तुम उनके पास रहोगे तो कुछ आश्चर्य नहीं कि तुम्हारी वाणी में भी इस्लाम की झलक आने लगे। हर्जा भी कुछ नहीं है, आने दो। इस्लाम बड़ा प्यारा है। जिसको धर्म से प्रेम है, उसे इस्लाम में भी, हिंदू में भी, बौद्ध में भी, जैन में भी, ईसाई में भी, यहूदी में भी, जरथुस्त्र में भी--सबमें--उसी एक के दर्शन होंगे। रूप अनेक हैं, लेकिन जिसके हैं वह एक है। भाषा अनेक हैं, पर जो प्रगट हो रहा है वह मनुष्य का हृदय एक है। गीत बहुत हैं, लेकिन जिसकी गुनगुन है वह एक है।
कोई हर्जा नहीं, हो जाने दो इस्लाम को हावी। बोलो सूफी की भाषा, गाओ सूफी का गीत। अगर वही तुम्हें प्यारा लगता है, वही करो।
मेरे देखे जन्म से धर्म का निर्णय नहीं होता, नहीं होना चाहिए। तुम्हारा जहां मेल खा जाए। कुरान जम जाए तो कुरान ही तुम्हारा वेद है। वेद जम जाए तो वेद ही तुम्हारा कुरान है। जन्म से तुम हिंदू-घर में पैदा हुए, इससे परेशान मत होना। जन्म से क्या लेना-देना है धर्म का! धर्म तो तुम्हें खोजना होगा। जहां तुम्हारी संगति बैठ जाए, जहां तुम्हारा स्वर तालमेल खा जाए, जहां साज तुम्हें जगा दे और तुम नाचने लगो, गाने लगो। बस, जो भाषा तुम्हारी समझ में आ जाए, उसी भाषा में परमात्मा से बोलना। दूसरी भाषा को छोड़ देना, फिकर मत करना। सब भाषाएं उसकी हैं। क्योंकि उसकी कोई भी भाषा नहीं है। मौन उसकी भाषा है।

सब मार्ग धीरे-धीरे वहां ले आते हैं जहां मार्ग तो छूट जाते हैं, अकेले तुम रह जाते हो। तुम--वैसे तुम नहीं, जैसे तुम कल तक थे--तुम भी पीछे छूट जाता है, बस तुम्हारी शुद्धता रह जाती है। उस शुद्धता को कहो मोक्ष, कहो निर्वाण, कहो आत्मा, कहो परमात्मा, जो तुम्हारी मौज हो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 6
साठवां प्रवचन

जीवित धर्म का उद्गम केंद्रः सदगुरु

हीनं धम्मं न सेवेय्य पमादेन न संवसे।
मिच्छदिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो।। 146।।

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च।। 147।।

यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति।। 148।।

एस पस्सथिमं लोकं चित्त राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि संगो विजानतं।। 149।।

पहला सूत्र; और अत्यंत क्रांतिकारी।
बुद्ध के ऐसे तो सभी वचन क्रांतिकारी हैं। बुद्ध के लिए धर्म कोई रूढ़ि नहीं, जीवन-रूपांतरण की कीमिया है। धर्म कोई परंपरा नहीं। धर्म का अतीत से कोई संबंध नहीं। धर्म नया जन्म है।
इसलिए साधारणतः धर्म से तुमने जो जाना है, उसे बुद्ध ने हीन-धर्म कहा है। वह कोई श्रेष्ठ-धर्म नहीं। वह कोई आर्य-धर्म नहीं।
पहला सूत्र है--

हीनं धम्मं न सेवेय्य।

"हीन-धर्म का सेवन न करे।"
क्या है हीन-धर्म? जो तुमने उधार पा लिया, जो तुमने सुनकर पा लिया, जो तुमने औरों से पा लिया--परिवार से, समाज से, संप्रदाय से--जो तुमने स्वयं न खोजा, वह हीन-धर्म है। वह धर्म जैसा मालूम होता है, धर्म है नहीं।
और उससे तुम कहीं पहुंचोगे न; भटक भला जाओ। उससे तुम और गुत्थियों में उलझ जाओगे। और गुंजलकें तुम्हें घेर लेंगी। अंधेरे का सांप और भी कुंडली मारकर तुम्हारे चारों तरफ बैठ जाएगा। क्योंकि धर्म का संबंध परंपरा से नहीं है। धर्म का संबंध तुमसे है। अपने आविष्कार से है। स्वयं की खोज से है। वेदों से नहीं, उपनिषदों से नहीं, कुरान-बाइबिल से नहीं।
तुम्हारा ही जीवन वह शास्त्र है, जिसे वेद कहा जा सकता है, कुरान कहा
जा सकता है। इसे न पढ़कर तुम कुछ और पढ़ते रहे, तो हीन-धर्म में पड़ जाओगे। उस किताब को तुम अपने साथ ही लाए हो। वह किताब तुम्हारे भीतर ही छिपी है। अब और किताबों से बचना। और किताबों को पकड़कर मत बैठ जाना। कहीं ऐसा न हो कि हीरा तुम्हारे पास हो और तुम कंकड़-पत्थर बीनते हुए समय गंवा दो।
बुद्ध परंपरा से चले आए धर्म को हीन-धर्म कहते हैं। भीड़ के धर्म को हीन-धर्म कहते हैं। ठीक कहते हैं और। क्योंकि भीड़ से राजनीति ली जा सकती है, धर्म कैसे लोगे? भीड़ से पागलपन लिया जा सकता है, स्वास्थ्य कैसे लोगे? जो भीड़ के पास नहीं है, उसे तुम भीड़ से कैसे लोगे? भीड़ से पाप सीख सकते हो, पुण्य का बीजारोपण न होगा। वह भीड़ के पास नहीं है।
साधारणतः समाज और राजनीति की आकांक्षा है कि तुम भीड़ के एक हिस्से हो जाओ। तुम पगडंडियां न खोजो। क्योंकि जो व्यक्ति अकेला चलता है, समाज उससे नाराज होता है। समाज सिंहों को पसंद नहीं करता, भेड़ों को पसंद करता है। क्योंकि भेड़ों पर कब्जा किया जा सकता है, मालकियत की जा सकती है। राजनेता सिंहों पर मालकियत न कर सकेंगे; और न समाज के ठेकेदार, न पंडित-पुरोहित। सिंहों का कोई भी नियंत्रण नहीं कर सकता।
इसलिए इसके पहले कि तुम्हारा सिंहनाद हो, इसके पहले कि तुम्हारा व्यक्ति जागे, तुम्हें मार ही डाला जाता है, काट ही डाला जाता है। कोई

हिंदू बनकर रह जाता है, कोई मुसलमान बनकर रह जाता है, कोई जैन बनकर, कोई बौद्ध बनकर। आदमी पैदा ही नहीं हो पाता। इसके पहले कि स्वभाव अंकुरित हो, तुम्हारे चारों तरफ इतनी बागुड़ लगा दी जाती है, तुम्हारी शाखा-शाखा पर इतने प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं, तुम्हारी जड़ों पर इतनी परतंत्रता थोप दी जाती है कि तुम कुछ के कुछ हो जाते हो, जो तुम होने को न आए थे, जो तुम्हारी नियति न थी, और तब अगर तुम दुखी हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं। हीन-धर्म ने तुम्हें दुखी किया है।
जब तक तुम वही न हो जाओ जो तुम होने को हो, जब तक तुम्हारा स्वभाव न खिले, फूल न बने, तब तक तुम रोते ही रहोगे। तुम्हारे आंखों के आंसू सिर्फ इतना ही कहते हैं कि तुम जो बनने को आए थे, वह न बन पाए। तुम वह गीत न गा पाए जो तुम्हारे प्राणों में छिपा था। वह अब भी कसमसाता है। लेकिन तुमने अपने को सस्ती चीजों में बेच दिया। तुमने सुविधा खोजी, सत्य नहीं। तुमने सांत्वना खोजी, सत्य नहीं। तुमने संतोष खोजा, सत्य नहीं।
हीन-धर्म सांत्वना देता है। श्रेष्ठ-धर्म सत्य देता है। सत्य से जो संतोष मिलता है, वह बात ही और! संतोष से जो सत्य को मानकर बैठ जाता है, उसने झूठ को पकड़ लिया। इसलिए तो तुमने इतने झूठ पकड़े हैं। उनसे संतोष मिलता है। कोई मर गया, दुख हुआ, पीड़ा उठी, डूब गए तुम एक अंधकार में। चाहते हो कोई कहे, आत्मा अमर है। चाहते हो जो मरा, वह मरा नहीं। चाहते हो कि यह सिर्फ शरीर ही बदला है, मेरा प्यारा जीएगा। लोग तुम्हें समझाने मिल जाते हैं। उससे सांत्वना मिलती है। वे तुम्हारे घावों पर मलहम के फाहे रख देते हैं। घाव मिटता नहीं। न ही जीवन में ज्ञान होता है। न तुम्हें पता चलता कि सच में आत्मा अमर है। क्योंकि यह पता तो अपने भीतर जाने से चलेगा। यह किसी के मरने से पता न चलेगा। यह तो तुम स्वयं ही जीओगे और मरोगे, तो पता चलेगा। हीन-धर्म सांत्वना की तलाश है। तुम पूछते हो, अंधेरा है, अकेला हूं; कोई मिल जाता है, वह कहता है, प्रभु के गीत गाओ, गुनगुनाओ भजन, मंत्रोच्चार करो, भय मिट जाएगा। ऐसे तुम्हें झूठे गंडे और ताबीज मिल जाते हैं। इनको तुम बांध लेते हो। थोड़ी देर को अकेलापन मिटता सा लगता भी है, फिर-फिर उभरेगा, फिर-फिर लौटेगा। झूठ ज्यादा देर काम नहीं आ सकता।

हीनं धम्मं न सेवेय्य पमादेन न संवसे।
मिच्छदिट्ठिं न सेवेय्य न सिया लोकवड्ढनो।।
"हीन-धर्म का सेवन न करे। प्रमाद से न रहे। मिथ्या-दृष्टि न रखे।
आवागमन को न बढ़ाए।"
एक-एक वचन को गौर से समझो।
जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख
उधर को मोड़ दो
वक्ष सागर का नहीं है राजपथः
लीक पकड़े चल सकोगे तुम उसे
धीमे पदों से रौंदते,
यह दुराशा छोड़ दो
राजपथ नहीं है जीवन के सागर पर। यहां तो पगडंडियां हैं। पगडंडियां भी कहना ठीक नहीं। ऐसा ही है जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं और पीछे कोई पदचिह्न नहीं छोड़ जाते। रास्ते तैयार होते, बड़ी सुगमता हो जाती, तुम उन पर चल लेते। रास्ते तैयार नहीं हैं। अपने ही चलने से रास्ता बनाना होता है। धर्म-पथ कहीं मौजूद नहीं, कहीं रेडीमेड नहीं कि बस तुम उस पर चल जाओ। कि जब मर्जी हुई तब चल लोगे, राजपथ तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुम्हीं बनाओगे, तो तुम्हीं चलोगे।
कभी जंगल में गए हो? कभी जंगल में भटके हो? झाड़-झंखाड़ में, जहां से निकलना भी मुश्किल हो जाता है। वहां क्या करते हो? वहां कोई पथ तो तैयार नहीं है। हाथ से ही झाड़ियों को हटाते हो, सम्हाल-सम्हालकर पैर रखते हो। चलने के पहले रास्ता बनाते हो। या ऐसा कहो कि चल-चलकर रास्ता बनाते हो।
वैसा ही है जीवन भी। और अच्छा है कि वैसा है। कहीं राजपथ होते बंधे-बंधाए,

ट्रेनें छूटती होतीं परमात्मा की तरफ, बसें जाती होतीं एस.टी.सी. की, सब खराब हो जाता। परमात्मा भी दो कौड़ी का हो जाता। सत्य भी पाने योग्य न रह जाता। बहुत सस्ता मिल जाए, इतना सस्ता मिल जाए, तो उससे मुक्ति नहीं हो सकती थी।
अच्छा है कि कोई राजपथ नहीं, अच्छा है कि बुद्ध चलते हैं और उनका पथ खो जाता है। ताकि दूसरे पुनः बुद्ध हो सकें। अगर बुद्धों का रास्ता पकड़कर तुम चल लेते, तुम बुद्ध कभी भी न हो पाते।
पर यही तुमने किया है। यही सारा संसार कर रहा है। किसी ने महावीर का रास्ता पकड़ा है, जो कि है नहीं, जो कि हो नहीं सकता। महावीर चले थे जरूर, लेकिन अब कोई तय नहीं कर सकता कि कहां उनके पैर पड़े थे। वे पैर तो मिट गए। वे तो बनते ही नहीं, आकाश में पक्षियों की उड़ान है। लोग अनुमान से बना लेते हैं। लोग सोच-सोचकर बना लेते हैं।
बुद्ध के पीछे लोग चल रहे हैं, कृष्ण के पीछे लोग चल रहे हैं, राम के पीछे लोग चल रहे हैं, जीसस के पीछे लोग चल रहे हैं, वह लोगों ने ही बना लिए हैं। वह लोगों की ही धारणाएं हैं, उनकी ही व्याख्याएं हैं। इनसे बुद्धों का कोई लेना-देना नहीं है।
इसलिए संप्रदाय को धर्म मत समझना। संप्रदाय तुम्हारा अनुमान है कि यहां से बुद्ध चले होंगे, शायद। संप्रदाय अंधे का अनुमान है कि आंख वाले कहां से चले होंगे। संप्रदाय बहरों का अनुमान है कि जानने वालों ने क्या कहा होगा। संप्रदाय अंधेरे में भटके लोगों की धारणा है कि जिनके हाथ में प्रकाश है, वे कैसे चलते होंगे। लेकिन तुम्हारी सब धारणाएं व्यर्थ हैं। अच्छा हो कि तुम धारणाएं छोड़ दो। अच्छा हो कि तुम अपने अंधेरे को स्वीकार कर लो। तो शायद राह मिल भी जाए। क्योंकि राह फिर तुम खोजोगे।
अभी तुम्हें ख्याल है कि राह तैयार है। तुम जैन-घर में पैदा हुए, राह तैयार है। तुम राजपथ पर ही पैदा हुए। तुम घर में थोड़े ही पैदा हुए। तुम तो राजपथ पर, सुपर हाइवे पर पैदा हुए हो। जन्म से आंख खोली, राजपथ पर ही अपने को पाया। ये सब राजपथ झूठे हैं।
संप्रदाय को बुद्ध कहते हैं हीन-धर्म। संप्रदाय का अर्थ है, भीड़ ने तुम्हें जो दे दिया, दूसरों ने तुम्हें जो बता दिया। धर्म का अर्थ है, तुमने जो खोजा।
खोज स्वभावतः दुष्कर है, दूभर है, कठिन है। इसीलिए तो लोग सस्ते पर राजी हो गए हैं। असली फूल मुश्किल है। लोगों ने कागज के फूल खरीद लिए हैं। जीवन को बदलना कठिन है, लोगों ने ऊपर से राम-चदरिया ओढ़ ली है। सोचते हैं कि ठीक है। राम को भीतर ले जाना तो बड़ा कठिन है। श्वास-श्वास में पिरो जाए, हृदय की धड़कन-धड़कन में बस जाए, बड़ा कठिन है। राम-चदरिया बड़ी सस्ती है, बाजार में मिलती है। ओढ़ लो। किस को धोखा दे रहे हो लेकिन? संप्रदाय राम-चदरिया है। और धर्म है राम का भीतर आविष्कार। कठिन है मार्ग। इसलिए धर्म केवल साहसियों के लिए है। संप्रदाय कायरों के लिए।
वक्ष सागर का नहीं है राजपथः
लीक पकड़े चल सकोगे तुम उसे
धीमे पदों से रौंदते,
यह दुराशा छोड़ दो
धक्का लगेगा। यही तो बुद्धों का धक्का है। चौंकोगे तुम। तुम कहोगे, परंपरा से नहीं, शास्त्र से नहीं, आगम से नहीं! अपने ही ऊपर खोजना है, अपने ही हाथ से, अपने ही द्वारा--तब तो बड़ा असंभव है। मैं और खोज पाऊंगा? तुम्हें अपने पर आस्था तो नहीं है, आस्था होगी भी कैसे? तुम्हें सदा सिखाया गया है किसी और पर आस्था करो। जैन-घर में पैदा हुए, महावीर पर आस्था करो। हिंदू-घर में पैदा हुए, कृष्ण पर आस्था करो। अपना गीत मत खोजो, भगवदगीता काफी है। अपने जीवन की रोशनी को मत जलाओ, वेद में काफी प्रकाश है, यह तुम क्या कर रहे हो फिजूल? क्यों अपने-अपने दीए जलाने की चेष्टा कर रहे हो? दीए तो ऋषि-मुनि जला गए हैं। बस तुम उनके अंधे लीक पकड़कर चल पड़ो। तुम्हें सदा सिखाया गया है, किसी और पर आस्था करो। कोई दूर आकाश में बैठे परमात्मा पर, सदियों पहले हुए वेद के ऋषियों पर, पुराणों पर, कथाओं

पर। बस एक बात तुम्हें नहीं सिखायी गयी--अपने पर भरोसा। वह तुम्हें नहीं बताया गया। क्योंकि सारा संप्रदाय उससे डरता है।
तुमने अपने पर भरोसा किया तो वेदों का क्या होगा? वेदों के पीछे चलते पंडितों का क्या होगा? मंदिर-मस्जिदों का क्या होगा? यह सारा जाल जो हीन-धर्म का फैला हुआ है, इसका क्या होगा? अगर तुमने अपनी ही ज्योति पा ली तो तुम फिर उधार ज्योतियां क्यों मांगोगे? इस बड़े बाजार का क्या होगा? ये बाजार में बैठे हुए सौदागरों का क्या होगा? इनकी दुकानें बड़ी पुरानी हैं, इनका क्या होगा? इनके बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। ये तुम्हें एक बात भर नहीं सिखाते, स्वयं पर श्रद्धा। ये सब तरह की श्रद्धाएं सिखाते हैं।
और मजा यह है कि इनकी सब तरह की श्रद्धाओं के बाद भी आदमी में कोई श्रद्धा नहीं है। हो नहीं सकती। क्योंकि बुनियादी श्रद्धा ही ये नहीं सिखाते। बुनियादी श्रद्धा है, आत्मश्रद्धा। बुद्ध उस बुनियाद पर अपने सारे भवन को खड़ा करते हैं।
"हीन-धर्म का सेवन न करे।"
हीन-धर्म का अर्थ है, तुमने उनसे सीख लिया जिन्हें खुद भी पता नहीं। तुम्हारी मां ने, तुम्हारे पिता ने तुम्हें परमात्मा की भी खबर दे दी। उन्हें खुद ही पता नहीं। उनसे पूछो तो वे कहेंगे, हमारे माता-पिता ने हमें दे दी थी। उनसे पूछो तो वे कहेंगे, उनके माता-पिता ने उन्हें दे दी थी। यह सब उधार चल रहा है। शायद इसशृंखला में तुम कभी भी उस आदमी को न पाओ जिसे खुद मिली थी, जिसने खुद जाना था। शायद बस ऐसे ही उधार चलता रहा। यह अफवाह मालूम होती है। यह धर्म नहीं। यह अनुभव नहीं मालूम होता। इसकी कोई जड़ें नहीं मालूम होतीं। इसे बुद्ध हीन-धर्म कहते हैं।
तुम्हारा वअज राज-ए-इश्क क्या खोलेगा वाइज
जबां की ये नहीं हजरत ये चश्म-ओ-दिल की बातें हैं
वह जो पंडित तुम्हें समझा रहा है मंदिर में, मस्जिद में, उसका उपदेश प्रेम की इन गहरी बातों को न खोलेगा।
तुम्हारा वअज राज-ए-इश्क क्या खोलेगा वाइज
हे धर्मगुरु! तुम्हारे उपदेश हृदय की इस गहरी रहस्य भरी बात को न खोल सकेंगे।
जबां की ये नहीं हजरत ये चश्म-ओ-दिल की बातें हैं
ये आंख वालों की बातें हैं, हृदय वालों की बातें हैं, सिर्फ जबान होने
से कुछ भी नहीं होता।
लेकिन तुमने कभी पूछा कि जिनसे तुमने सीखा, उन्हें मिला था? डर के मारे तुम यह पूछते भी नहीं। क्योंकि फिर तुम्हें खोजना पड़ेगा आंख वाला कोई। सदगुरु खोजना पड़ेगा। उससे बचने के लिए तुम... वह तो खोज लंबी है। फिर कैसे मिलेगा, कहां मिलेगा? कुछ दांव पर भी लगाना पड़ेगा। दांव पर लगाने को तुम राजी नहीं। तुम कहते हो, मैं जैसा हूं, मुझे ऐसा ही रहने दो और कोई मिल जाए। तो फिर ठीक है, कोई तुम्हारे घर आ जाता है।
धर्मगुरु धर्म को बिना जाने धर्म दे रहा है। उसने भी किसी से पाया है। सुशिक्षित है। सुदीक्षित नहीं। सुना है, समझा नहीं। जो तुम्हें समझा रहा है, उसे तुम उसके जीवन में भी न पाओगे। जो पुजारी तुम्हारे घर आकर पूजा करवा जाता है, तुमने उसे कभी पूजा करते देखा? उसे तुमने कभी पूजा में देखा, प्रार्थना में देखा? वक्त बे वक्त जब तुम्हें जरूरत पड़ती है, जो पंडित आकर तुम्हारे घर में मंत्रोच्चार कर जाता है, जरा उसके घर में जाकर भी तो देखो, उसने कभी मंत्रोच्चार किए?
नीत्से ने कहा है--और बिल्कुल ठीक कहा है--कि अगर धर्म से छुटकारा पाना
हो तो थोड़े दिन धर्मगुरुओं के पास रह लो। धर्म से छुटकारा पाना हो, तो थोड़ी देर धर्मगुरुओं के पास रह लो। तो तुम्हें पता चल जाएगा कि सब धोखाधड़ी है। यह सब बातचीत है। जो वे दूसरों को कह रहे हैं होना चाहिए, वह उनके जीवन में भी नहीं हुआ है। उसे तुम वहां भी न पा सकोगे। यह हीन-धर्म है।
"हीन-धर्म का सेवन न करे।"
सेवन शब्द बड़ा अदभुत है। सेवन का अर्थ है, भोजन न करे। हीन-धर्म को अपने भीतर न ले जाए। क्योंकि जो तुम भीतर ले जाओगे वह तुम्हारा रक्त-मांस-

153

मज्जा बनेगा। जो तुम भीतर ले जाओगे, जो तुम आहार लोगे, वही तो तुम बन जाओगे। अगर हीन-धर्म का सेवन किया तो तुम हीन बन जाओगे। अगर पंडितों से तुमने सीखा, वे खुद ही तोते थे, तुम भी तोते हो जाओगे।
तुमने देखा, तोते बड़े बेईमान होते हैं। तोते को घर में रखो, पिंजरे में रखो, सोने का पिंजरा बनाओ, हीरे-जवाहरात लगाओ, सेवा करो, वह जब तक पिंजरे में है तुम्हारी बात दोहराएगा। तुम जो कहोगे वही दोहराएगा। तुम जयरामजी सिखाओगे तो जयरामजी दोहराएगा। तुम अल्लाह का नाम सिखाओगे तो अल्लाह का नाम दोहराएगा। तुम जो कहोगे वही कहेगा। जरा पिंजरा खुला छोड़ देना एक दिन, उड़ जाएगा। फिर तुम लाख चिल्लाओ, झाड़ पर बैठा रहेगा, फिर नहीं दोहराएगा। फिर तुम लाख बुलाओ, फिर नहीं आएगा। बड़ा दगाबाज है।
इसलिए दगाबाज को कहते हैं, तोताचश्म। धोखेबाज को कहते हैं, तोताचश्म। तोते जैसा। वफादार को कहते हैं, कुत्ते जैसा। एक दफा तुम उसे धक्का भी मार दो, नाराज भी हो जाओ, तो भी भूलेगा नहीं। तो भी याद रखेगा तुम्हारे प्रेम को। आस्था उसकी टूटेगी न। तुम दूर जंगल में कुत्ते को छोड़ आओ--कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि कोई कुत्ते को छोड़ने, छुटकारा पाने जंगल में गया, फिर रास्ता भूल गया, फिर अपने ही कुत्ते के पीछे घर लौटना पड़ा--लेकिन कुत्ता घर आ जाएगा। वर्षों बाद मिलोगे तो पहचान लेगा। दूर से तुम्हारी बास को पहचान लेगा, तुम्हारी गंध को पहचान लेगा। भूलता ही नहीं। याददाश्त जैसे हृदय में बैठ गयी।
पंडित को तुम जब तक पैसे देते हो, धर्म की बातें दोहराता रहेगा। तुम पैसे देना बंद करो, अधर्म पर उतर आएगा। वहीं छीना-झपटी और फजीहत शुरू कर देगा।
बुद्ध ने कहा है, जो तुमने पंडितों से लिया वह हीन-धर्म है। इसलिए स्वाभाविक है, अगर पंडित बुद्ध के विरोध में हो गए और उन्होंने बुद्ध के पैर न जमने दिए इस देश में तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि बुद्ध के पैर जमते, तो पंडितों का क्या होता?
इसलिए पंडित सदा ही बुद्धपुरुषों के विपरीत रहे हैं। रहना ही पड़ेगा। क्योंकि बुद्धपुरुष तो उनके सारे व्यवसाय को डांवाडोल कर देते हैं। वे तो लोगों को कहते हैं, यह कुछ बात ऐसी है कि किसी मंदिर में न मिलेगी, किसी मस्जिद में न मिलेगी, अपने भीतर खोजोगे तो ही मिलेगी।
"हीन-धर्म का सेवन न करे।"
आहार न ले। क्योंकि शब्द जो तुम सुनते हो, वह भी आहार है। तुम भोजन में
तो बड़ा विचार करते हो कि शुद्ध है या नहीं। पानी पीते हो तो देख लेते हो साफ-सुथरा है या नहीं। धर्म पीते हो, देखते ही नहीं। देखते ही नहीं, किसी स्वच्छ झरने से आता है कि सारे नगर का मल-मूत्र जहां बहता है उस गंदे डबरे से आता है। भीड़ से जो धर्म तुमने लिया है, वह नगर के बीच से बहते हुए नाले से पीया है। उसे बुद्ध हीन कहते हैं तो ठीक ही कहते हैं।
तुम्हारे भीतर के हिमालयों में वह झरना छिपा है, जहां से तुम स्वच्छतम स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ धर्म पाओगे। जहां उस पर कोई धूल नहीं पड़ी। जहां वह झूठा नहीं किया गया है। जहां स्रोत उसका ताजा है। वहीं पाओगे तुम गंगोत्री अपने भीतर। बाहर तुम खोजने गए, तो तुम किसी भी घाट पर जाओ, वह बासा होगा। काफी लोग उस पर चल चुके हैं। काफी लोग वहां से पानी पी चुके हैं। तुम्हें दिखायी भी नहीं पड़ता, क्योंकि आदत हो जाती है।
पश्चिम से जो लोग आते हैं, उनके डाक्टर उनसे कहते हैं, एक बात भर ख्याल रखना--भारत में पानी मत पीना। सोडा पी लेना, कोका कोला पी लेना, फेन्टा पी लेना, जो पीना हो पी लेना, शराब भी पी लेना--मगर पानी मत पीना। क्यों? हम तो यहां मजे से नदी-नालियों में पी रहे हैं, कोई हमें अड़चन नहीं है। आदत। हमें ख्याल ही नहीं कि उन्हीं नदियों में, उन्हीं डबरों में भैंसें
भी नहा रही हैं। घोड़े भी पानी पी रहे हैं। आदमी भी स्नान कर रहे हैं। लोग नदियों के किनारे पाखाना भी कर रहे हैं, वह सब पाखाना भी नदियों में बह रहा है, हम मजे से पी रहे हैं, हमें याद ही नहीं, पुरानी आदत हो गयी है। पश्चिम के आदमी को देखकर बड़ी घबड़ाहट होती है कि यह तुम क्या कर रहे हो? यहीं भैंसें खड़ी हैं, यहीं घोड़े खड़े हैं, यहीं बैलगाड़ियां निकल रही हैं, वहीं

तुम मजे से सूर्य-नमस्कार कर रहे हो। तैयार हो बिल्कुल जल पीने को, स्नान करने को।
जिस घाट पर हम बहुत दिन रह जाते हैं, हम भूल ही जाते हैं। ऐसा ही धर्म
के संबंध में हुआ है।
तुम जरा सोचो तो, तुमने कहां से धर्म का जल पीया है? किससे पीया है? उनके जीवन में कोई चमक देखी थी, कोई रोशनी देखी थी? उनके आसपास कुछ देखा था प्रभामंडल? उनके चरणों में तुमने प्रभु की पगध्वनि सुनी थी? उनकी श्वासों में तुम्हें कुछ सुवास मिली थी परलोक की? उनके पास तुमने कोई स्वर्ग का सपना देखा था? कहां से लिया है, किससे लिया है?
सोचा ही नहीं। पैदा हुए थे उसी डबरे में, पीते रहे, पीते रहे, जैन हो गए, हिंदू हो गए, बौद्ध हो गए, ईसाई हो गए, मुसलमान हो गए। हो क्या गए? तुमने सोचा ही नहीं, संकल्प कभी लिया ही नहीं। निर्णय किया ही नहीं। और यह भोजन है। और यह शरीर का भोजन नहीं, आत्मा का भोजन है।
शरीर के लिए तो तुम इतनी होशियारी रखते हो। उस दुकान से लेते हो जहां साफ-सुथरा है। जहां मक्खियां नहीं भिनभिनातीं। या जो बहुत साफ-सुथरे रहना चाहते हैं, वे तो दुकान से लेते ही नहीं। वे अपने घर तैयार करते हैं। जो और भी साफ-सुथरा रहना चाहते हैं, वे तो अपने हाथ से ही तैयार करते हैं। वे तो स्वयं-पाकी होते हैं। वे तो अपनी पत्नी को भी हाथ नहीं लगाने देंगे। वे तो खुद ही अपना बना लेंगे। शरीर के संबंध में तुम इतना हिसाब रखते हो! उस शरीर के संबंध में, जो आज नहीं कल चला ही जाएगा।
लेकिन आत्मा का भोजन है धर्म। उसके संबंध में तुम कुछ हिसाब नहीं रखते। तुम किसी से भी ले लेते हो, तुम जहां पाते हो संयोग से, वहीं ले लेते हो। धर्म तुम्हारे लिए दुर्घटना है। तुम्हारे जीवन का सुविचारित चुनाव नहीं।
इसलिए मेरे देखे, अगर आर्य-धर्म, जिसको बुद्ध श्रेष्ठ-धर्म कहते हैं, उसे अगर दुनिया में प्रतिस्थापित करना हो, तो उसका एक ही अर्थ होगा कि प्रत्येक व्यक्ति होशपूर्वक अपना धर्म चुने। अपनी तरफ से खोजे। फिर जहां उसकी खोज उसे ले जाए, जाने को मुक्त रहे। किसी घर में पैदा होने से न कोई हिंदू हो, न कोई मुसलमान हो।
हां, किसी को खोजने से लगे कि कुरान से उसका तालमेल बैठ जाता है, कि कुरान पढ़ते वक्त, कुरान की आयतें दोहराते वक्त उसके भीतर कोई तार छिड़ जाते हैं, कि उसके भीतर कोई गूंज होने लगती है, जो कभी भी वेद पढ़ने से नहीं हुई, तो ठीक है, वह हो जाए मुसलमान। या कोई मुसलमान अगर पाए कि गीता पढ़ने से और उसके भीतर का गीत सजग हो उठता है, सोए प्र्राण जागने लगते हैं--जैसे कोई अंगड़ाई लेता हो, जैसे नींद उतरती हो, खुमार जाता हो नींद का--तो फिर कोई हर्जा नहीं, वह हो जाए गीता का भक्त। लगे कृष्ण के पीछे। लेकिन यह खोज अपनी हो। तुम्हारे कृष्ण तुम्हारी आत्मश्रद्धा से आएं। तुम्हारे बुद्ध भी तुम्हारी आत्मश्रद्धा से आएं। तुम्हारी आत्मश्रद्धा प्राथमिक हो, फिर कुछ भी हो।
"प्र्रमाद से न रहे।"
अभी तुम जो जी रहे हो जीवन, वह मूर्च्छा का है। इसीलिए तो हीन-धर्म में उलझ गए हो। सोए-सोए हो। धक्के खा रहे हो। जहां पाते हो, सोचते हो यहीं के लिए भेजे गए हैं। जहां लहर ले जाती है, वहीं चले जाते हो। न कोई गंतव्य है, न कोई दिशा का बोध है। न प्राणों की कोई आतुरता है कहीं पहुंचने की, कहीं जाने की, कुछ होने की।
"प्रमाद से न रहे।"
मूर्च्छा छोड़े। होश से भरे।
"मिथ्या-दृष्टि न रखे।"
कौन सी दृष्टि मिथ्या है? किस दृष्टि को बुद्ध सम्यक कहते हैं और किस दृष्टि को मिथ्या कहते हैं? जो तुम्हारी नहीं, वह मिथ्या है। जो तुम्हारी है वह सम्यक है। जो निज की है, वह सम्यक है। आंख तो अपनी हो, तो ही ठीक होती है, दूसरे की आंख तो कैसे ठीक हो सकती है?

बहुत वर्षों पहले की बात है। मैं हिंदू विश्वविद्यालय बनारस पढ़ने गया। वहां कभी पढ़ा नहीं। बनारस मुझे रास न आया। न गर्मी जंची, न वहां का रूखा-सूखापन जंचा। लौट आया। लेकिन जब गया, तो जिनके घर मेहमान था, सुबह-सुबह पांच बजे उठा तो सोचा कि एक चक्कर विश्वविद्यालय का लगा आऊं, सुबह-सुबह देख आऊं, थोड़ी पहचान हो ले कि किस जगह चुनने के लिए... कहां रहने के लिए मैं चुन रहा हूं।
चल तो पड़ा। सुबह थी, धुंधलका था। एक आदमी से मैंने पूछा--एक भले बुजुर्ग आदमी से, जो घूमते जाते मालूम पड़ते थे--कि विश्वविद्यालय कहां? तो उन्होंने कहा--चौरस्ते पर हम खड़े थे--कि अगर इस बाएं रास्ते से जाएं तो आगे चलकर एक पुल पड़ेगा, पुल के बाद एक टाकीज पड़ेगी। मैंने कहा, बस इतना ठीक है, फिर आगे मैं पूछ लूंगा। उन्होंने कहा, समझे नहीं, इस रास्ते से तो जाना ही मत। यह तो जिस रास्ते से नहीं जाना है, उसकी मैंने बात कही। तो मैं थोड़ा चौंका कि यह आदमी भी अजीब है! मैं पूछ रहा हूं विश्वविद्यालय जाने की बात! फिर उसने कहा, और यह जो सामने रास्ता है... । तो मैंने कहा, इससे जाना है
कि नहीं? उसने कहा, जाना तो इससे भी नहीं है। तो मुझे लगा कि कुछ पागल है, कुछ झक्की है। तो मैंने कहा, तुम मुझे उतना ही बता दो, जिससे जाना है। अब तो मुझे उसके रास्ते पर जाने में भी थोड़ा संदेह होने लगा। उसने कहा, इस रास्ते से जाना है, लेकिन उस पर मैं खुद ही जा रहा हूं, तो थोड़ी दूर तो मैं ही तुम्हारा साथ दे दूंगा। चलो, बताने की कोई जरूरत नहीं। अब मुझे शिष्टाचारवश इंकार करना भी ठीक न मालूम पड़ा। लेकिन अब जाने का कोई अर्थ नहीं दिखायी पड़ा कि इसके साथ जाना... !
कोई पंद्रह-बीस मिनट चलने के बाद मैंने कहा कि कब तक पहुंचेंगे? उसने कहा, अब सच्ची बात पूछते हो, तो मैं खुद ही यहां अजनबी हूं। तो मैंने कहा, भलेमानुस, तुमने पहले ही क्यों न कहा? उसने कहा कि जितनी मुझसे सहायता हो सके उतनी तो कर दूं। फिर दूसरा कोई था भी नहीं, जिससे तुम पूछ लेते। मैंने कहा, यह बात भी ठीक है!
तो मैंने कहा कि अब क्या करना है? मैं किसी से पूछूं कि तुम्हारी मानकर चलूं? उसने कहा, वैसे तुम्हें किसी से पूछना हो तो अब तो रास्ता चलने भी लगा, पूछ सकते हो, लेकिन मैं यह कहता हूं कि विश्वविद्यालय जाकर करोगे क्या? तब तो उसने और बड़ी मजे की बात कही। फायदा भी क्या है? जो पहुंच गए हैं उनको क्या मिला है? तब तो वह आदमी पागल ही नहीं मालूम पड़ा, परमहंस भी मालूम पड़ा। ठीक ही कह रहा है।
फिर तो दूसरे विश्वविद्यालयों में रहा, लेकिन जब भी विश्वविद्यालय जाता नए वर्ष के प्रारंभ में, और वर्ष के पूरे होने पर लौटता, तो उस आदमी की बात मुझे न भूलती। क्योंकि हर वर्ष वह आदमी सही साबित होने लगा कि जो पहुंच गए हैं, उन्होंने क्या पा लिया है? फिर जब विश्वविद्यालय की सब परीक्षाएं भी पूरी हो गयीं, सामान लादकर तांगे पर मैं स्टेशन की तरफ वापस लौटने लगा, तब फिर उसकी मुझे याद आयी। छह साल पहले उसने यह कहा था। तब मैं सोचने लगा कि वह आदमी ठीक ही कह रहा था कि जाकर भी क्या करोगे? वहां जाने से कभी किसी को कुछ मिला है? तब मेरे मन में दुख भी हुआ कि मैंने एक क्षणभर को सोचा कि वह आदमी पागल था, यह उचित नहीं था।
नहीं, वह पागल नहीं था, परमहंस ही था। तुम जहां जा रहे हो, वहां दूसरे अगर पहुंच गए हैं और उनको कुछ नहीं मिला, तो तुम किसलिए जा रहे हो--उसकी बात तो ठीक लगती है। और एक ज्ञान है जो विश्वविद्यालय में मिलता है, जो कि सच्चा नहीं है। जो कि किताबी है। जो कि शास्त्रीय है। जिससे सूचना मिलती है, लेकिन भीतर का दीया नहीं जलता। जिससे मूर्च्छा नहीं टूटती। मूर्च्छा शायद और घनी हो जाती है, और अकड़ आ जाती है।
कल रात मैं एक गीत पढ़ता था--
हां, अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया
निर्विकार मस्तक को सींचा है,
तो क्या?
नदी, नाले, ताल, कुएं से पानी उलीचा है
तो क्या?

उड़ा हूं, दौड़ा हूं, तैरा हूं, पारंगत हूं, इसी अहंकार के मारे
अंधकार में सागर के किनारे
ठिठक गयाः नत हूं
उस विशाल में मुझसे बहा नहीं गया।
हां, अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया
निर्विकार मस्तक को सींचा है
तो क्या?
भर लिया मस्तक, खूब भर लिया, दिल भरकर भर लिया, लबालब भर लिया, तो क्या? नदी, नाले, ताल, कुएं से पानी उलीचा है
तो क्या?
उड़ा हूं, दौड़ा हूं, तैरा हूं, पारंगत हूं
तो क्या?
लेकिन जैसे-जैसे मस्तिष्क भर जाता है, एक अहंकार उठता है कि मैं जानता हूं।
इसी अहंकार के मारे
अंधकार में सागर के किनारे
ठिठक गयाः नत हूं
उस विशाल में मुझसे बहा नहीं गया।
ज्ञान तुम्हें अज्ञान से छुटकारा तो नहीं दिलाता, सरलता से छुटकारा दिला देता है। ज्ञान तुम्हें ज्ञानी तो नहीं बनाता, ज्ञानी होने की अकड़ दे देता है। फिर उस अकड़ के कारण ही असीम में उतरना मुश्किल हो जाता है।
इसी अहंकार के मारे,
अंधकार में सागर के किनारे
ठिठक गयाः नत हूं
उस विशाल में मुझसे बहा नहीं गया।
इसीलिए जो और रहा,
वह कहा नहीं गया।
शब्द, यह सही है, सब व्यर्थ हैं
पर इसीलिए कि शब्दातीत कुछ अर्थ हैं
शायद केवल इतना हीः जो दर्द है
वह बड़ा है मुझी से
सहा नहीं गया।
तभी तो, जो अभी और रहा, वह
कहा नहीं गया।
पंडित जो कह रहा है, ज्ञान के आधार पर जो कह रहा है, शास्त्र के आधार पर
जो कह रहा है, उसमें असली तो छूट ही गया, जो कहा ही नहीं गया। उसमें तो वस्त्रों की बात हो गयी, देहों की बात हो गयी, प्राण तो छूट ही गए। प्राण तो उसने भी नहीं जाने।
मिथ्या-दृष्टि कहते हैं बुद्ध। अगर तुम्हारी जानकारी सिर्फ जानकारी है, तो मिथ्या-दृष्टि। अगर तुम्हारी जानकारी जानना है, अगर तुम्हारी जानकारी जागना है, अगर तुमने ही अनुभव किया है, तुमने ही स्वाद लिया है, तो ही सम्यक-दृष्टि। तो दर्शन स्वच्छ हुआ, तो आंखें साफ हुईं। अन्यथा दृष्टि पर और पर्दे पड़ जाते हैं। इसलिए मिथ्या-दृष्टि।
इसे तुम समझना। मिथ्या-दृष्टि बुद्ध अज्ञानी को नहीं कहते। बहुत लोग ऐसा ही समझते हैं। धम्मपद की बहुत सी व्याख्याओं में यही लिखा है--मिथ्या- दृष्टि यानी अज्ञानी।
नहीं, कोई बच्चा मिथ्या-दृष्टि नहीं है। बच्चा अज्ञानी है, पर मिथ्या- दृष्टि नहीं है। मिथ्या-दृष्टि तो वह है, जिसके पास दृष्टि नहीं है और जिसे ख्याल है कि दृष्टि है। दृष्टि के न होने का रूप अलग है। पता ही नहीं मुझे। एक आदमी कहता है, मुझे मालूम नहीं। इसको तुम मिथ्या-दृष्टि नहीं कह सकते। यह कहता है, मेरी कोई दृष्टि ही नहीं। मैं अंधा हूं।

नहीं, मिथ्या-दृष्टि वह है, जो है तो अंधा, टटोल तो रहा है लकड़ी से, लेकिन अगर तुम उसे अंधा कहो तो नाराज हो जाए, क्रोध से भर जाए, और सिद्ध करने लगे कि मेरे पास आंखें हैं, वह मिथ्या-दृष्टि। मिथ्या-दृष्टि का अर्थ है, जिसके पास सही दृष्टि तो नहीं है, लेकिन फिर भी भ्रांति है कि सही दृष्टि है, दावा है कि सही दृष्टि है।
"मिथ्या-दृष्टि न रखे।"

मिच्छदिट्ठिं न सेवेय्य।

और बुद्ध कहते हैं, उसका भी सेवन न करे। नहीं तो बढ़ता जाएगा। तुम जिसको सहारा दोगे, वही बढ़ जाएगा। अगर मिथ्या-दृष्टि को सहारा दिया, तो धीरे-धीरे वही जड़ें जमा लेगी, चूस लेगी तुम्हें। प्राणों को दीन, जर्जर कर देगी। फिर तो छूटना भी मुश्किल हो जाएगा।
जैसे कभी देखा खंडहरों के मकानों में वृक्ष जड़ें जमा लेते हैं? फिर तो वृक्षों को हटाओ तो मकान भी गिरे। फिर तो हटाना मुश्किल हो जाता है। नहीं, सेवन ही मत करना। इससे तो भूखे रह जाना बेहतर है। अगर शुद्ध जल न मिले, तो थोड़े प्यासे रह जाना, हर्जा नहीं। थोड़ी प्यास ही बढ़ेगी, कुछ हर्जा नहीं। लेकिन गंदा जल मत पी लेना। कहीं ऐसा न हो कि गंदा जल पीते-पीते गंदा जल पीने की आदत बन जाए। फिर स्वच्छ जल में बास आने लगे। फिर स्वच्छ जल जंचे न, बेस्वाद मालूम होने लगे, क्योंकि गंदगी का स्वाद पकड़ जाए।
लोग शराब पीते हैं, तो शुरू-शुरू में तो तिक्त मालूम पड़ती है, बेस्वाद मालूम पड़ती है, सुख नहीं देती। तो फिर धीरे-धीरे अभ्यास से होता है। धीरे- धीरे पीते-पीते उसी में सुख आने लगता है। लोग मछलियां खाते हैं। जो नहीं खाते, वे सोच भी नहीं सकते। मरी एक मछली पड़ी हो, तो ऐसी बास आती है। लेकिन जो खाते हैं, उन्हें बास तो खो ही जाती है, शायद बड़ा सुख आने लगता है। बंगाली कहते हैं, जलडांडी। वे मछली कहते ही नहीं। वह शब्द ही गलत है। जलडांडी। जैसे कमल की नाल हो। मछली बिना खाए आदमी हो ही नहीं सकता। तो घर-घर में पोखरे बनाकर अपनी-अपनी मछली पाल लेते हैं। बंगाली के शरीर से भी मछली की बास आने लगती है। बंगाली को पहचानना मुश्किल नहीं है। आंख पर पट्टी बांधकर घूम जाओ, बंगाली मिल जाए, फौरन पहचान जाओगे। जलडांडी की बास आएगी। लेकिन उसे नहीं आती। वह तो रम गया। वह तो पक गया।
गंदगी की आदत मत डाल लेना। दुर्गंध की आदत मत डाल लेना।
तो बुद्ध कहते हैं, "मिथ्या-दृष्टि न रखे।"
क्योंकि इन सब से आवागमन बढ़ेगा। उधार धर्म, हीन-धर्म, मूर्च्छा का जीवन, मिथ्या-दृष्टि पर भरोसा, इससे आवागमन बढ़ेगा, बार-बार आओगे। इसी चाक में बार-बार उलझोगे, पेरे जाओगे, परेशान किए जाओगे। फिर जन्मोगे, फिर मरोगे, फिर जन्मोगे।
जागो रे जागो,
डूबे प्रकाश में दिशा छोर
अब हुआ भोर, अब हुआ भोर
आयी सोने की नयी प्र्रात
तुम रहो स्वच्छ मन, स्वच्छ गात
निद्रा छोड़ो रे गयी रात
तुम रहो स्वच्छ मन, स्वच्छ गात
अगर स्वच्छ मन हो, स्वच्छ मन का अर्थ है, अगर व्यर्थ को संजोया-संवारा
न हो, कूड़ा-करकट इकट्ठा न किया हो। स्वच्छ गात हो, अगर तुमने वही आहार किया हो जो करने योग्य था, शुद्धतम, श्रेष्ठतम आहार किया हो।
बुद्ध ने, महावीर ने, दोनों ने पशु-हिंसा को इनकार किया। सिर्फ इसलिए नहीं कि पशुओं को दुख होता है, इसलिए। नहीं, इससे भी ज्यादा इसलिए कि तुम जो भोजन करते हो वह तुम्हें निर्मित करता है। तुम जितना निम्न भोजन करते हो, उतना निम्न तल का तुम्हारा जीवन हो जाता है।

तुम जब भोजन करते हो तो जरा ख्याल करना! तुमने अगर एक मरे हुए जानवर का मांस खाया, तो तुम ख्याल करना, यह मरा हुआ जानवर, इसका मांस थोड़ी देर में ही तुम्हारे मांस का हिस्सा हो जाएगा। यह लाश जो बाहर पड़ी है, थोड़ी देर में तुम्हारे भीतर जीवित हो उठेगी। यह तुम्हारे खून में बहेगा। यह तुम्हारे प्राणों में संचारित होगा। इससे तुम्हारा मस्तिष्क भी निर्मित होगा। क्योंकि तुम्हारा भोजन ही तुम्हें बनाता है। तुम नीचे गिर रहे हो। तुम अपनी गर्दन के चारों तरफ पत्थर इकट्ठे कर रहे हो।
फिर तुमने एक स्वच्छ फल का भोजन किया। महावीर तो, बुद्ध तो कहते थे, जो
फल पककर अपने से गिर गया, उसका भोजन किया। तोड़ा भी नहीं, कच्चा भी नहीं, जो अपने से गिर गया। जो वृक्ष ने खुद ही दान कर दिया। जो वृक्ष ने कहा, अब तैयार है, कोई ले जाए। जो वृक्ष ने छोड़ दिया। उस फल के हल्के भोजन को करके तुम भी हल्के हो जाओगे। तुम पर गुरुत्वाकर्षण का असर कम होगा। तुम आकाश में उड़ सकोगे। विराट आकाश है चैतन्य का, वहां जितने हल्के हो जाओगे उतना अच्छा।
तुम रहो स्वच्छ मन, स्वच्छ गात
निद्रा छोड़ो रे गयी रात
"उठे"--दूसरा सूत्र--"प्रमाद न करे। सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्मचारी इस लोक में तथा परलोक में सुख की नींद सोता है।" "उत्तिट्ठे--उठे।"
किस उठने की बात करते हैं। उपनिषद कहते हैंः उत्तिष्ठत जाग्रत वराण्यबोधत। उठो, जागो बोध में।
"उठे।"
यह तुम्हारे शारीरिक उठने की बात नहीं है। तुम्हारी चेतना उठे। तुम्हारी आत्मा उठे। तुम वहां भीतर सोए न रह जाओ। झाड़ो, साफ करो, बोझ को हटाओ। उठो भीतर।
"उठे। प्रमाद न करे।"
प्रमाद न करना उठने का सूत्र है। प्रमाद शब्द को समझो। वह बुद्ध का बड़ा बहुमूल्य शब्द है। बुद्ध-महावीर दोनों का। प्रमाद का अर्थ होता है, ऐसा जीना जैसे कोई शराब पीए जी रहा हो। एक शराबी को राह पर चलते देखो--चलता है, डगमगाता है। पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं।
एक शराबी को मैंने देखा। कुछ दिनों तक एक मोहल्ले में मैं रहता था जबलपुर में। पास ही वहां एक शराबी था। काफी धनी व्यक्ति। समृद्ध। कुछ करने को नहीं था, खूब था पैसा, शराब ही एकमात्र करने जैसी बात रह गयी थी। एक रात मैं लौट रहा था--कोई ग्यारह बजे होंगे--किसी मित्र के घर से। उस आदमी को मैंने देखा कि वह एक पैर तो नाली में रखे है और एक नाली के पास फुटपाथ पर रखे है, चल रहा है। चलना कठिन हो रहा है। क्योंकि एक पैर ऊंचा है और एक नीचा है और शराब पीए है। मैंने उसको पूछा भी कि राह पर नहीं चलते? उसने कहा, मैं भी सोच रहा हूं कि रास्ते का हुआ क्या यह? इरछा-तिरछा क्यों हो गया है? बड़ी मुश्किल हो रही है चलने की।
प्रमाद का अर्थ है, तुम चल भी रहे हो, तुम्हें ठीक-ठीक पता भी नहीं, कहां चल रहे हो, क्या रास्ता है, कौन तुम हो, कहां जा रहे हो, किसलिए जा रहे हो, कहां से जा रहे हो, जाने की जरूरत भी है या नहीं? चले जा रहे हो। एक धक्कम-धुक्की है। सब जा रहे हैं, इसलिए तुम भी जा रहे हो। सब चल रहे हैं, इसलिए तुम भी चल रहे हो। सब काम कर रहे हैं, इसलिए तुम भी काम कर रहे हो। एक अनुकरण है। एक अंधानुकरण है।
प्रमाद छोड़ने का अर्थ है, थोड़ा झकझोरो अपने को। जो भी करो, होशपूर्वक करो। पैर भी उठाओ तो होशपूर्वक उठाओ। बुद्ध ने तो इतना कहा है कि श्वास भी भीतर जाए, तो तुम्हें होश रहे कि श्वास भीतर गयी। अब पहुंच गयी भीतर। रुकी क्षण भर। अब चली वापस। अब बाहर गयी। अब बाहर पूरी चली गयी। रुकी क्षण भर।
अब फिर भीतर आने लगी।
बुद्ध ने कहा है, भिक्षु तो वही है जो श्वास तक को अनजाना न चलने दे।
जो श्वास जैसी सूक्ष्म-प्रक्रिया पर भी होश को जमा दे, बिठा दे। राह पर

चले, बुद्ध कहते हैं, तो बायां पैर उठे तो भीतर पता रहे कि बायां उठा। अब बायां नीचे गया, दायां उठा।
मतलब यह नहीं है कि तुम भीतर कहो कि बायां उठा, दायां उठा--पागल हो जाओगे। ऐसा बोध रहे। शब्द नहीं बनाने हैं। ऐसा कहना नहीं है कि अब बायां उठा, अब दायां उठा, नहीं तो थोड़े दिन में जोर-जोर से कहने लगोगे कि अब बायां उठा, अब दायां उठा। फिर तो बहुत मुश्किल हो जाएगी, जिंदगी बड़ी जटिल है। क्या-क्या सम्हालोगे? बायां पैर उठ रहा है, श्वास भीतर जा रही है, हाथ इस तरफ जा रहा है, क्या-क्या सम्हालोगे? क्या-क्या होश रखोगे?
होश रखने का मतलब इतना ही है कि तुम जागे रहो, जो भी हो रहा है। जो भी
हो रहा है। ऐसा न हो कि तुम कहो, मुझे पता नहीं था कब हो गया। अगर इतने जागकर तुम जीयोगे, कैसे क्रोध कर पाओगे? कैसे कामवासना में उतर पाओगे? कैसे घृणा कर पाओगे? कैसे ईर्ष्या करोगे? असंभव है।

बुद्ध ने बड़ा गहरा सूत्र दिया है। जो जागा हुआ जीता है, उसके जीवन में
जो पाप है, वह अपने से गिर जाता है। बुद्ध की परिभाषा यही है कि पाप का अर्थ है, सोए-सोए जीना। और पुण्य का अर्थ है, जागे-जागे जीना। पुण्य का कोई संबंध कृत्य से नहीं है, कर्ता के जागे होने से है। और पाप का भी कोई संबंध कृत्य से नहीं है, कर्ता के सोए होने से है। अगर तुम जागने लगो भीतर, उठने लगोगे भीतर--उत्तिट्ठे।
"सुचरित धर्म का आचरण करे।"

धम्मं सुचरितं चरे।

सुचरित--किसी ऐसे आदमी के पास जाओ, जिसके पास तुम्हें धर्म का कोई साकार-रूप उतरता हुआ मालूम पड़ता हो। शास्त्र तो मुर्दा हैं। उनमें सब सुंदर बातें लिखी हैं, लेकिन बस ऐसे ही है जैसे फूलों को तुमने किताबों में दबाकर बहुत दिन रख दिया हो, सूख जाते हैं, गंध भी खो जाती है, सौंदर्य भी खो जाता है। शास्त्रों में रखे हुए शब्द तो किताबों में दबाए गए फूलों की तरह हैं। मर चुके। बहुत पहले मर चुके। अब तो तुम किसे बगीचे में जाओ, किसी माली को पूछो, किसी बगीचे के जीवित, जिंदा फूल को देखो।
सुचरित का अर्थ है, अगर गुलाब को जानना है तो खिले हुए गुलाब के पास जाओ। किसी बुद्धपुरुष को खोजो, जहां तुम्हें गंध मिले, जहां तुम्हें जीवित का साक्षात्कार मिले। जहां तुम अपने भविष्य को वर्तमान में खड़ा हुआ देख पाओ। जहां तुम्हें कोई दीया जला हुआ मिले। ताकि भरोसा बढ़े, हिम्मत बढ़े कि जो इस व्यक्ति को हो सका, वह मुझे भी हो सकेगा।
सदगुरु का इतना ही अर्थ है। सदगुरु तुम्हें ले नहीं जाता। कोई किसको कहां ले जा सकता है! सदगुरु को देखकर तुम्हें इतना भरोसा आ जाता है, आत्मविश्वास आ जाता है कि तो हम यूं ही नहीं भटक रहे! तो हो सकता है! हुआ है! आंख के सामने है। सुचरित है। छूकर देख लें, पास रहकर देख लें, सत्संग करके देख लें, कहीं हुआ है।
इस पृथ्वी पर धर्म धीरे-धीरे विनष्ट होता चला गया, क्योंकि हम फिकर करने लगे किताब से, हमने बुद्धों की तलाश छोड़ दी। ऐसा नहीं कि बुद्ध होने बंद हो गए। बुद्ध सदा होते रहे हैं, होते रहते हैं, हो रहे हैं, सदा होते रहेंगे। पृथ्वी बड़ी है। लेकिन हमने खोज छोड़ दी।
इसका परिणाम यह हुआ कि हमें अब ईश्वर पर भी आस्था नहीं आती कि ईश्वर
हो सकता है। ईश्वर जैसा कोई देखा हो, तो ही तो आस्था आ सकती थी, आस्था आए कैसे? शक होता है कि कहीं कल्पना का जाल ही न हो।
तुम्हें कृष्ण पर भरोसा कैसे आ सकता है! शक बना ही रहेगा कि कहीं कहानी ही न हो। क्योंकि कहीं तुम्हें जीवन में जब तक कोई जीवित व्यक्ति न मिल जाए जिसकी बांसुरी में फिर वही स्वर हों, न सही ठीक कृष्ण जैसे-- क्योंकि ठीक कृष्ण जैसे तो फिर दुबारा नहीं होंगे--लेकिन स्वाद वही हो, धुन वही हो, तुम्हें फिर कभी कोई व्यक्ति मिल जाए जिसके चरणों में बैठकर फिर तुम पर वैसी ही शांति की वर्षा हो जाए जैसे कभी बुद्ध के चरणों में

किसी को हुई थी, तो तुम्हें भरोसा आएगा। अपने पर भरोसा आएगा, भगवत्ता पर भरोसा आएगा। तब तुम्हें पता चलेगा कि यह आत्मा ही परमात्मा है। यह हो सकता है, मेरे भीतर भी हो सकता है।
छोटे पक्षियों के बच्चे जब अपनी मां को आकाश में उड़ते देख लेते हैं,
तब हिम्मत आती है। तब वे भी घोंसले के किनारों पर बैठकर डरते-डरते, संकोच करते-करते पंख फैलाते हैं। कभी-कभी तो मां को उन्हें धक्का देना पड़ता है। उसमें भी तरह-तरह के बच्चे होते हैं। कोई बच्चा हिम्मतवर होता है, उड़ जाता है। कोई बच्चा थोड़ा डरा होता है, नाजुक होता है, पकड़े ही घोंसले को रह जाता है। उड़ता ही नहीं। तो फिर मां को धक्का भी देना पड़ता है। लेकिन धक्का देने के पहले वह उड़ती है। घोंसले के चारों तरफ चक्कर मारती है। उनको भी एक खबर देती है कि आकाश है। देखो। और मेरे जैसे पंख तुम्हारे पास भी हैं। माना कि तुम अभी छोटे हो, नए हो, पर क्या हर्ज? तुम्हारे पास छोटे पंख हैं, पर तुम्हारे बोझ को झेलने के लिए काफी हैं। फिर बड़े भी हो जाएंगे। उड़ोगे, तो बड़े हो जाएंगे; उपयोग करोगे, तो बड़े हो जाएंगे। जिसका उपयोग किया जाता है, वह बढ़ जाता है; जिसका हम उपयोग नहीं करते, वह धीरे-धीरे सिकुड़ जाता है, खो जाता है।
तुमने अपनी भगवत्ता का उपयोग नहीं किया, तो सिकुड़ गयी, खो गयी। भगवत्ता पंखों की तरह है। तुम अपने पैरों का उपयोग न करोगे तो धीरे-धीरे जड़ हो जाएंगे। एक दिन चल न पाओगे। रोज उपयोग करते रहो तो चलने के योग्य रहोगे। दौड़ो तो दौड़ने के योग्य रहोगे।
किसी बुद्धपुरुष के पास तुम्हें अपने पर भरोसा आता है, यह ख्याल रखना। यहीं भूल न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम बुद्धपुरुष पर भरोसा ले आओ। बुद्धपुरुष की सन्निधि में तुम्हें अपने पर भरोसा आ जाए तो सार्थक हुआ। तुम्हें बुद्धपुरुष के प्रति जो श्रद्धा पैदा हो, वह तुम्हारी आत्मश्रद्धा में रूपांतरित हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि छोटा बच्चा कहे कि ठीक मां, तुझ पर मुझे भरोसा आ गया, तू उड़ सकती है, लेकिन मैं? मैं नहीं उड़ सकता। कहां तू, कहां मैं! तो मां के उड़ने से कुछ सार न हुआ। लेकिन बच्चा फड़फड़ाए, थोड़ा पंखों को देखे कि अरे, मेरे पास भी हैं! फिर मां तो उड़ ही रही है! फिर चलो इसकी छत्र-छाया में थोड़ा हम भी उड़ लें।
तो पहले बच्चा मां के साथ-साथ उड़ता है। बहुत दूर नहीं जाते, वृक्ष के एक-दो चक्कर लगाते हैं, बैठ जाते हैं। थक जाता है, छोटा है। फिर थोड़ी दूर की यात्राओं पर निकलता है, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक जाता है। पर अभी भी मां के पीछे लगा रहता है। देखा तुमने कभी पक्षियों को अपने छोटे बच्चों को उड़ाते? देखना चाहिए।
जैसे छोटा बच्चा मां का पल्लू पकड़े-पकड़े चलता रहता है घर में। अभी अपने पैर से नहीं चल सकता, जानता है कि पैर हैं, चलता भी है, लेकिन फिर भी पल्लू पकड़े रहता है। मां जा रही चौके में, तो वह चौके में चला जा रहा है। मां जा रही है बाथरूम में, तो वह वहां भी घुसने की कोशिश कर रहा है। वह पल्लू पकड़े हुए है, क्योंकि वह यह नहीं मान सकता अभी कि मैं अपने से चल सकूंगा। धीरे-धीरे चलने लगेगा। फिर तुम पल्लू पकड़ाओ तो छुड़ा देगा कि यह क्या बात है? हटाओ भी!
कल ही एक मां मेरे पास आयी, वह कहती है, मेरा बेटा आपका संन्यासी हो गया। अब वह हमसे मुक्त होना चाहता है। होना ही चाहेगा। हर बेटे को एक दिन होना ही पड़ता है। मां समझदार है। उसको समझ में आया। उसने कहा, यह बात तो ठीक है। होना ही पड़ेगा, एक दिन तेरा दामन छोड़ दिया था, एक दिन तेरा गर्भ छोड़ दिया था, फिर एक दिन घर भी छोड़ा, फिर एक दिन यह किसी और स्त्री के प्रेम में पड़ेगा, फिर तुझे भूलने भी लगेगा, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। और फिर कभी अगर यह मेरे जैसे किसी व्यक्ति के प्रेम में पड़ गया, तो तू खुद ही कह देगी, जा। तो अब तू ही इसको कह दे कि जा, अब कंजूसी मत कर। तेरे कहने में ही अब सौरभ है। तेरे कहने में ही अब रस है। और मां हिम्मतवर है, उसने कहा कि ठीक। तो शायद तू इसे अपने हाथ से छोड़ दे और कहे कि जा तू मुक्त है, तो यह तुझसे छूट भी न पाए। क्योंकि उससे, जो तुम्हें छोड़ने को भी राजी है, कौन छूट पाता है! जो तुम्हें स्वतंत्रता देने को राजी है, उसके बंधन से छूटना असंभव है।

पक्षियों के बच्चे पहले पक्षी के साथ उड़ते हैं, थोड़ी दूर-दूर। फिर एक दिन अपने पर तौलने लगते हैं। फिर मां कहेगी कि चलो इधर, तो वे कहते हैं, जाओ भी तुम्हें जहां जाना है! अब हमारे पर हैं। अब हम खुद सीधे-सीधे आकाश का साक्षात्कार करना चाहते हैं।
उस दिन गुरु प्रसन्न होता है, जिस दिन शिष्य कहता है, अब मेरे पंख हैं, आशीर्वाद दो कि मैं सीधा-सीधा आकाश का साक्षात्कार करूं। अब जरूरत नहीं कि तुम्हें कष्ट दूं, कि तुम मेरे साथ उड़ो। अब मैं उड़ सकूंगा। अब मैं जाता हूं सूरज की तरफ। अब मैं भरता हूं अपनी उड़ान, आशीर्वाद दो।
बुद्ध जब कहते हैं, सुचरित धर्म का आचरण करे, सुचरित का अर्थ हुआ, जहां अभी आचरण में हो। जहां अभी धर्म जीया जा रहा हो। जहां धर्म अभी किताब में दबा हुआ सूखा गुलाब का फूल न हो गया हो, जहां अभी वृक्ष पर लगा हो। जहां अभी जड़ें जमीन में फैली हों। जहां अभी रसधार बहती हो। जहां अभी झरना जीवित हो, सिर्फ याददाश्त न रह गयी हो।
इसलिए सदगुरु की खोज अत्यंत जरूरी है। सदग्रंथ सदगुरु तक ले जाएं, बस, इतना बहुत। सत्य तक तो सदगुरु के पास ही पहुंचना होता है। नहीं तो अपने पैरों पर भरोसा नहीं आता, और यात्रा लंबी है, और पहाड़ ऊंचा है, और चढ़ाई भारी है। जब तक तुम किसी ऐसे आदमी को न देख लो जो चढ़ गया है, तब तक तुम न चढ़ सकोगे।
तुमने देखा, हिलेरी एवरेस्ट पर चढ़ा। उसके पहले तक सैकड़ों लोग कोशिश
कर चुके और न चढ़ सके। हिलेरी के बाद बहुत लोग चढ़ गए। अब तो हर साल कोई जाता है। अब तो कोई बात ही खास न रही। स्त्रियां भी चढ़ गयीं। क्या मामला हुआ? आखिर हिलेरी के पहले क्यों न चढ़ सके लोग? करीब पचास साल से कोशिश चलती थी चढ़ने की एवरेस्ट पर, सैकड़ों लोग मर गए, गिर गए, खो गए, कभी लौटे न वापस, पहाड़ दुर्गम से दुर्गमतर होता चला गया। फिर एक दिन हिलेरी चढ़ गया। पर एक आदमी चढ़ गया, भरोसा आ गया, बात खतम हो गयी। अब तो बच्चे चढ़ जाएंगे। अभी स्त्रियां चढ़ीं।
तुम देखना दो-चार-पांच साल में कोई स्कूल के छोटे बच्चे चढ़ जाएंगे। क्योंकि यह तो मामला अब गया। एक दफा एक आदमी चढ़ गया, सारी आदमियत चढ़ गयी। अब कोई जाए चढ़ने, या न जाए, लेकिन हर आदमी जानता है कि थोड़ी-बहुत व्यवस्था की बात होगी, थोड़ा प्रशिक्षण की बात होगी, लेकिन चढ़ जाएंगे। जब हिलेरी चढ़ गया, हम जैसा आदमी, तो हम क्यों न चढ़ पाएंगे? कोई कारण न रहा। एक आदमी चढ़ा तो पूरी आदमियत चढ़ गयी। चांद पर एक आदमी जिस दिन चला, उस दिन सारी आदमियत चल गयी। अब कोई अड़चन न रही।
ये पहाड़ तो छोटे-छोटे हैं। सत्य का पहाड़ अति दुर्गम है। वह शिखर आंख में दिखायी भी नहीं पड़ता। तुम कितना ही सिर उठाओ, कितना ही सिर उठाओ, वह शिखर बड़ा दूर है--दूर आकाश में धुंधलके में खोया है। लेकिन जब तुम देख लेते हो, एक आदमी चढ़ गया... ।
जापान में कहावत है, झेन फकीर कहते हैं कि अगर पहाड़ पर जाना हो तो उस आदमी से पूछो जो बहुत बार आता-जाता हो। ठीक है। आस्क द अवेकंड। जो जाग गए, उनसे पूछो। अगर जागना है। तुम किताबें खोलकर बैठे हो। उन किताबों से तुम चढ़ न पाओगे। हां, चढ़े हुओें की बातें तुम्हें याद हो जाएंगी, कंठस्थ हो जाएंगी, हृदयस्थ नहीं। हीन-धर्म तो तुम्हें मिल जाएगा, आर्य-धर्म तुम कहां पाओगे? खोजो कहीं जीवंत को।
"सुचरित धर्म का आचरण करे। धर्माचारी इस लोक में तथा परलोक में सुख की नींद सोता है।"
तुम तो सुख से जागते भी नहीं, नींद तो बड़ी दूर। तुम तो सुख से जीते भी नहीं, मृत्यु तो बड़ी दूर। जिसने धर्म का आचरण किया है, सुख से जीता है, यह तो ठीक ही है, इसकी तो बुद्ध बात ही नहीं करते, सुख से मरता है। सुख से जागता है, इसकी तो बात ही नहीं करते, सुख से सोता है। सोने में जब होता नहीं, तब भी सुख की धारा बहती रहती है--जागने में तो होता है, तब तो बहती ही है। असल में जो जाग गया, वह सोने में भी जागा ही रहता है। असल में जो जी लिया, वह मरकर भी जीता ही चला जाता है।

साधारण जन, सोए हुए जन, कभी सुखी नहीं। सुख के सपने भला देखते हों। आशा भला करते हों, उम्मीदें बांधते हों, लेकिन कभी सुख उन्हें मिलता नहीं। तुम जरा लोगों की आंखों में झांको, जरा लोगों के चेहरे को गौर से देखो, कैसे कुम्हलाए हो गए हैं! आंखों ने झीलों की शांति खो दी है। झीलों की गहराई खो दी है। लोगों के प्र्राणों को जरा देखो। कैसे थके-मांदे हैं, बोझिल हैं। जैसे बस मरने की प्रतीक्षा कर रहे हों। जैसे और कुछ करने को नहीं बचा है। तुम लोगों में जीवन की गुनगुनाहट न पाओगे। न जीवन के झरने का कलकल नाद सुनोगे। तुम उनके पास बैठकर कितना ही कान लगाकर सुनो, कुछ भी तुम्हें सुनायी न पड़ेगा, कभी-कभी आंसू की टप-टप हो सकता है सुनायी पड़े। कभी हो सकता है कि उनकी उदासी तुम्हें भी छू ले। मगर कुछ और तुम न सुनोगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन दीवाल से कान लगाकर बैठा था। एक मित्र मिलने आया था। उसने पूछा, क्या सुन रहे हो, बड़े मियां? उसने कहा, तुम भी सुनो। वह आदमी भी कान लगाकर सुनने लगा। कोई पांच-सात मिनट बीते, उसे कुछ सुनायी नहीं पड़ा। उसने कहा, कुछ सुनायी नहीं पड़ता। उसने कहा, क्या खाक पड़ेगा, तीस साल से हम सुन रहे हैं, हमीं को नहीं सुनायी पड़ा। तुमको क्या पांच मिनट में सुनायी पड़ जाएगा!
तुम आदमियों के पास कान लगाकर बैठो, कुछ भी सुनायी न पड़ेगा। कोई संगीत नहीं। जीवित भी हैं, इसका भी भरोसा न होगा।
हां, थोड़ी खटर-पटर कारखाने की चलती है, वह चलती है। हृदय की आवाज चलती है, श्वास चलती है--खटर-पटर कारखाने की। मगर मालिक घर में है? कुछ पता नहीं चलता। मुर्दे के पास बैठो कि जिंदा के पास बैठो, तुम दोनों को मुर्दा पाओगे।
इसलिए तो जीसस ने कहा है... । एक शिष्य का बाप मर गया। किसी ने आकर खबर दी। और शिष्य ने कहा कि मुझे जाने दें। जाऊं मैं अपने पिता को दफना आऊं। जीसस ने कहा, छोड़ भी, तू फिकर छोड़, गांव में बहुत मुर्दे हैं, वे दफना लेंगे। इस काम के लिए जिंदा आदमी को जाने की जरूरत नहीं, यह तो काम मुर्दे ही कर लेंगे। गांव में बहुत मुर्दे हैं। लेट द डेड बरी द डेड। मुर्दों को ही दफना लेने दे, तू क्यों फिकर करता है। बड़ी हिम्मत का युवक रहा होगा। हंसा, उसने कहा कि बात तो ठीक है। और यह काम तो वे ही लोग कर लेंगे। नहीं गया। जीसस ने कहा, तू मेरे पीछे आ, छोड़ मौत की बातें, हम परम जीवन को खोजने चले हैं।
जो न देखा था आज तक हमने
दिल की बातों में आ के देख लिया
जिंदगी हर तरह बवाल रही
सब्र भी आजमा के देख लिया
कोई अपना नहीं है यहां ऐ अर्श
सबको अपना बना के देख लिया
जिंदगी हर तरह बवाल रही। तुम जरा गौर से तो देखो, तुम्हारी जिंदगी सिवाय बवाल के और क्या है? सोचने का मौका नहीं मिलता, यह और बात है! फुरसत कहां कि लौटकर देखें कि जिंदगी बवाल है। चले चले जाते हैं। एक रौ में बहे चले जाते हैं। समय नहीं मिलता, उठते हैं सुबह, भागे, दौड़े, आपा-धापी, सांझ थके-मांदे आए, सो गए, फिर सुबह उठे, फिर भागे। ऐसे ही भागते-भागते एक दिन गिरते हैं और खो जाते हैं। लेकिन जरा सोचो तो, सिवाय बवाल के जिंदगी में कुछ और है? ये अर्श की पंक्ति बड़ी प्यारी है--
जिंदगी हर तरह बवाल रही
सब्र भी आजमा के देख लिया
वह यह कहता है कि सब तरह से शांति भी रखकर देख ली। सब तरह का धीरज भी रखकर देख लिया। सब तरह की सांत्वना भी अपने को देकर देख ली, फिर भी बवाल ही रही।
जो न देखा था आज तक हमने
दिल की बातों में आ के देख लिया
और फिर दिल ने जो-जो आशाएं बंधायीं, उनके पीछे दौड़कर देखा। जो-जो सपने दिए, उनके पीछे दौड़कर देखा। जो-जो इंद्रधनुष दिखाए, उनके पीछे दौड़कर देखा।

सब देख लिया। जिसने इस बात की प्रतीति कर ली कि इस जिंदगी में सिवाय उपद्रव, दौड़-धूप, बेचैनी के और कुछ भी नहीं, यहां कोई वृक्ष की छाया भी नहीं--एक बड़ा मरुस्थल है--उसकी जिंदगी में क्रांति घटती है। तब फिर वह भीतर खोजना शुरू करता है। बाहर देख लिया, नहीं कुछ मिलता। अब भीतर देख लें। क्योंकि दो ही आयाम हैं। कहीं ऐसा न हो कि हम बाहर खोज रहे हों और वह भीतर हो। और ऐसा ही है। क्योंकि जिन्होंने भीतर खोजा, उन्होंने पा लिया।
"जो इस संसार को पानी के बुलबुले की तरह और मरीचिका की तरह देखता है,
उस ऐसे देखने वाले को यमराज नहीं देखता।"
बड़ी गजब की बात बुद्ध कहते हैं। कहते हैं, अगर तुमने जिंदगी को मौत समझ लिया, अगर तुमने जिंदगी में मौत देख ली, तो फिर मौत तुम्हें न देख सकेगी। तुम मौत के लिए अदृश्य हो जाओगे। अभी मौत तुम्हारे लिए अदृश्य है। बड़ी प्यारी बात कहते हैं। वे कहते हैं, अभी तुम्हें मौत दिखायी नहीं पड़ती, जीवन-जीवन दिखायी पड़ता है। अभी तुम्हें सब तरफ हरा-हरा सूझता है। अभी तुम्हें मौत दिखायी नहीं पड़ती। अभी तुम बबूलों में भी खो जाते हो।

यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं।

अभी तो तुम मरीचिकाओं में भी भटक जाते हो। अभी तो दूर के दृश्य बड़े सुहावने मालूम पड़ते हैं। और बहुत बार पास जाकर भी देखा है, कुछ न पाया। बहुत बार पास जाकर भी इतना ही पाया कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं, पास इतने सुहावने सिद्ध नहीं होते। सच तो यह है कि और पास जाओ तो ढोल ही सिद्ध नहीं होते। सब खो ही जाता है। कोरे सपने सिद्ध होते हैं। तुम्हारा प्रक्षेपण था। तुमने ही सोच लिया था। तुमने ही मान लिया था। हाथ में कुछ लगता नहीं, राख ही लगती है। लेकिन बुद्ध कहते हैं, जिसने जिंदगी में यह देख लिया कि सब पानी का बबूला है, अभी गया, अभी गया... ।
क्या सत्य असत्य नहीं मैंने कुछ भी सोचा
मन शांत हुआ जिसको पा, उसको सत्य कहा
जो आकर जीवन में आंसू-सा चला गया
मेरी आस्था ने केवल उसे असत्य कहा
फिर और दूसरा भी मेरा यह अनुभव है
जो सत्य, वही जीवन में थिर रह पाता है
जो मिथ्या है, भ्रम है, असत्य है, क्षणभर में हलचल-सा आता है, जल-सा बह जाता है
जो मिथ्या है, भ्रम है, असत्य है, क्षणभर में हलचल-सा आता है, जल-सा बह जाता है
सूरज से प्राण, धरा से पाया है शरीर
ऋण लिया वायु से हमने इन श्वासों का
सागर ने दान दिया है आंसू का प्रवाह
नभ ने सूनापन विकल मधुर उच्छवासों का
जो जिसका है उसको उसका धन लौटाकर
मृत्यु के बहाने हम ऋण यही चुकाते हैं
इसको ही कोई कहता है अभिशाप-ताप
वरदान समझ कुछ इस पर खुशी मनाते हैं
दृष्टि की बात है। अगर तुमने जिंदगी में मौत देख ली, तो तुम्हें मौत में जिंदगी दिखायी पड़ जाएगी। अगर तुम्हें जिंदगी में जिंदगी ही दिखायी पड़ती रही, तो मौत में मौत दिखायी पड़ती रहेगी। अगर तुमने झूठ को सच समझा, तो सच में तुम्हें झूठ दिखायी पड़ता रहेगा। अगर तुमने झूठ को झूठ समझा, तो तुम्हें सच में सच दिखायी पड़ जाएगा।
कृष्णमूर्ति बार-बार कहते हैं, असत्य को असत्य जान लेना सत्य के जानने की भूमिका पैदा कर लेना है। टू नो द फाल्स एज फाल्स। असार को असार जान लेना, बस सार को जानने की भूमिका पैदा हो गयी। जो नहीं है उसे जान लेना नहीं है, तो फिर जो है उसके लिए तुम्हारे द्वार खुले। जब तक तुम भ्रम में भटके हो, जब तक पानी के बबूलों में तुम अपनी उम्मीदें सजाए हो, जब तक तुम उन

पर फूले नहीं समाते, जिनको पाकर तुम कुछ भी न पा सकोगे, तब तक तुम भटकोगे; जो है वह तुम्हें दिखायी न पड़ सकेगा।
अर्श कहां तक आखिर ये पुरलुफ्त सुहानी उम्मीदें
खुशफहमी पर फूल न इतना कैसे हैं आसार तो देख
यहां सभी चला जा रहा है, बहा जा रहा है।
कैसे हैं आसार तो देख, खुशफहमी पर फूल न इतना
आज जिंदगी है, कल नहीं होगी। अभी फूल खिले हैं, कल झर जाएंगे। अभी वीणा बजती थी, कल टूट जाएगी।
कैसे हैं आसार तो देख
अर्श कहां तक आखिर ये पुरलुत्फ सुहानी उम्मीदें
कब तक सपने संजोता रहेगा? कब तक?
खुशफहमी पर फूल न इतना कैसे हैं आसार तो देख
"जो इस संसार को पानी के बुलबुले की तरह और मरीचिका की तरह देखता है,
उस ऐसे देखने वाले को यमराज नहीं देखता।"
मौत आएगी और तुम्हें पकड़ न पाएगी। तुम मौत के हाथ के बाहर हो जाओगे। मौत के पहले मौत को देख लो। मौत के पहले मर जाओ। फिर तुम्हें मौत न ले जा सकेगी। बहुत कम ऐसा होता है कि मौत आती है और जिसे ले जाना है उसे नहीं देख पाती।
बड़ी पुरानी यूनानी कथा है, मुझे बड़ी प्यारी रही है। एक बड़ा चित्रकार था, बड़ा मूर्तिकार था। जब उसकी मौत आने के करीब आयी, तो उसने अपनी ही दस मूर्तियां बना लीं। और वह इतना बड़ा मूर्तिकार था कि कहते थे कि वह जब किसी की मूर्ति बनाता था, तो जिसकी मूर्ति बनायी उसको उसके पास खड़ा कर दे, और अगर वह आदमी सांस साधकर खड़ा हो जाए, तो लोग बता न पाते थे कि कौन असली है और कौन नकली है? कौन मूर्ति है और कौन मूल है?
उसे याद आया, जब उसे लगा... चिकित्सकों ने कहा, अब तेरी मौत करीब है, तो उसने कहा कि ठीक। दे लेंगे धोखा। उसने अपनी ही दस मूर्तियां बना लीं, उनमें छिपकर खड़ा हो गया।
मौत आयी। दरवाजे से घुसी, वह बड़ी घबड़ायी--इधर ग्यारह आदमी थे, ले एक जाना था। और बिल्कुल एक जैसे थे। कौन असली है, पता करना मुश्किल था। उसने बड़े गौर से सबको जाकर देखा, वह श्वास साधे खड़ा रहा, खड़ा रहा। जब उसके पास से निकल गयी, तो वह निश्चिंत हुआ।
मौत तो थककर लौट गयी। उसने परमात्मा को जाकर कहा कि बड़ी मुश्किल है, वहां ग्यारह आदमी एक जैसे हैं, ऐसा कभी हुआ नहीं। तुमने कभी एक जैसे दो आदमी भी नहीं बनाए। वहां ग्यारह हैं, यह कैसी भूल-चूक हो गयी। अब मैं किसको ले आऊं? परमात्मा हंसने लगा। उसने कहा कि दस नकली हैं, एक असली है। उसने कहा, अब कैसे पहचानें? तो परमात्मा ने कहा, यह रहा सूत्र--उसके कान में एक मंत्र बोल दिया--कहा, यह मंत्र तू जाकर कमरे में बोल दे, असली अपने से बाहर आ जाएगा।
वह मौत वापस लौटी। वह आकर कमरे में खड़ी हुई, उसने चारों तरफ नजर डाली। उसने कहा, और सब तो ठीक है, एक भूल रह गयी। वह आदमी बोला, कौन सी? उसने कहा, यही कि तुम अभी अपने को नहीं भूले। चलो, बाहर निकलो।
अगर तुम मिट जाओ, फिर तुम्हें मौत नहीं ले जा सकती है। फिर वह लाख कहे
कि बड़ी भूल हो गयी, एक भूल रह गयी, लाख भूल रह गयी, तुम खड़े हो। तुम खड़े हो सो खड़े हो। शायद बहुत सिर मारे, तो कोई नकली मूर्ति बोल उठे कि अब हो गयी बहुत बकवास, तो वह उसी को ले जाए, लेकिन तुमको न पकड़ पाएगी। तुम हो ही नहीं, पकड़ेगी कैसे? पकड़े जाने के लिए होना जरूरी है। वह आदमी भूल गया एक क्षण को, भूल ही जाओगे, धोखा दिए न चलेगा। श्वास साधने से न होगा काम, अहंकार गिराने से होगा। खूब साधो प्राणायाम और खूब करो योगासन, कुछ भी न होगा। जब तक कि समर्पण न सधे। जब तक कि मौत स्वीकार न कर लो।

एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति।

वह मृत्यु का जो राजा है, फिर तुझे देख न सकेगा। बस तू मौत को चारों तरफ देख ले। तू उसे पहचान ले, तो तू उसके हाथ के बाहर हुआ। और जब तक तू उसे नहीं पहचानता है, तब तक तू उसके हाथ के भीतर है। लाख उपाय कर, मौत आज नहीं कल पकड़ ही लेगी।
"आओ... ।"
आज का आखिरी सूत्र--
"आओ, चित्रित राजरथ के समान इस संसार को देखो, जिसमें मूढ़ आसक्त होते हैं, परंतु ज्ञानी आसक्त नहीं होते।"
एस पस्सथिमं लोकं चित्त राजरथूपमं।
यत्थ बाला विसीदन्ति नत्थि संगो विजानतं।।

आओ, बुद्ध कहते हैं, देखो इस संसार को, कैसा सजा-बजा है! कैसा राग-रंग है! कैसी होली चल रही है! कैसी धूल, गुलाल, रंग उड़ाए जा रहे हैं! जरा देखो, गौर से देखो। यह सब सपना है। और ऐसे सजा है जैसे राजा का रथ सजा हो। जल्दी ही ये रंग उड़ जाएंगे। जल्दी ही सब बेरंग हो जाएगा।
"आओ, इस चित्रित राजरथ के समान संसार को देखो, जिसमें मूढ़ आसक्त हो गए हैं, परंतु ज्ञानी आसक्त नहीं होते।"
तो ज्ञानी की कसौटी यह है। इतना जागे हुए हो तुम कि आसक्ति दांव-पेंच नहीं चला पाती। इतने जागे हुए हो तुम कि आसक्ति घुस-पेठ नहीं कर पाती। इतने जागे हुए हो तुम, दीया ऐसा जला है कि अंधेरा कहां से भीतर आए। अंधेरे को आने की जगह नहीं मिलती।
यह बुद्ध का निमंत्रण है कि संसार को ठीक से देख लो। रंगीन मालूम होता है, है नहीं। रंगीन होने का केवल धोखा है।
क्या बताऊं कि खुदा जाने जवानी क्या थी
जागते-जागते एक ख्वाब मगर देखा था
लौटकर जब पीछे देखोगे, तो सारी जिंदगी ख्वाब से ज्यादा न मालूम पड़ेगी।
बर्ट्रेंड रसल ने किसी मित्र को एक पत्र में लिखा है कि बहुत बार मुझे ऐसा होने लगता है कि जो अतीत मैं गुजार आया हूं, वह वस्तुतः था भी या नहीं? कहीं ऐसा तो न हो कि एक सपना देखा था!
तुम भी जरा सोचना। क्या तुम्हारे पास पक्का सबूत है कि था। रात को जब तुम सपना देखते हो, तब वह भी लगता है सच्चा है। सुबह जागकर पता चलता है, अरे, सपना था! जरा पीछे लौटकर देखो, कल जो बीत गया, था? आज कैसे फर्क करोगे, सपना था कि सही था? आज कैसे निर्णय करोगे? सपना भी हो सकता है। सभी सपने जब देखे जाते हैं, सच मालूम होते हैं।
च्वांगत्सू की प्रसिद्ध कथा है, बहुत बार मैंने कही है। रात उसने सपना देखा कि तितली हो गया है। सुबह बैठा था उदास। शिष्यों ने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा, अब मैं कभी प्रसन्न न हो सकूंगा। बड़ी मुश्किल हो गयी। रात सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं। शिष्य हंसने लगे। उन्होंने कहा, हद्द हो गयी। ऐसे सपने तो हम सभी देखते हैं, इससे क्या परेशानी है?
उसने कहा, परेशानी सपने से नहीं है। परेशानी जागकर हो रही है। अब मुझे
यह शक हो रहा है कि अगर च्वांगत्सू सपना देख सकता है कि तितली हो गया, तो हो सकता है अब तितली सो गयी हो और सपना देखती हो, च्वांगत्सू हो गयी है। क्या पक्का? कौन सच्चा? कैसे निर्णय करूं? जब तितली था, तो बिल्कुल तितली था रात, उड़ता फिरता था फूल-फूल, पत्ती-पत्ती। एक क्षण को भी संदेह न आया सपने में कि मैं च्वांगत्सू और तितली! अब जाग गया हूं। यह च्वांगत्सू कह रहा है, वह कहता है, कि जाग गया हूं। कौन जाने तितली सो गयी हो! मेरा जागना तितली का सोना हो सकता है। क्योंकि मेरा सोना तितली का जागना हुआ था और तितली उड़ती फिरती थी। अब हो सकता है, तितली बैठ गयी हो किसी वृक्ष पर, पर सम्हाल कर, ढांक कर, सो गयी हो गहरी नींद में और सपना देखती हो कि च्वांगत्सू हो गयी। अभी यह जो मैं बैठा हूं, यह वस्तुतः मैं बैठा हूं कि तितली सपना देख रही है? तुम कुछ मेरी सहायता करो। मगर क्या उपाय है?

फिर तो झेन फकीरों ने च्वांगत्सू के इस वक्तव्य को एक कोआन बना लिया।
तो शिष्यों को देते हैं कि इस पर ध्यान करो। ध्यान करते-करते इस पर एक ऐसी घड़ी आती है कि जिसको तुम सपना कहते हो वह, और जिसको तुम सच कहते हो वह, दोनों एक ही गुणधर्म के मालूम होने लगते हैं। हैं भी। कोई रात आंख बंद का सपना है, कोई दिन आंख खुले का सपना है, पर सब सपने हैं।
क्या बताऊं कि खुदा जाने जवानी क्या थी
जागते-जागते एक ख्वाब मगर देखा था
कुछ ख्वाब तुम जागते-जागते देखते हो, कुछ सोते-सोते देखते हो। बाकी सब ख्वाब है। माया का इतना ही अर्थ है। माया के सिद्धांत की इतनी ही बात है। "आओ, चित्रित राजरथ के समान इस संसार को देखो, जिसमें मूढ़ आसक्त होते हैं।"
मूढ़ कौन है? मूढ़ वही है, जो बार-बार के अनुभव से नहीं सीखता। कितनी बार तुमने सोचा, यह मिल जाएगा तो सब मिल जाएगा। फिर मिल भी गया। फिर हाथ मसोसकर रह गए। मगर एक अनुभव न लिया कि अब दुबारा ऐसा न सोचेंगे।
एक युवक मेरे पास आया--कोई डेढ़ वर्ष पहले। उसने कहा कि तीन विवाह और तीन तलाक कर चुका हूं। अभी कोई ज्यादा उम्र नहीं, जल्दी-जल्दी, पश्चिम में बहुत जल्दी काम हो रहे हैं। सब चीजों में गति आ गयी है। कोई हवाई जहाज ही तेजी से नहीं उड़ रहे हैं, आदमी भी तेजी से उड़ रहे हैं। उसने कहा कि तीन तलाक कर चुका हूं। और अब आशीर्वाद लेने आया हूं, एक चौथी लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं। मैंने कहा, चौथी की बात बाद में करेंगे, पहले तीन की तो करें। उसने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा, पहली से तुम्हें क्या अनुभव हुआ? उसने कहा, वे बातें जाने भी दें, बड़ा दुखद अनुभव हुआ। पर मैंने कहा, वे अनुभव के पहले तो तुमने बड़े सुख की उम्मीदें बांधी थीं। उसने कहा, जरूर, अन्यथा विवाह ही क्यों करता। कोई फंसता ही क्यों?
फिर दूसरे में क्या हुआ? पहले वे ही उम्मीदें फिर बांधी थीं? वह थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, बांधी तो वे ही उम्मीदें थीं। फिर टूटीं? उसने कहा, फिर टूटीं। फिर मैंने कहा, तीसरे में कैसे उलझे?
वह थोड़ा उदास होने लगा, उसने कहा, क्या आप मुझे आशीर्वाद न देंगे। मैंने कहा, मेरी क्या तकलीफ है? आशीर्वाद! आशीर्वाद से ज्यादा सरल और क्या है? इसलिए तो जिनके पास कुछ नहीं है, वे भी आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद मैं दे दूंगा, लेकिन मेरे आशीर्वाद से जीवन का ढांचा नहीं बदलेगा, जीवन का रंग न बदलेगा। फिर पछताओगे। अब तुम मुझे भी गाली दोगे कि मैंने आशीर्वाद दिया। जैसे कि मेरा आशीर्वाद असफल हुआ। तुम मुझे क्यों असफल करने के पीछे पड़े हो। तुम्हीं भोगो। जल्दी ही मेरा आशीर्वाद अभिशाप मालूम पड़ने लगेगा, फिर क्या करोगे?
उसने कहा कि जो तीन बार हुआ, क्या जरूरी है कि चौथी बार भी हो? जो अब तक हुआ, जरूरी है कि फिर हो? मैंने कहा, यही भ्रांति आदमी को भटकाए लिए जाती है। यही भ्रांति उसे कभी नहीं जागने देती। वह हजार बार गिरता है गड्ढे में, वह कहता है, एक हजार एकवीं बार यह हो सकता है न गिरें, निकल ही जाएं। हजार बार जो सेतु टूट जाता है बीच में, वह फिर भी हजारवीं बार सोचता है, क्या पता एक हजार एकवीं बार सफल हो जाएं। और ऐसे आदमियों ने कहानियां गढ़ रखी हैं।
तुमने गजनी के महमूद की कहानी सुनी होगी। वह हार गया। वह भागा, पहाड़ पर। वह बड़ा परेशान हो चुका था। वह कई बार हार चुका था। उसने आत्महत्या की तय कर ली थी। वह जाकर एक गुफा में छिप रहा था। दुश्मन पीछा कर रहे थे। कहानी है कि उसने देखा कि एक मकड़ी जाला बना रही है, जाला उखड़-उखड़ जाता है, वह गिर-गिर पड़ती है। कोई काम न था, बैठा देखता रहा। गिनती करता रहा, कितनी दफा? अठारह बार वह गिरी, और उन्नीसवीं बार जाला लग गया। वह भी अठारह बार हार चुका था। वह भागा निकल कर। उसने कहा कि अरे, अगर मकड़ी उन्नीसवीं बार जीत जाती है, मैं भी जीत जाऊंगा। और बच्चों को ये कहानियां पढ़ायी जाती हैं। उनसे यह समझाया जा रहा है कि घबड़ाना मत, अनुभव से सीखना मत, उन्नीसवीं बार जीत जाओगे। उस उन्नीसवीं के चक्कर में सभी फंसे हैं।

जीवन कुछ ऐसा है कि यहां जीत होती ही नहीं। यहां जीत होकर भी हार ही होती है। महमूद जीत भी जाए, तो भी क्या हाथ लगता है?
जो व्यक्ति अनुभव से सीखता है, वह ज्ञानी है। जो अनुभव से सीखता नहीं,
वह मूढ़ है। वह अपनी आसक्ति को बसाए चला जाता है। और जिसने सीख लिया; जिसने अपने जीवन से इतनी सीख ले ली कि यहां सपने ही सपने हैं, इंद्रधनुष हैं--दूर से बड़े सुंदर रंगीन हैं, पास जाने पर कुछ भी नहीं है--जिसको यह समझ में आ गया, उसके लिए एक नयी यात्रा शुरू हुई, उस यात्रा का नाम ही धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण
रात का अंतिम प्रहर है
झिलमिलाते हैं सितारे
वक्ष पर युग-बाहु बांधे
मैं खड़ा सागर किनारे
वेग में बहता प्रभंजन
केश-पट मेरे उड़ाता
शून्य में भरता उदधि
उर की रहस्यमयी पुकारें
इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में
है प्रतिच्छायित जहां पर
सिंधु का हिल्लोल-कंपन
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण
जिसने यहां संसार को सपना जाना, उसे दूर का निमंत्रण मिला। दूर के सागर का। फिर वह रुक नहीं सकता।
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण
इधर सपना टूटा, नाव बंधी तैयार है। आदमी चला दूसरी यात्रा की खोज में। धर्म व्यर्थ हुआ, तो आदमी संसार में उलझा। संसार व्यर्थ हुआ, तो आदमी धर्म की यात्रा पर चला। तुम जरा जागकर देखो।
"उठे, प्रमाद न करे--उत्तिट्ठे।"
जागो, देखो!
"आओ, चित्रित राजरथ के समान इस संसार को देखें। मूढ़ इसमें आसक्त होता, ज्ञानी इससे मुक्त हो जाता है।"
सुनो उस दूर की प्रतिध्वनि को, दूर की पुकार को, दूर पार से जो आ रही है, उस किनारे से जो आ रही है। मगर यह किनारा अगर तुम्हें बहुत पकड़े हुए है, इस किनारे के खिलौनों ने अगर तुम्हें बहुत उलझाया है, तो तुम न सुन सकोगे। इस किनारे के खिलौने व्यर्थ हों, हाथ से छूटें, तुम जरा खाली होओ, तो निश्चित ही--
तीर पर कैसे रुकूं मैं
आज लहरों में निमंत्रण
तो निमंत्रण तुम सुनोगे। तीर पर रुक न सकोगे।
संसार यानी तीर। सागर यानी सत्य। और जब तक तुम्हें सनातन की, शाश्वत
की पुकार न पकड़ ले, तब तक तुम रेत के किनारे बैठे घर-घूले बनाते रहोगे, हवाएं उन्हें मिटाती रहेंगी, तुम फिर-फिर बनाते रहोगे।
बुद्ध ने कहा है, एक गांव से मैं गुजरता था। नदी के किनारे बहुत से बच्चे रेत के घर बना रहे थे। बुद्ध रुक गए। वे देखते रहे। बड़ी लड़ाई-झगड़ा। बड़ा तूल-तबाद। क्योंकि किसी का घर किसी के पैर की चोट से गिर जाता। घर ही! या कोई जानकर भी किसी के घर को धक्का मार देता और तोड़ने का मजा ले लेता। अकड़, अहंकार! और बच्चे लड़ते और जूझ जाते। एक-दूसरे के कपड़े फाड़ दिए, मार-पीट हो गयी। रेत के घर! पर जब आदमी खेल खेलता है तो रेत के घर भी असली हो

जाते हैं। शतरंज के हाथी-घोड़े असली हो जाते हैं। तलवारें खिंच जाती हैं। बड़े-बूढ़ों में खिंच जाती हैं। तो ये तो छोटे-छोटे बच्चे थे।
फिर बुद्ध ने कहा, मैंने देखा कि कोई स्त्री किनारे पर आयी, उसने जोर
से आवाज दी और कहा कि बच्चो, तुम्हारी मां घर पर राह देख रही हैं, जाओ, सांझ होने लगी, सूरज ढल गया। बच्चों ने देखा, सूरज ढल गया है, रात होने लगी, भागने लगे--अपने ही घरों को अपने ही पैरों से रौंदते हुए। फिर न कोई झगड़ा, फिर न कोई फसाद। घर का आमंत्रण आ गया। और फिर सांझ हो गयी, सूरज ढलने लगा, रात उतरने लगी। यही घर क्षणभर पहले झगड़े का कारण बने थे। कोर्ट-कचहरी हो रही थी। यही घर क्षणभर बाद अपने ही पैरों से रौंद दिए गए।
एक बार तुम्हें जगत माया है, ऐसा दिखायी पड़ जाए, तो फिर जो सत्य है, जो ब्रह्म है, उसकी संभावना का द्वार खुलता है। एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।